शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों
का
राजस्थानी साहित्य में योगदान

(जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. की उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबंध)

लेखक

डॉ० दर्शनलाल "साम्ना"

एम. ए (हिन्दी), एम. ए. (दर्शनशास्त्र), पी-एच. डी.

विशार[illegible]रत्नाकर

SHAKDWIPIYA BRAHAMAN KAVIYON
KA
RAJASTHANI SAHITYA MEN YOGDAN

- प्रकाशक—भवानी शंकर शर्मा
- वितरक—कुवेरा ब्रदर्स, अजमेर

- सस्करण—1976
- कला—नियो आर्ट, अजमेर
- मूल्य—चालीस रुपये मात्र
- मुद्रक—जैन आर्ट प्रेस, बीकानेर।

निवेदन

ऋग्वेद में इस समस्त संसार को देव का काव्य माना गया है। विराट ब्रह्म को भी इसीलिए कवि कहा गया है क्योंकि वह सृष्टि हेतु आत्म का विसर्जन एवं आत्म-स्फुरण करता है। श्रीमद्भगवत गीता में एक स्थान पर विश्व के रचयिता को 'कवि' का स्थान दिया गया है—

"कवि पुराणमनुशासितारम्" (गीता ८।९)

इसीलिए तो कवि 'स्वयं-भू' माना गया है। विश्व-सृष्टा तो सृष्टि की रचना करके निवृत्त हो गया, पर कवि नित्य नए भावों की सृष्टि करता हुआ प्रति-पल प्रति-क्षण विश्वात्म तथा विश्वोत्तीर्ण होकर भावों का संसार वनाता रहता है। कवि जगदृष्टा भी है और सृष्टा भी। तभी तो उसे कवि कहा जाता है। वह अपनी भाषा के माध्यम से हृदयगत अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता हुआ सृष्टि की अन्य दिशाओं पर (जो कि अंधकार में है) रश्मियां डालकर उन्हे आलोकित करता है एवं उनके गहन तम को हर लेता है।

सम्पूर्ण विश्व का कोई भी भाग शायद ही ऐसा होगा, जहां कवि नहीं है। मेरी दृष्टि में तो कवि समाज का निर्देशक है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म कण से लेकर महान् आत्मा तक को समान दृष्टि से देखता है।

"उनको जीने का अधिकार नहीं है
जिनको कवियों से प्यार नही है"

इसका कारण स्पष्ट है कि कवि स्वयं चाहे किसी भी अवस्था में क्यों न रहता हो, सम्पूर्ण विश्व को उन्नति के चरम शिखर पर देखने की तीव्र लालसा रखता है और दूसरों की उन्नति देखकर जलता नही अपितु आनन्द अनुभव करता है, चाहे कोई उसे देखकर भले ही ईर्ष्या रखता हो। परन्तु सच्चा कवि तो सबके हित में ही

अपना हित अनुभव करता है ।

महिमा और गौरव की दृष्टि से भारतवर्ष सृष्टि के आदि-काल से ही अति विख्यात रहा है । इसकी महानता और कीर्ति की गाथा तो देवताओं तक ने मुक्त-कंठ से गाई है । साहित्यकार जिज्ञासा के रूप मे सत्यं की, लोकव्यवहार के रूप मे शिवं की और भाव के रूप मे स्वस्ति (सुन्दरम्) की उपासना करता है । काव्य में इन तीनो की परिणति होती है । कविवर पंत के शव्दो मे—

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय मे वनता प्रणय अपार
लोचनो में लावण्य अनूप, लोक सेवा मे शिव अविकार

गुरु के उपदेश से शास्त्र का अध्ययन तो जडवुद्धि भी कर सकता है परन्तु साथ ही भगवत् कृपा से काव्य सर्जना तो प्रतिभावान ही कर सकता है ।

राजस्थानी भाषा मे भी एक कहावत है–'जात रौ कारण नी रात रौ कारण हुया करै ।'

अर्थात् किसी महान् व्यक्ति की महानता का कारण उसकी जाति नही होती वल्कि वह शुभ–रात्रि होती है, जिस रात्रि मे उसने जन्म लिया है ।

किन्तु मेरे विचार से इसका एक अर्थ और है और वह यह कि रात रौ कारण रात्रि से है और रात्रि में अधकार होता है। कवि ससार को एक नया प्रकाश देता है, अतएव उस रात्रि का अर्थ यह हुआ कि अधकार मे उन रश्मियो का आगमन हुआ है जिससे अध-कार निश्चय ही चला जाएगा, जिस दिन कवि का जन्म हुआ है ।

मेरा भी कविता के प्रति झुकाव वचपन से रहा है । मैंने स्वयं अपनी प्रथम कविता जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा श्री हनवन्तसिह जी को सन् १९५१ में डंडिया–रास के वक्त सुनाई थी और उन्होने पुरस्कार दिया तथा मेरी रचना पर हस्ताक्षर भी किए, जो आज तक मेरे पास मौजूद है जवकि आज तक तो कई संकलनों एवं पत्रों मे मेरी कुछ रचनाएं प्रकाशित भी हो चुकी है ।

सन् १९६० में मुझे कवि मंछ (मनसाराम) द्वारा रचित ग्रंथ "रघुनाथरूपक गीतां रो" देखने को मिला और मैंने उसे खरीद भी

लिया । मेरे दिमाग में एक वात और आई और वह यह कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो मे मछ के अतिरिक्त और भी कवि हुए होगे । शोध की जिज्ञासा हुई किन्तु मैं उन दिनो केवल मैट्रिक पास ही था, अतएव केवल रचनाओ को खोजना ही अपना एक-मात्र उद्देश्य वना लिया ।

शनैः शनै. नौकरी करता हुए एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और राजस्थानी साहित्य के प्रति भी लगाव हुआ । फलस्वरूप "शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का राजस्थानी साहित्य मे योगदान 'नामक विषय पर शोध करने का दृढ निश्चय कर लिया और आज यह शोध-प्रवन्ध प्रस्तुत करते हुए मैं हार्दिक प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ ।

शोध-प्रवन्ध कैसा वन पडा है इसका तो साहित्य के आचार्य एव विद्वद्जन ही निर्णय करेंगे । मेरा तो इस सम्वन्ध मे मौन रहना ही श्रेयस्कर है ।

फिर भी मैं उन समस्त शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होने समय समय पर अपना परामर्श दिया और जिनकी सहायता से यह कार्य सम्भव हो सका है क्योकि जहा जहा भी मैं गया, इस शुभ कार्य मे उन्होने मेरी यथासम्भव सहायता की और रचनाए उपलब्ध करवाई एव अपना अमूल्य समय भी दिया । उनकी कुछ नामावली देना भी मैं आवश्यक समझता हूँ ।

१. भीनमाल — श्री मोतीलालजी, श्री पुष्पकातजी, श्री तेजराजजी आदि ।
२. वाड़मेर — श्री पन्नालालजी एवं अन्य ।
३. व्यावर — श्री गोविन्दप्रसादजी ।
४. पाली — श्री रामगोपालजी, श्री मालारामजी, श्री श्यामसुन्दरजी आदि ।
५. नागौर — श्री रामकिशनजी सत्र-इन्सपेक्टर (जोधपुर वाले) श्री रूपचन्दजी ज्योतिषी, श्री गोपीकृष्णजी चडक, श्री शंकरलालजी (कोआपरेटिव इन्सपेक्टर) ।

६. बीकानेर — श्री कृष्णचन्द्रजी, श्री विष्णुजी, श्री दाऊदयाल जी, श्री गुट्टड़ महाराज, श्री रम्भैया महाराज, श्री भवानी शंकरजी, श्री पूनमचन्दजी, श्री मूल-चन्दजी, श्री रतनलालजी शास्त्री, श्री बालमुकन्द जी शास्त्री आदि ।
७. किशनगढ — श्री श्रीपतजी ।
८. नसीराबाद — श्री गोपाललालजी ।
९. अजमेर — श्री कन्हैयालालजी, श्री नवनीतलालजी, श्री राम किशनजी (बैंक वाले) ।
१०. जयपुर — श्री रेवतीरमनजी, श्री रामधनजी आदि ।
११. फतेहपुर — श्री भंवरलालजी ।
१२. सरदारशहर— श्री भवरलालजी, श्री जालूरामजी ।
१३ रतनगढ — श्री रेवतीप्रसादजी
१४. उदयपुर — श्री शिवनारायणजी, श्री विष्णुजी
१५. मेडता सिटी— श्री शंकरलालजी, श्री पूनमचन्दजी
१६. मेड़ता रोड — श्री तेजराजजी, श्री माणकजी, श्री अमरचंदजी, श्री दीनदयालजी आदि ।
१७. कुचेरा — श्री धगडूजी, श्री ब्रह्मचारीजी (महाराज)
१८. केलावा — श्री केदारजी, श्री जगन्नाथजी
१९. साभर — श्री रामपालजी
२० लाडनू — श्री हरीश्चंद्रजी
२१. राजलदेसर — श्री जयप्रकाशजी
२२. बावड़ी — श्री मोहनलालजी
२३. सुजानगढ — श्री श्रीकिशनजी
२४. जैसलमेर — श्री सगतमलजी, श्री नन्दकिशोरजी
२५. मारवाड जं.— श्री मेघराजजी बाबा एवं दाता
२६ साहिला — श्री देवीचंदजी
२७ अगवरी — श्री भैरूलालजी, श्री सुमेरमलजी, श्री चंदनमल जी आदि ।

इसके अतिरिक्त बम्बई के स्व० श्री निरजन शर्मा "अजित", हजारी बाग के श्री देवनन्दन मिश्र, गया के श्री बद्रीनारायण शास्त्री,

दिल्ली के श्री ब्रह्मदेवजी शास्त्री, कलकत्ता के श्री विश्वनाथजी शास्त्री, मालेगांव के श्री जयनारायणजी, नथमलजी आदि का भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

जोधपुर के तो प्रत्येक शाकद्वीपीय ब्राह्मण का आभारी हूँ ही क्योकि यहां के प्रत्येक व्यक्ति ने, जिससे भी मैंने सहायता मांगी अपना अमूल्य समय देकर समय समय पर मुझे सामग्री के सम्बन्ध में जानकारी दी। फिर भी कवि मंछ के वंशज श्री फौजराज जी तथा कवि हरिनारायणजी के वंशज श्री आदित्यनारायणजी, श्री सूरजनारायणजी और कवि माणकजी के सुपुत्र श्री शम्भुदत्तजी 'सुदर्शन' का भी विशेष रूप से आभारी हूँ।

अधिक नामावली देने मे कुछ संकोच है कारण कि नाम ही इतने अधिक है कि कई पृष्ठ भरे जा सकते हैं। अतएव संक्षेप में ही नाम देकर जिनके नाम नही दे सका, उनसे अग्रिम क्षमा-याचना करना भी अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं हृदय से श्री डॉ. राजकृष्णजी दूगड़ का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे को समय समय पर निर्देशन देकर कृतार्थ किया तथा साथ ही डॉ. नामवरसिंहजी, डॉ. मोतीलालजी गुप्त, डॉ. नित्यानन्दजी शर्मा, डॉ. वेंकट शर्मा एवं डॉ. जगदीश 'कनक' का भी आभारी हूँ, जिन्होने समय समय मुझे मार्ग दर्शन दिया है।

साथ ही अपने मित्र डॉ. शक्तिदान कविया, डॉ. मदनराज दौलतराज मेहता, डॉ. कल्याणसिंह शेखावत, श्री रणवीर भडारी आदि का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होने समय समय पर अपने वहुमूल्य सुझाव दिए है।

उन सभी विद्वान् लेखकों का भी मैं आभारी हूँ जिनके ग्रंथों की सहायता इसमें ली गई है।

मैं उन सभी विद्वानों एवं साथियों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी अपनी सम्मतियां देकर मुझे प्रोत्साहित किया है।

वीकानेर के श्री प्रेमरतनजी जेसकाणी का मैं विशेष रूप से आभारी हूं, जिन्होने मुझे पूर्ण सहयोग दिया है।

इसके अतिरिक्त बीकानेर के ही श्री रम्भैया महाराज, श्री

वल्लभदासजी जिन्नाणी, श्री देवकिसनजी ओवरसियर, श्री भवानी शंकरजी शर्मा, श्री पूरणमलजी एवं श्री दुर्गादत्तजी (प्रेस वाले) श्री विष्णु प्रकाशजी शर्मा, श्रीमती नर्मदा देवी शर्मा, श्री दाऊदयालजी शर्मा (पुरातत्व विभाग वाले) आदि का भी मै कृतज्ञ हूँ, जिन्होनें मुझे सहयोग देने की कृपा की है। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती रतन कौर को मैं धन्यवाद देता हूँ जिसने हर वक्त पूर्ण सहयोग दिया। प्रकाशक का तो मैं कृतज्ञ हूँ ही, साथ ही डॉ. मनोहरजी शर्मा एवं श्री कृष्णचन्द्रजी शर्मा का भी मैं कृतज्ञ हूं, जिन्होने मुझे प्रकाशन संबंधी अनेक सुझाव दिए हैं।

जोधपुर के श्री देवीलालजी, श्री आदित्यनारायणजी, श्री जगदीशजी, श्री किशोरीलालजी, श्री महेन्द्र मेहता, श्री नन्दकिशोरजी, तथा भीनमाल के श्री पुष्पकांतजी, जैसलमेर के श्री नन्दकिशोरजी आदि का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होने सहयोग देने मे अपनी तत्परता दिखाई है। उन सभी शाकद्वीपीय ब्राह्मण भाइयों एवं अन्य बन्धु-बांधवो का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने मुझे किंचिन्मात्र भी सहयोग दिया है।

श्री कमलचन्दजी वैद, मैनेजर "जैन आर्ट प्रेस, समता भवन, वीकानेर" का भी मैं आभारी हूँ तथा समस्त प्रेस कर्मचारियों को भी मं धन्यवाद देता हूँ जिन्होने अनेक अड़चनो का सामना करते हुए भी पुस्तक को इतने सुन्दर रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया है।

अंत मे मैं अपनी माताजी श्रीमती इन्द्रकंवर एवं पूज्य पिता जी श्री शम्भुदत्तजी 'सुदर्शन' का तो हृदय से कृतज्ञ हूँ ही कि जिन्होने समय समय पर मार्गदर्शन देने की अनुकम्पा की है। इसके साथ ही अपने समस्त गुरुजनो एवं परमपिता परमेश्वर के प्रति तो क्या कहूँ, उनकी कृपा के विना तो यह कार्य नितान्त असम्भव था।

भगवान् श्रीराम के प्रति केवल इतना ही कहना चाहूँगा—

'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करैं सव कोई"

'अव मोहि भाव भरोसो हनुमंता, बिनु हरि कृपा मिलै नही संता'

डॉ. सुदर्शनलाल "मामा"

सम्मतियां

डॉ. दर्शनलाल "मामा" विनयशील एवं विद्वान् व्यक्ति है। प्रस्तुत शोधकार्य के द्वारा डॉ. मामा ने हिन्दी जगत् को अमूल्य निधि दी है एवं राजस्थानी साहित्य को भी गौरवान्वित किया है।

— डॉ. नामवरसिंह

डॉ दर्शनलाल "मामा" ने "शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य में योगदान" नामक विषय पर शोध-प्रबन्ध बड़ी लगन और परिश्रम से तैयार किया है और बहुत से अज्ञात कवियों के परिचय प्रस्तुत कर डॉ "मामा" ने शोध के विद्यार्थियों को आगे बढने के लिए बड़े सुन्दर ढंग से मार्गदर्शन भी किया है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के बारे में अतीत की कथाओं के साथ ऐतिहासिकता की गुत्थी को सुलझाने का भी भरपूर प्रयास किया है। इन ब्राह्मणों में जो उत्तम कवि हुए, डॉ. दर्शन 'मामा' ने उनका परिचय देते हुए जो साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह स्तुत्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में दार्शनिक दृष्टिकोण को सुलझाने का भी शुभ प्रयास डॉ. 'मामा' ने किया है। ब्रह्म को सगुण लीलाधारी मानकर इन कवियो ने उन्हे अप्राकृत वैकुण्ठ में रहना बतलाया है जिसे डॉ. 'मामा' ने पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक बतलाते हुए अनन्त तेज, ओज एवं सौन्दर्य का पुंज कहकर सुन्दर ढग से समाधान कर दिया है क्योंकि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के विचारों से उनका प्रभु जड़ को भी

चेतन करने की सामर्थ्य रखता है ।

प्रस्तुत कवियों की भिन्न भिन्न धारणाओं को स्पष्ट करते हुए डॉ. 'मामा' ने संसार की असारता और धर्म की महत्ता को समझा-कर इन कवियो की भक्ति की विशेषताओं पर भी सुन्दर प्रकाश डाला है ।

अंत में कवियो के सांस्कृतिक एवं सामाजिक विचारों पर दृष्टिपात करते हुए वहुत से अप्रकाशित साहित्यिक ग्रन्थों को प्रकाश मे लाने का जो परिश्रम किया है, उसके लिए डॉ. दर्शनलाल 'मामा' धन्यवाद के पात्र हैं ।

यह शोध-प्रवन्ध राजस्थानी साहित्य की एक विशृंखलित कड़ी है जिसे श्री 'मामा' ने यथास्थान पर लगा दिया है । अतः उनकी यह देन राजस्थानी साहित्य मे परम श्लाघनीय है । मैं प्रभु से सदा उनकी मंगल-कामना करता हूँ ।

— कन्हैयालाल कल्ला
एम० ए०, पी-एच० डी०,
डी० लिट्

डॉ. दर्शनलाल "मामा", का 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य में योगदान शीर्षक शोध-प्रवन्ध पड़कर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई है । विद्वान् लेखक ने शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के राजस्थानी साहित्य मे योगदान को शोध-दृष्टि से समीक्षित कर उनके दार्शनिक दृष्टिकोण, भक्ति-भावना और उपासना-तत्त्व, सांस्कृतिक एवम् सामा-जिक चित्रण तथा साहित्यिक मूल्यांकन का जो तत्त्व-विश्लेषण किया है, वह अनेक विन्दुओ से मौलिक और स्तुत्य है । हिन्दी-शोध-क्षेत्र मे डॉ. के पूर्व इस विषय पर इतना व्यापक और गम्भीर अध्ययन अभी तक प्रस्तुत नही किया गया था, अतः इस दृष्टि से उनका यह शोध-प्रवन्ध अपना एक कीर्तिमान स्थापित कर सका है। शोध-प्रबंध

की मौलिकता और गरिमा का यह भी एक प्रमाण है कि विद्वान् लेखक को जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई है।

डॉ. 'मामा' के अध्यवसाय, अध्ययन और चिंतन का मैं प्रारंभ से ही प्रशंसक रहा हूँ। अपनी काव्य-रचनाओ द्वारा वे कई वार पुरस्कृत और सम्मानित भी हो चुके हैं। शोध-समीक्षा के क्षेत्र मे उनकी यह उपलब्धि उनके भावी विकास की निर्देशिका है। मैं उनके इस शोध ग्रंथ का स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस दिशा मे काम करने वाले अन्वेषियों के लिए यह पथ-प्रदर्शन का कार्य करेगा।

— वेंकट शर्मा
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्
प्राध्यापक
जोधपुर विश्वविद्यालय

"शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य में योगदान" नामक ग्रंथ डॉ. दर्शनलाल 'मामा' का शोध-प्रवन्ध है, जो हमारे विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया है। उनके इस उत्कर्ष से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई है। मैं उनके सतत मांगल्य का अभिलाषी हूँ।

मेरे मतानुसार यह अध्ययन सामुदायिक सर्वेक्षण और विश्लेषण का शुभ प्रयास है। इस प्रकार के अध्ययनो द्वारा विभिन्न सामुदायिक सस्कारों का परिज्ञान होता है, साथ ही अल्पख्यात साहित्य साधको पर भी प्रकाश पड़ता है। इन सबके योग से ही एक परिपूर्ण इतिहास का निर्माण सम्भव है।

डॉ. दर्शन 'मामा' ने इस शोध-प्रबन्ध द्वारा शताधिक शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो को खोज निकाला है। उनका यह सर्वेक्षण

श्रम सराहनीय है ।

— **डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित**
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.

डॉ. दर्शनलाल 'मामा' का 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का राजस्थानी साहित्य में योगदान' नामक शोध-प्रबन्ध पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई । डॉ. दर्शन 'मामा' एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं एवं सफल अनुसंधाता भी । इनका चिंतन प्रौढ़ एवं अभिव्यक्ति स्वच्छ है । इस शोध-प्रबन्ध ने राजस्थानी साहित्य को एक नई-दिशा दी है ।

इस ग्रन्थ के माध्यम से ऐसे अनेकों कवि हमारे सामने आए हैं, जिनका आज तक कोई पता नही था ।

डॉ. दर्शन 'मामा' ने इस शुभ कार्य के द्वारा राजस्थानी साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति की है, साथ ही हिन्दी वांङ्मय में यह ग्रन्थ गौरव की वस्तु है । उन्होने इस ग्रन्थ के द्वारा अनेक समस्याओं को भी सुलझाया है ।

मैं इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करता हूँ । मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि शोधार्थियों के लिये यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा ।

— **डॉ. राजकृष्ण दूगड़**
एम. ए., पी-एच. डी.
एल. एल. बी., साहित्यरत्न
हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय

राजस्थानी भाषा-साहित्य का नाम लेते ही बहुसंख्यक चारण कवियों और उनकी गौरवपूर्ण कृतियों की ओर सहज ही ध्यान चला

जाता है परन्तु यह तथ्य भी निर्विवाद है कि चारणेतर कवियों ने भी राजस्थानी-साहित्य की श्रीवृद्धि एवं उन्नयन मे कम योगदान नहीं किया है।

इससे राजस्थानी चारण-साहित्य की महिमा कम नही होती परन्तु साथ ही राजस्थानी जनता की अपनी मातृभाषा के प्रति अभिरुचि तथा गौरवानुभूति प्रकाशमान होती है।

जैन विद्वानो ने राजस्थानी साहित्य की जो सेवा की है, वह तो परम श्लाघ्य है ही परन्तु इतर वर्गों ने भी राजस्थानी भाषा को काव्याभिव्यक्ति का साधन बनाकर बड़ा काम किया है। इसका प्रमाण डॉ. दर्शनलाल 'मामा' का 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य में योगदान' शीर्षक शोध-ग्रन्थ है।

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ के द्वारा अनेक राजस्थानी कवि और उनकी कृतियां प्रकाश में आए है। आशा है, अन्य अनिसंधित्सु विद्वान् भी इसी प्रकार राजस्थानी-साहित्य के उन्नायक वर्गो को और उनकी रचनाओ को प्रकाश मे लाने के लिए कृत-संकल्प होंगे।

— (डॉ.) मनोहर शर्मा
सम्पादक 'वरदा'
बिसाऊ (राजस्थान)

डॉ. दर्शनलाल 'मामा' के शोध-प्रबन्ध 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य में योगदान' को जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. की उपाधि के लिये स्वीकार करना हर्ष का विषय है।

शोध-प्रबन्ध का यह विषय अत्यन्त ही नवीन है जिसके माध्यम से राजस्थानी साहित्य के इतिहास के एक अंधेरे कोने को प्रकाशित किया गया है। राजस्थानी साहित्य का अध्ययन करने वाले शोधार्थियों के लिये यह शोध-प्रबन्ध निश्चित ही लाभप्रद सिद्ध होगा।

लेखक ने साहित्य-संसार को वहुत सी विलुप्त-प्राय विभूतियों का परिचय करवाया है एवं वहुत सी समस्याओं का सहज ही समाधान कर राजस्थानी साहित्य को एक नई दिशा दी है। अतः डॉ. दर्शनलाल 'मामा' का यह प्रयास श्लाघ्य है।

— सीताराम लालस
सम्पादक
राजस्थानी सवद कोस
जोधपुर (राज.)

'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का राजस्थानी साहित्य मे योगदान' यह जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत एक शोध-प्रवन्ध है, जिसके आधार पर इसके प्रस्तुत कर्ता डॉ. श्री दर्शनलाल 'मामा' को पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। शोध का विपय उसके शीर्षक से स्पष्ट है।

शीर्षक के उद्देश्य की पूर्ति में भूमिका, कवि परिचय, दार्शनिक दृष्टिकोण, भक्ति-भावना, उपासना, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चित्रण, रचनाओ का साहित्यिक मूल्याकन, अध्ययन की उपलब्धियां इत्यादि अन्तर्शीर्षको द्वारा उपलब्ध सामग्री प्रस्तुत की गई है।

यह ग्रन्थ सरल और सुवोध भापा मे लिखा गया है तथा अपने विपय का इसमें भली प्रकार प्रतिपादन किया गया है। राजस्थानी कवियों का परिचय वि. सं. १२०१ से काल विभाजन करते हुए वर्तमान काल तक का दिया गया है जो पूर्ण है एवं यह प्रयास सुन्दर है।

भूमिका मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के विषय की जो जानकारी दी है, शाकद्वीपीय ब्राह्मण समाज के लिए ही नहीं, अन्य जिज्ञासुजनो के लिए भी उपयोगी है।

निवन्ध में जो अनोखी नवीनता मुझे देखने को मिली, वह है

उसके विषय-वस्तु का चुनाव जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने राजस्थानी साहित्य के उत्कर्ष में योग-दान दिया है, उससे कही बढकर इस ग्रन्थ के लेखक ने राजस्थानी साहित्य के इतिहास-निर्माण-शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हमारे सम्मुख रखकर स्तुत्य कार्य किया है।

— भूरसिंह राठौड़
संचालक
मरु-जांगल साहित्य संस्थान
फेफाना (श्री गंगानगर)

डॉ. दर्शनलाल 'मामा' एक सफल अनुसंधाता और कृती लेखक है। उन के द्वारा प्रस्तुत 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का राजस्थानी साहित्य मे योगदान' नामक शोध-प्रबन्ध समाज के लिए गीता और रामायण की तरह पवित्र है। यह प्रत्येक घर में संग्रहणीय है। मुझे पूर्ण हार्दिक विश्वास है कि इस ग्रंथ का लाभ प्रत्येक बन्धु अवश्य ही उठायेगे।

यह ग्रन्थ हमारे लिए प्रेरणादायक है तथा ऐसे सूर्य की तरह है जो अपने प्रकाशपुंज से हमारी कौम को सदा आलोकित करता रहेगा।

समस्त शाकद्वीपीय ब्राह्मण-समाज के लिए यह गौरव का विषय है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण समाज के उज्ज्वल नक्षत्र, प्रतिष्ठित कवि एव प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. दर्शनलाल 'मामा' ने अपने अथक परि-श्रम से यह ग्रन्थ लिखकर हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा में चार चांद लगा दिए है।

विश्व में प्रथम बार शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो पर इतनी व्यापक सामग्री एक ही ग्रन्थ में देखने को मिली है, यह हमारे लिए

सौभाग्य की वात है। इस ग्रन्थ ने राजस्थानी साहित्य को एक नया मोड़ दिया है एवं हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

डॉ. दर्शन 'मामा' अखिल भारतीय स्तर पर कई वार पुरस्कृत हो चुके हैं। परमपिता परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है कि वह डॉ. दर्शन 'मामा' को दीर्घायु दे।

— **पंडित रतनलाल शास्त्री**
रानी वाजार,
वीकानेर

डॉ. दर्शनलाल 'मामा' ने इस शोध-प्रवन्ध के द्वारा हमारे समाज के प्राचीन कवियो को साहित्य-जगत् एवं विश्व के सामने गौरवपूर्ण एवं प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत कर वहुत वड़े अभाव की पूर्ति की है। 'वाडमेर टाईम्स' श्री 'मामा' का हार्दिक अभिनन्दन एवं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

— **पन्नालाल पंनल**
सम्पादक
वाड़मेर टाईम्स

विश्व-वाङ्मय में राजस्थानी-साहित्य का वैशिष्ट्य सर्वविदित है। परन्तु अद्यावधि राजस्थानी-साहित्य वारिधि के महान् कवि-रत्न कालान्धकार मे ओझल हैं। डॉ. दर्शनलाल 'मामा' ने इसी दिशा मे अनालोचित राजस्थानी शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो एवं उनकी काव्य-कृतियो का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर इस क्षति की पूर्ति की है। डॉ. 'मामा' का यह कृत्य न केवल साहित्यिक व ऐतिहासिक दृष्टि से वल्कि स्वकीय सामाजिक वर्ग के लिए भी एक अभूतपूर्व योगदान है। मुझे आशा है कि यह शोध-कृति न केवल वर्तमान वल्कि भविष्य में भी साहित्य एवं समाज का पथ-प्रशस्त करती रहेगी।

— **रामकृष्ण व्यास "महेन्द्र"**
एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी) पी-एच. डी.

अ नु क्र म णि का

अध्याय : १

भूमिका

शाकद्वीप से तात्पर्य :

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के आदिस्थान के रूप मे प्राप्त ग्रन्थों मे शाकद्वीप का उल्लेख हुआ है । शाक नामक वृक्षों की बहुलता के कारण ही उक्त द्वीप शाकद्वीप के नाम से अभिहित किया गया । इस वृक्ष के पत्ते भीतर से कडे और बाहर से कोमल होते है । इनमे अतुल सुगन्ध होती है, जिसके कारण इस द्वीप मे सदा सुगन्धि फैली रहती है ।[1]

शाकद्वीप का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद मे प्राप्त होता है[2] जो इस बात का परिचायक है कि सतयुग में उक्त द्वीप का विशिष्ट महत्त्व था । भविष्य पुराण मे भी शाकद्वीप का उल्लेख हुआ है ।[3] महाभारत मे भी शाकद्वीप का वर्णन आया है। इसके अनुसार क्षीरोद्-सागर (कास्पीयन सागर) का कुछ भाग शाकद्वीप से घिरा हुआ था ।[4]

वायुपुराण के अनुसार भी क्षीरोद्सागर का कुछ भाग शाक-द्वीप से घिरा हुआ था तथा दधि एव मण्डोदक सागरों का स्पर्श करता था ।[5]

---

१. शा० ब्रा० बंधु अक ३–४ वर्ष १६, पृ० स० ५४ ।

२. ऋग्वेद, ६।२४।४ ।

३. भविष्यपुराण, अध्याय ११७ ।

४ भीष्म पर्व, ११।६।१० ।

५. क्षीरोदेन समुद्रेण सर्वत परिवारित. शाकद्वीपस्तु विरक्तरात्समेन तु समन्ततः
वायुपुराण, ४६।६६ ।

मत्स्यपुराण मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि लवणोदधि शाकद्वीप से घिरा था ।[1]

श्रीमद्भागवत के भाषा स्कन्ध के अनुसार "शाकद्वीप का विस्तार वत्तीस लाख योजन है, यह द्वीप दधि रस के समुद्र से घिरा हुआ है, इसमे शाक नाम के वृक्ष है । इन्ही के नाम से यह शाकद्वीप कहलाता है ।"[2]

उसमे प्रियव्रत-पुत्र मेघातिथि अधिपति था। उसने इस द्वीप को अपने सात पुत्रो के नाम से सात खडों मे विभाग कर उनमे यथाक्रम पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, वहुरूप, विश्वाधार इन सात पुत्रो को सात वर्षो में अधिपति रूप से स्थापन किया। तदन्तर वह राजा भगवान् के मन को प्रवेश करने चला गया। इन खडो के पर्वत (१) ईशान (२) उरु वेग (३) वलभद्र (४) शतकेशर (५) सहस्रस्तोत्र (६) देवपाल (७) निजवृत्ति है और (१) अनघ (२) आयुर्दा (३) उभय सृष्टि (४) अपराजिता (५) पंचपदी (६) सहस्रस्पुति (७) निजवृत्ति नदिया है । इस खड में रहने वाले ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अणुव्रत वर्णधारी हो प्राणायाम मे राजस, तामस गुण को दूर करते हुए समाधियोग से भगवान् की उपासना करते हैं ।

इसके अतिरिक्त जिन पुराणो और ग्रन्थो मे शाकद्वीप का वर्णन आया है, उनमे से कुछ निम्नांक हैं—

(१) वायुपुराण ३३ वें अध्याय मे श्लोक १२ ।
(२) ब्रह्म महापुराण २० वां अध्याय ।
(३) विष्णु पुराण द्वितीयायास चौथा अध्याय ।
(४) शिव महापुराण के सन्तकुमार संहिता में अध्याय ३ ।
(५) देवी भागवत के अष्टम स्कन्ध मे अध्याय १३ ।
(६) मार्कण्डेय पुराण के ५४, ५५ वें अध्याय में ।
(७) वाराह महापुराण के ६० वे अध्याय मे ।

---

१. मत्स्यपुराण, १२२।३ ।
२. श्रीमद्भागवत भाषा स्कन्व, पृ० सं० ४२४ ।

(८) अग्निपुराण के ११९ वे अध्याय मे ।
(९) लिंग महापुराण अध्याय ५३ ।
(१०) स्कन्ध महापुराण के शंकर संहिता में दक्ष खंड ४० वां अध्याय ।
(११) गरुड़ महापुराण अध्याय ५४ में ।
(१२) ब्रह्माण्ड पुराण अध्याय ५६ मे ।
(१३) कूर्मपुराण अध्याय ४४ मे ।
(१४) नारदीय पुराण के पूर्व खंड मे ।
(१५) वामन महापुराण के महर्षिगण शुक्र संवाद में ।
(१६) नैषधादि काव्यों में ।
(१७) शककालीन भारत-प्रशान्तकुमार जायसवाल ।
(१८) देव वरणांक अभिलेख से-वही, पृ० १२६ ।
(१९) भविष्यपुराण में अध्याय ११७ ।
(२०) साम्वपुराण मे ।
(२१) पद्मपुराण मे ।

श्रीमद्भागवत के पांचवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अनुसार भी-

भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए लोकालोक पर्वत तक प्रकाश करते है, तव पृथ्वीमंडल का आधा भाग-जिसके सामने सूर्य उस समय तक रहते हैं, प्रकाशित होता है और दूसरे आधे भाग में अंधकार रहता है ।

इसके वारे में एक कथा भी है-प्रियव्रत ने प्रतिज्ञा की कि मै अपने तेज से रात को भी दिन वनाऊंगा। तव भगवान् की उपासना करने से अलौकिक पराक्रम प्राप्त किए हुए राजा प्रियव्रत ने सूर्य के समान वेग वाले ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर दूसरे सूर्य के समान सूर्य भगवान् के साथ ही सात वार पृथ्वी की परिक्रमा की।

जव प्रियव्रत आठवा चक्कर लगाने वाला ही था कि चतुरानन ब्रह्मा ने कहा कि पुत्र यह तुम्हारा कार्य नही है और न ही इस कार्य को करने का तुम्हारा अधिकार है । ब्रह्मा के यों रोकने पर प्रियव्रत ने अपना विचार छोड दिया । प्रियव्रत का रथ सात वार पृथ्वी पर घूमा, उसी से पहिये की सात लकीरे बन गई

श्रौर वे ही सातों सागर हो गये । उन्ही सातों सागरों द्वारा वीच की पृथ्वी से निम्न द्वीप वन गये—

(१) शाकद्वीप
(२) शालूद्वीप
(३) क्रौंचद्वीप
(४) जंबूद्वीप
(५) पुष्करद्वीप
(६) दक्षद्वीप
(७) मलीद्वीप

इस प्रकार शाकद्वीप का वर्णन कई ग्रन्थों पुराणो आदि मे श्राया है और इसे कई विद्वानो ने स्वीकार भी किया है, जिनमे डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री निरंजन शर्मा अजित, श्री विश्वनाथ शास्त्री, श्री शभुसुदर्शन श्रादि के नाम उल्लेखनीय है । श्रुति भी इसमे प्रमाण देती है । [1]

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों से तात्पर्य

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो से तात्पर्य है, ब्राह्मणो का वह वर्ग जो वड़े गौरव से अपने श्रापको शाकद्वीपीय ब्राह्मण मानता है । श्राज भी भारत मे रहने वाले ब्राह्मणों मे एक वर्ग ऐसा है जो अपने आपको शाकद्वीपीय ब्राह्मण नाम से सम्वोधित करता है । उनमे से कई व्यक्ति अपने नाम के आगे मग, भोजक, सेवग, मिहिर, सूर्यद्विज, शाकद्वीपीय ब्राह्मण श्रादि लिखते भी हैं। ये अन्य नाम यद्यपि इनके ही पर्याय है किन्तु यह तो निश्चित है कि ये लोग चाहे भारत में रहते हो अथवा भारत से वाहर, अपने श्रापको शाकद्वीपीय वाह्मण ही मानते हैं ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का मूल स्थान शाकद्वीप ही था, इसमे कोई दो मत नही हो सकते, कारण कि नाम से ही स्पष्ट है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण अर्थात् शाकद्वीप मे रहने वाले ब्राह्मण और इसी

---

१. ऋग्वेद, ६।२४।४ ।

स्थान से ये लोग विश्व के अन्य भागों में फैले । शाकद्वीप का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है जो इस बात का परिचायक है कि सतयुग मे उक्त द्वीप का विशिष्ट महत्त्व था।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का मूल स्थान शाकद्वीप ही था, इसमें कोई दो मत नही हो सकते । इसके बारे में वेद, पुराण तथा अन्य ग्रन्थ, अभिलेख आदि प्रमाण देते हैं तथा भारत के अनेक प्रभृति विद्वानो ने इसे स्वीकारा भी है। संक्षिप्त मे कुछ नाम उल्लेखनीय हैं। (१) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, (२) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, (३) डा० रागेय राघव, (४) डा० हरवशलाल शर्मा, (५) श्री निरजन शर्मा 'अजित', (६) श्री जानकीलाल शास्त्री (७) पं० विश्वनाथ शास्त्री आदि । इसका विस्तृत विवरण शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का भारत से सम्बन्ध मे आगे दिया जाएगा ।

उत्पत्ति

इनकी उत्पति में कुछ पुराण आदि के तथ्य भी अवलोकनीय हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की उत्पत्ति के बारे में सूर्य भगवान् स्वयं कहते है कि सर्वप्रथम मैं सर्वोत्तम मग ब्राह्मण को बनाता हूँ। [1] फिर मेरी पूजा करने वाले भोजक ब्राह्मण द्विव्य जाननीय है। [2]

'मगा ब्राह्मण भूयिष्ठा'

अर्थात् मग ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है ।

नाभोज्य भुंजते । यस्मात्तेनासै । भोज कीमत ।

जिस वास्ते अभोज्य वस्तु को नही खाते इससे वे भोजक कहलाते है ।

'आदित्य भोज के विद्यादानोदेह समुद्रकम'

भोजक को आदित्य जाने क्योंकि वह सूर्य के शरीर से उत्पन्न है। [3] मकार को जो ध्यान करते है, मदात्मक उनका ज्ञान है।

---

१. भविष्य पुराण, ब्राह्मण अध्याय ११७, श्लोक २३ ।

२. वही, श्लोक २६ ।

३. भविष्यपुराण अध्याय २२, श्लोक स० ३४ ।

प्रकार का ध्यान करने से ये मग कहे जाते हैं ।[1]

सांबपुराण के आधार पर शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति अध्याय ३८ के आधार पर :

शाकद्वीप के राजा की कामना हुई कि मैं सदेह सूर्यलोक को चला जाऊं । तब वह ब्राह्मणों के पास गया और उनके पास अपनी इच्छा व्यक्त की । ब्राह्मणों ने उससे कहा कि इसके लिए तुम्हें सौर-यज्ञ करवाना होगा । इससे पहिले तुम सूर्यलोक मे सदेह नही जा सकते । राजा ने वचन सुनते ही दृढ निश्चय कर लिया कि अब तो मुझे सूर्यलोक में जाना ही है । इसलिए उसने ३०० वर्ष तक कडी तपस्या की । तब सूर्य भगवान् प्रकट हुए और बोले, "हे राजा तुम्हारी क्या इच्छा है ? जो चाहो वर मांगो वही वर हम तुम्हे देंगे ।" राजा ने उत्तर दिया कि हम सौर-यज्ञ करवाना चाहते है, परन्तु हमें कोई सौर-यज्ञ करवाने वाले नही मिलते । इस यज्ञ से हमारा प्रयोजन यही है कि हम सदेह सूर्यलोक चले जायं ।

इस पर, सूर्य भगवान् ने अपने नेत्र बंदकर एक क्षण ध्यान किया और उनके प्रभा मंडल से उसी समय सात ब्राह्मण प्रकट हुए । सातों ब्रह्मज्ञानी और वेद वेदान्त के पारंगत थे और उनको यज्ञ करने का विधि-विधान बतलाया एवं कहा कि तुम्हें ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे पृथ्वी पर तुम लोगों की संतान बनी रहे और तुम लोग अन्य लोगों को पवित्र कर सको । इस पर उन ब्राह्मणों ने मानस-संतान उत्पन्न की जिससे उनके दो दो पुत्र और दो दो पुत्रियां हुईं । इसी क्रम से उनकी संसार में वृद्धि होती रही ।[2]

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति के बारे में एक कथा विष्णु-पुराण की भी है ।

प्रथम सृष्टिकाल में वैदिक धर्म प्रचार के लिये परमात्मा ने अपने शरीर से वशिष्ठादि दिव्य ब्राह्मणों को उत्पन्न कर दिया एवं

---

१. भविष्यपुराण अध्याय १४४, श्लोक २५ ।

२. अयोध्या के इतिहास का अध्याय—शा० ब्रा० बंधु अक ६५, वर्ष १७ संकलनकर्त्ता—पं० गंगाविष्णु शास्त्री ।

शाकद्वीप में स्थापन किया था। इसकी स्थापना का समय भी वही है, जबकि वैदिक धर्म की इस सृष्टि में स्थापना हुई।

सत्यलोक निवासी सूर्यमंडल को वेध करने वाले इन दिव्य ब्राह्मणों को वैदिक धर्म प्रचार के लिए सर्व प्रथमः शाकद्वीप में स्थापित किया गया। शाकद्वीप का राजा मेधातिथि मनुजी का पौत्र एवं प्रियव्रत का पुत्र था। प्रियव्रत ने मेधातिथि को सब पुत्रों में श्रेष्ठ और बुद्धिमान एवं भगवान् का परम भक्त यथा नामाः तथा गुणाः जानकर वैकुंठ के समीप और क्षीरसागर के तट पर पवित्र भूमि शाकद्वीप का राजा बनाया। उसने ही पृथ्वी पर वैदिक धर्म का पूजन–याजन का प्रचार–उपर्युक्त वशिष्ठादि दिव्य ऋषियों से करवाया था। वह राजा मेधातिथि बडा ही प्रतापी, दयालु, आर्यों में श्रेष्ठ सूर्यनारायण का परम भक्त था। पहिले प्रायः सब ही सूर्योपासक थे, ऐसा कई विद्वानों को स्वीकार्य है। ऐसा कई विद्वानों का मत है कि तदन्तर युग में भगवान् के अवतार होते गये तब से उनके नामों से उपासना की जाने लगी और मूर्तिया स्थापित की जाने लगी एवं उनके लिए विशाल मन्दिर बनवाये गये।

आज भी सूर्योपासना एवं सूर्य को प्रसन्न करने हेतु लोग तरह तरह के यज्ञ आदि करवाते है और कई शाकद्वीपीय ब्राह्मण अपने आपको सूर्य का वंशज बतलाते हैं।

कुछ भी हो, इतना तो अवश्य ही मानना पडेगा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति शाकद्वीप नामक स्थान से हुई, और यही से वे विश्व के अन्य भागों में फैले।

भारत से इनका सम्बन्ध

कुछ विद्वानों का मत है कि शाकद्वीप भारत में ही था और यहीं से शाकद्वीपीय ब्राह्मण विश्व के अन्य भागों में फैले। कुछ विद्वानों का मत है कि शाकद्वीप भारत से बाहर था और वहीं से ये ब्राह्मण विश्व के अन्य भागों मे गये। परन्तु इतना अवश्य ही मानना पड़ेगा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का मूल स्थान शाकद्वीप था। इसे दोनों विभिन्न मतो के विद्वानों ने स्वीकारा है, जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का भारत में विस्तार कब हुआ जिससे कि भारत से इनका सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। इस सम्बन्ध मे भी दो बातें हैं। प्रथम तो यह कि कुछ पुस्तकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये लोग राजा दशरथ के समय में सौर यज्ञ करने हेतु बुलाये गये।[1] दूसरी यह कि ये कृष्ण के पुत्र साम्व को जव कुष्ठ रोग हुआ तो उस रोग के निवारण हेतु इन्हे बुलाया गया।[2]

राजा दशरथ के समय सौर यज्ञ करवाने हेतु आने के सम्बन्ध में

श्री दिव्य द्वीप श्री शाकद्वीप से विप्रो को तुम बुलवा लाओ,
मेरी सम्मति है यही भूप, तुम स्वयं रथी होकर जाओ,
राजा दशरथ ने विप्रो को अपने घर स्वय बुलाया था,
जव यज्ञ कार्य संपन्न हुआ विप्रों को पुन. पठाया था।[3]

शाकद्वीप से जो यहा आये द्विज शुभ धाम,
याजक, भोजक, द्विव्य मग, विप्र जाति के नाम।[4]

श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के कुष्ठ रोग के निवारण हेतु बुलवाने के संबंध में

श्रीकृष्ण शाप से कुष्ठ रोग ने आकर उनको जकड़ लिया,
पहले की काया नही रही भीषण विपत्ति ने पकड़ लिया।[5]

श्रीकृष्णदेव की सम्मति से श्री गरुडदेव पर चढ करके,
श्री शाकद्वीप में गये साम्व, रवि की आज्ञा उर मे धर के,

परिवार अठारह विप्रों के, पत्नी समेत पहले आये,
उन विप्रों ने विधि वेद सहित मन्दिर में सूर्य थे पधराये।[6]

---

१. सूर्यचालीसा, पृ० सं० १ से २४।
२. वही, पृ० सं० २४ से ३९ (पद्य रचना मे विस्तृत वर्णन)
३. वही, पृ० २४।
४. वही, पृ० ३३।
५. वही, पृ० २६।
६. सूर्यचालीसा, पृ० स० २८।

डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी

शाकद्वीपीय ब्राह्मण शाकद्वीप से आये थे, जिन्होंने आर्यों की सूर्य-पूजा को पुनः प्रतिष्ठित किया था ।[1]

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

उडीसा के सांब पुराण में साम्ब के द्वारा सूर्य-पूजा के लिये मग या शाकद्वीपीयो को ले जाने की वात है ।[2]

डॉ. हरवंशलाल शर्मा

भविष्य पुराण की सवसे वडी विशेषता यही है कि इसमें शाकद्वीपीय मग-ब्राह्मणो का वर्णन है ।[3]

आचार्य क्षितिमोहन सेन

शाकद्वीपीय ब्राह्मण विदेशी है । ये लोग पहिले सूर्य के भक्त थे और ज्योतिपशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे ।[4]

डॉ. रांगेय राघव

भारतीय पुराण स्पष्ट करते है कि कृष्ण का पुत्र साम्ब शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को भारत लाया था ।[5]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण से तात्पर्य है शाकद्वीप का पुरोहित वर्ग । यह लोग मग थे, जिनमें सूर्य की पूजा होती थी ।[6]

इसके अतिरिक्त डॉ. रांगेय राघव ने अपनी पुस्तक के अंत में तालिका मे भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के प्रति लिखा है जो प्रस्तुत है–

१४०० ई० पू० के लगभग : मग ब्राह्मणों का प्रसार[7]

---

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० स० ६ ।
२. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, पृ० स० ८६ ।
३. सूर और उनका साहित्य, पृ० स० ११४–११५ ।
४. सस्कृति सगम, पृ० स० ५० ।
५. अधेरे के जुगनू, पृ० स० १५३ ।
६. अधेरे के जुगनू, पृ० स० १५३ ।
७. वही, पृ० सं० ६५७ ।

१५०० ई० पू० के लगभग : पांचरात्र पद्धति के बीच वाले मग ब्राह्मणों का शाकद्वीप से आगमन ।[1]

११०० ई० पू० के लगभग : मगों का पूर्वगमन । तप का बढता हुआ प्रभाव ।[2]

प्रशान्तकुमार जायसवाल

पुराणों के अनुसार कृष्णवंशी साम्ब ने सूर्य का पहिला मदिर सिंध मे वनवाया और उसके लिये उसने शाकद्वीप से पूजा के लिये 'मग' ब्राह्मणों को आमंत्रित किया । देव वरर्णाक अभिलेख से विदित होता है कि–मगधराज वालादित्य देव ने सूर्य की पूजा के निमित्त एक गाव 'भोजक' ब्राह्मण को दिया था । वाद में वह राजा अवंति–वर्मन द्वारा भोजक ऋषि को प्रदान कर दिया गया ।[3]

ये सूर्य–पूजक थे, यह उनके लेख से स्पष्ट है । उन्होने ऐसे नाम धारण किये थे, जो उस देवता के नाम होते थे । प्रमाण स्वरूप स्वामी जीवदानन का कानखेरा लेख लिया जा सकता है, जिस पर निम्न लेख है–सिद्धं ।। भगवतस्त्रिदश गणसेनापतेरजित–सेनस्य स्वामि महासेन महातेज ...आदित्यवीर्य्य जीवदाम ...।[4]

आदित्य सूर्य का नाम है । इस प्रकार इस लेख का अर्थ हुआ–सिद्ध । भगवान् स्वर्ग के सेनापति, अजेय सेना वाले, स्वामि महासेन के समान महत् तेज वाले सूर्य–तुल्य पराक्रम वाले जीव–दाम (का) ....

सी० एस० विलियम

"They profess excessive purity and call themselves SHAKDWIPIYA BRAHMAN."

---

१. वही, पृ० ६५७ ।

२. वही, पृ० ६५८ ।

३. शककालीन भारत, पृ० सं० १२६ ।

४. एपि० १६। १३२ ।

सूर्य द्विज सातिशय पवित्रता की रक्षा करते हैं और ये लोग शाकद्वीपीय ब्राह्मण है ।[1]

फैजाबाद के भूतपूर्व कमिश्नर 'कोनर्गी' के अनुसार

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के इतिहास पर विचार करने से यह बात प्रमाणित होती है कि द्वापर युग के अंत में कृष्ण के पुत्र साम्ब शाकद्वीप गये और वहां से शाकद्वीपीय ब्राह्मणो को ले आये, लाने का कारण साम्व को कुष्ठ रोग से मुक्त होना था। पांच हजार वर्ष पूर्व भारत के सभी भौम ब्राह्मण दिव्य भूदेव शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के चरणों मे नतमस्तक थे क्योंकि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में विद्या, तपस्या, विवेक विनय, संगठन आदि सव ही गुण विद्यमान थे ।[2]

कर्नल टाड

शाकद्वीपीय ब्राह्मण शाकद्वीप से इस देश मे आये हैं, जिनको वहां 'मग' कहते थे और हिन्दुस्तान में आने के वाद वे शाकद्वीपीय ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए और यहां के ब्राह्मणो से भिन्न वतलाने के कारण ही इन्हे शाकद्वीपीय ब्राह्मण कहते है । राजपूताने मे उन को सेवम और भोजक भी कहते है ।[3]

जिला शाहावाद में प्राप्त देव वरणार्क अभिलेख–'मग ब्राह्मणों का दूसरा नाम भोजक भी था ।[4]'

राजस्थान के प्रसिद्ध कवि तेज ने भी अपनी पुस्तक 'मग सूर्य प्रकाश' मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का शाकद्वीप से आना लिखा है ।[5]

डॉ. नारायणसिंह भाटी भी यह स्वीकार करते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण शाकद्वीप से आये थे ।[6]

---

१. शा० ब्रा० वंधु, नवम्बर ६६, पृ० सं० २५ ।
२. हिस्ट्री आफ अयोध्या एण्ड फैजावाद, अध्याय १५ ।
३. राजस्थान का इतिहास, टिप्पणी प्रकरण, २, पृ० स० ४३ ।
४ सस्कृत इगलिश डिक्शनेरी, पृ० स० ७२३ ।
५. मग सूर्य प्रकाश, पृ० १५ ।
६. परम्परा, भाग २५–२६, पृ० स० १६ ।

स्व० ब्रहस्पति पाठक

शाकद्वीप से जम्बू आये तेज में रवि भावना,
पुर वहतर गावहीं जो जाति मग के आवना ।[1]

सारांश यह है कि चाहे शाकद्वीप भारत में रहा हो या भारत के वाहर किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण भारत मे तथा विश्व के अन्य भागों में शाकद्वीप नामक स्थान से फैले तथा भारत के साथ भी इनका सम्वन्ध वहुत प्राचीन काल से रहा है ।

विभिन्न प्रदेश और शाकद्वीपीय ब्राह्मण

वैसे तो शाकद्वीपीय ब्राह्मण वर्तमान समय में विश्व के सभी भागों में रहते है किन्तु फिर भी उनके गोत्र के अनुसार ये लोग अलग अलग नामो से अभिहित किये जाते है और कई तो अपने नाम आगे लिखते भी है । जैसे राजस्थान मे रहने वाले सेवग, भोजक, व्यास, सूर्यद्विज, शाकद्वीपीय आदि । ठीक उसी प्रकार वंगाल में रहने वाले गृह विप्र, वेद आदि । आसाम मे वारदोलिया एवं उत्तर प्रदेश में पाठक, मिश्र, मिहिर आदि ।

व्यवसाय

प्राचीन काल में शाकद्वीपीय ब्राह्मण सूर्य की पूजा करते थे इससे पता चलता है कि ये सूर्योपासक तो प्राचीन काल से ही रहे हैं । किंतु सारे के सारे शाकद्वीपीय ब्राह्मण केवल पूजा-पाठ करते थे, यही वात नही है। कई शाकद्वीपीय ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी करते थे तो कई राजाओ के सलाहकार के रूप में कार्य करते थे । कोई मंदिरों की पूजा करते थे तो कोई खेती वाड़ी करते हुए भी अपना जीवन-निर्वाह करते थे ।

तात्पर्य यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण सूर्योपासना तो करते ही थे और आज भी हर वर्ष सूर्य-सप्तमी के दिन यज्ञ-हवन आदि भी करते है किन्तु इसके अतिरिक्त भी इन लोगों के भिन्न-भिन्न

---

१. भोजनराग पृ० स० १५ ।

व्यवसाय रहे है । उदाहरणार्थ कोई पूजा-पाठ करते तो कोई व्यापार। कोई राज्याश्रित थे तो कोई खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे । कई शा. ब्रा. नौकरी भी करते थे ।

राजस्थान से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का सम्बन्ध

राजस्थान मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का आगमन कैसे और किसलिये हुआ यह प्रश्न वड़ा ही जटिल है, किंतु यह वात तो निश्चित है कि कोई भी जाति के लोग चाहे वे किसी भी जाति के हो, किसी भी देश के निवासी हो अपना स्थान छोडकर अन्य स्थान पर तभी जाते है जब कोई मुख्य कारण होता है । उदाहरणार्थ-किसी अन्य प्रदेश को अपने अधिकार मे करने हेतु जाना, अथवा कोई अन्य व्यवसाय करने हेतु जाना ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का राजस्थान से क्या सम्बन्ध रहा अथवा वे राजस्थान मे कव आये ? इस सम्वन्ध मे भी विभिन्न मत है ।

(१) आठवी शताब्दी मे राजस्थान में आकर भीनमाल मे वसने वाले एक शाकद्वीपीय ब्राह्मण का वर्णन मिलता है, जो राजा वर्मलात के मत्री थे। इनका नाम सुप्रभदेव था, जो प्रसिद्ध कवि माघ के दादा थे ।[1]

(२) पहिले शाकद्वीपीय ब्राह्मण १२१२ की साल मे जैसलमेर मे सूर्य मन्दिर की स्थापना करने हेतु आये और यही वस गये ।[2]

(३) पूर्व के देशों में आकर सर्वप्रथम शाकद्वीपीय ब्राह्मण राजपूताने मे वस गये ।[3]

(४) मालवे से राजा भरतरी दूसरा भाई ओसनदेव, अश्वसेन सुत तीसरा भाई विक्रम था । एक समय दूसरा भाई गुस्सा होकर मालवा छोडकर चला गया जब उसकी भेंट मग ब्राह्मणो हुई । उनमे से एक तपस्वी ब्राह्मण को साथ लेकर वह मरुभूमि आया और वहा उसने एक नगर वसाया और पर्वत पर किल्ला वनवा कर

---

१ महाकवि माघ, जीवन कला और कृतिया, पृ० स० २३० ।

२. मग सूर्य प्रकाश, पृ० स० ३५ ।

३. मग सूर्य प्रकाश, पृ० स० ३६ ।

जगदम्बा से विनती की । माता जगदम्बा प्रकट हुई तो राजा ने तूने मेरा सत्य कार्य पूरा किया अतः आज से तेरा नाम सच्चीवाय है । फिर इस नाम से नगर भी प्रसिद्ध हुआ और यही चलकर ओसच्चिआय फिर ओसियां नाम से प्रसिद्ध हुआ और यही उस राजा ने शाकद्वीपीय ब्राह्मण को मन्दिर सौंपकर अपना कुलगुरु बनाया ।[1] कुछ भी हो इस सम्बन्ध मे मेरा मत यही है कि चाहे वे किसी काल मे आये हो यह तो निश्चित है कि वे विभिन्न कारणो से यहा आये। कोई यदि मन्दिरो की पूजा करने आए तो कोई अन्य तरीके से जीविकोपार्जन करने हेतु आए । उदाहरणार्थ-कोई कृषि करने हेतु या कोई अपना स्वय का निजी व्यापार करने हेतु ।

राजस्थान में इनके व्यवसाय

राजस्थान मे निवास करने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के अलग-अलग व्यवसाय है । उदाहरणार्थ—कई व्यक्ति आज भी मन्दिरों की पूजा करते हैं, तो कोई राजकीय प्रशासन मे कार्य करते हैं । कोई डाक्टर है तो कोई इ जीनीयर, कोई राजनैतिक नेता है तो कोई विश्वविद्यालय मे आचार्य, कोई पत्रकार है तो कोई व्यापारी । कोई न्यायाधीश है तो कोई राज्य-कर्मचारी ।

तात्पर्य यह है कि राजस्थान मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के अलग-अलग व्तयसाय है । जहा भी मैं स्वयं गया मैंने देखा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण उच्च पदों पर सेवारत हैं तो कई कवि, पत्रकार, व्यापारी, कलाकार, विचारक आदि हैं ।

आज भी राजस्थान मे शाकद्वीपीय ही कई मन्दिरो मे पूजा के अधिकारी माने जाते हैं, उदाहरणस्वरूप—

जोधपुर के श्री गंगश्याम जी के मदिर में, बीकानेर के श्री लक्ष्मीनारायणजी के मदिर मे, भीनमाल के श्री वाराहश्याम मंदिर में आदि ।

---

१. वही, पृ० स० ४८ ।

शा. ब्राह्मणों की संस्थाएं–ऋषिकुमार समा, राजस्थान शा ब्रा. सघ, प्रगतिशील शा. ब्रा. सघ, निखिल भास्कर सघ आदि ।

पत्र–पत्रिकाएं–शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु, वार्षिक रिपोर्टर्स, ब्रह्म–ज्योति सौर–चक्र, सूर्योदय आदि ।

संक्षेप मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के भिन्न-भिन्न व्यवसाय है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का गौरव और महत्त्व

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का गौरव एव महत्त्व बहुत रहा है और आज भी है । यही कारण है कि इनकी प्रशंसा पुराणों आदि मे भी आई है तथा राजाओ के सलाहकार के रूप मे भी कई शाकद्वीपीय ब्राह्मण रहे ।

भविष्य पुराण पर्व १२७ मे सुमन्तु का कथन है कि सूर्य का पूजन और शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का विशेप महत्त्व है । सब देवो के अधिपति सूर्य का आश्रय लेकर पितृगण रहते है । इस कारण सूर्य–पूजन एव शाकद्वीपीय ब्राह्मणो को सदैव प्रसन्न रखना चाहिए । इनकी ही प्रसन्नता से समस्त पितृगण प्रसन्न रहते है और उन्हे शान्ति मिलती है । सब प्राणियो मे मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्यों मे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणो मे ग्रन्थ पारगामी विद्वान् श्रेष्ठ है, और पंडितो में वेदज्ञाता श्रेष्ठ है, और वेदज्ञों मे तत्वार्थ चिंतक श्रेष्ठ है, तत्वार्थ चिंतको मे ज्ञानी श्रेष्ठ है करोड़ों योगाभ्यासियो से शाकद्वीपीय ब्राह्मण श्रेष्ठ है ।[1]

ब्राह्मण पुराण मे स्पष्ट अंकित है कि इनकी उत्पत्ति सूर्य से शाकद्वीप मे हुई है ।

ब्राह्मणो मे मग (शाकद्वीपीय) ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है ।[2]

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के दर्शन करने से तथा पूजन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते है और मनोकामना पूर्ण हो जाती है ।[3]

---

१. भविष्य पुराण. पर्व १२७ ।

२. पद्मपुराण, स्वर्ग पर्व, अ० ७ ।

३. भविष्यपुराण, अ० १८७ ।

मगाः ब्राह्मण भूयिष्ठा

(१) भविष्यपुराण ब्राह्मण अध्याय १४६ श्लोक ७४-७५
(२) साम्ब पुराण, अध्याय २५, श्लोक २९-३०
(३) विष्णुपुराण, द्वितीय अध्याय ४, श्लोक ६९
(४) पद्मपुराण, स्व खंड, अ. ११, श्लोक ३६

अर्थात् मग ब्राह्मण ही श्रेष्ठ ब्राह्मण है ।
भविष्यपुराण मे सूर्य के मुख से कहलाया गया है कि—

वेद से वढ़कर कोई शास्त्र नही है, गगा से वढकर नदी नहीं है, सूर्य से वढ़कर देवता नही है, मां से वढकर गति नहीं है । जैसे यह सब उत्तम है यद्‌त्तम वैसे ही भोजक उत्तम है ।

जो सूर्य है वह यहा भोजक है और यहां जो भोजक है वह सूर्य है ।[1]

भोजकी शाकद्वीपीय ब्राह्मणी निक्षुभा सूर्य पत्नी है और भोजक सूर्य है ।[2]

अश्वस्थमूले मुनिवृक्षामूले तथा तुलस्याश्च समीपदेशे
पुण्यस्थले भास्करभूसुराग्रे श्री रामचन्द्रस्यपुरः सदैव
तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नथास्यतटे वा रघुनाथकस्यं
आनन्दरामायण भादरेण पढ़तिश्च धन्या भुवि मानवास्ते ।[3]

सी० एस० विलियम

सूर्यद्विज सातिशय पवित्रता की रक्षा करते हैं और ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण है ।[4]

कोनर्गो

पांच हजार वर्ष पूर्व भारत मे सभी भौम ब्राह्मण दिव्य भूदेव शाकद्वीपीय ब्राह्मणो के चरणों में नतमस्तक थे क्योंकि शाक-

---

१ भविष्यपुराण, अ० १४७, श्लोक ४१-४२ ।
२. वही, अ० १६७, श्लोक १०८ ।
३. आनन्दरामायणे मनोहरकाडे, सं० ले० श्रीमती विन्धेश्वरी पाठक ।
४. शा० ब्रा० वंधु, नवम्बर ६६, पृ० १५ ।

द्वीपीय ब्राह्मणों में विद्या, तपस्या, विवेक, विनय, संगठन आदि सब ही गुण विद्यमान थे ।[1]

कर्नल टाड

शाकद्वीपीय ब्राह्मण शाकद्वीप से इस देश में आये हैं जिनको वहां मग कहते थे और इसके वाद वे शाकद्वीपीय ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए ।[2]

पुरोहित हरिनारायण

शाकद्वीपीय ब्राह्मण जाति में वड़े-वडे विद्वान, कवि, ज्योतिषी और गुणी हुए है और आज भी है ।[3]

भारतीय समाज में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का पद उच्च ब्राह्मणों के समकक्ष समझा जाता था । आज भी भारतीय समाज मे-ब्राह्मणों मे एक ऐसा वर्ग है जो अपने को वड़े गर्व से शाकद्वीपीय कहता है ।[4]

सक्षेप में हम यह कह मकते है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की महिमा का गान वेदों, पुराणो, मनुस्मृति, श्रीमद्भागवत् देवीभागवत् आदि में है एवं कई विद्वानों ने भी इनके गुणो का उल्लेख किया है।

---

१. हिस्ट्री आफ अयोध्या एंड फैजाबाद, अ० १५ ।
२. राजस्थान का इतिहास, टिप्पणी, प्रकरण, २, पृ० स० ४३ ।
३ र० रू० गी० रो० भूमिका हरिनारायण पुरोहित, पृ० स० १७ ।
४. शककालीन भारत, पृ० स० ९३-९४ ।

अध्याय : २

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का परिचय

राजस्थानीतर साहित्य

शाकद्वीपीय ब्राह्मणो मे अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हुए है, जिनके ग्रंथ साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति वन कर रह गये हैं और आज उनके शोध की वड़ी आवश्यकता है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के वारे मे पुरोहित हरिनारायण ने लिखा है कि सेवग जाति में वडे वड़े विद्वान्, कवि, ज्योतिषी और गुणी हुए हैं और अव भी हैं ।[1]

मेरी भी यह मान्यता है कि इस जाति मे वास्तव में अनेक विद्वान्, साहित्यकार, कवि, ज्योतिपी, आचार्य मनीषी हुए हैं और आज भी हैं, जिनके बारे में शोध करना नितान्त अनिवार्य है ।

राजस्थान मे ही संस्कृत साहित्य के महाकवि माघ भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । डा० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा ने अपने शोध-प्रवन्ध "महाकवि माघ जीवन, कला और कृतिया" मे इसका पुरजोर शब्दो मे समर्थन किया है ।[2]

डा० शर्मा ने अपने शोध-प्रवन्ध मे माघ के वारे में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, जिनमे से कुछ निम्नलिखित है—

(१) माघ के ब्राह्मण सिद्ध होने के वाद यह प्रश्न उठता

---

१. र० रू० गी० रो, पृ० स० १० ।

२. महाकवि माघ—जीवन, कला और कृतिया, पृ० स० १८५ ।

है कि वे कौन से ब्राह्मण थे ? प्राप्त तथ्यो से अनुमान होता है कि वे मग (शाकद्वीपीय) ब्राह्मण होगे ।[1]

(२) भविष्यपुराण के उपाख्यान से स्पष्ट है कि सूर्य की पूजा के अधिकारी वे ही ब्राह्मण है, जो शाकद्वीपीय है, अन्य ब्राह्मण नही । मग ब्राह्मण माघ को सूर्य मन्दिर भेट करने से पुण्यलाभ की प्राप्ति हुई ।[2]

(३) माघ शाकद्वीपीय मग ब्राह्मण थे, तभी तो उन्होने अपने परम आराध्य सूर्य देवता के मन्दिर का दान अपने आपको भाग्य-शाली मानते हुए स्वीकार किया, अन्यथा प्रभूत समृद्धिशाली तथा सहृदय-शिरोमणि परम विद्वान् महाकवि माघ अपने ही प्रिय व्यक्ति से आतिथ्य के वदले दान स्वीकार नही करते । न तो राजा भोज को माघ जैसे दान-पात्र मिल सकते थे और न महाकवि माघ को सूर्य-मन्दिर से वढ कर और कोई वड़ा दान ही मिल सकता था ।[3]

(४) शिशुपालवध मे भी महाकवि माघ के शाकद्वीपीय ब्राह्मण होने का प्रमाण मिलता है ।[4]

इसलिए अन्त साक्ष्य और वहिः साक्ष्य दोनो के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपालवध के रचयिता महाकवि 'माघ' शाकद्वीपीय मग ब्राह्मण थे ।[5]

श्री अगरचन्द नाहटा ने भी इन्हें ब्राह्मण माना है तथा इनका समय सातवी-आठवी शताब्दी का माना है ।[6]

महाकवि माघ को तो "काव्येषु माघः" अर्थात् कवियों में माघ ही सर्वोपरि है, यहां तक कहा गया है। माघ के भाई के साले

---

१. महाकवि माघ—जीवन, कला और कृतिया, पृ० १८२ ।

२. वही, पृ० १८४ ।

३. वही, पृ० १८४ ।

४. वही, पृ० १८४ ।

५ वही, पृ० १८५ ।

६. राजस्थानी साहित्य और परम्परा, पृ० सं० २५ ।

हरिभद्र तथा माघ के भतीजे सिद्धर्षि भी उच्च कोटि के कवि हुए हैं, जिनका वर्णन भी डा० शर्मा ने अपने प्रवन्ध मे किया है तथा अनेक ग्रंथो मे इनके प्रसंग आये हैं।

कवि माघ के वारे मे कुछ सम्मतियां—[1]

(१) उपमा कालिदास्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिन. पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

(२) काव्येषु माघः कवि कालिदास।

(३) तावद्मा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः

(४) मेघे माघे गतं वयः

अभिप्राय यह है कि महाकवि माघ जैसे कवि भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणों मे हुए हैं—इनसे पूर्व भी संस्कृत-साहित्य मे कई कवि हुए होगे और वाद मे भी अवश्य हुए है, जिनके शोध की वड़ी आवश्यकता है।

हरिभद्र सूरि को भी इसी तरह आठवी शताव्दी के पूर्वार्द्ध का कवि डा० शर्मा ने माना है और शाकद्वीपीय ब्राह्मण स्वीकार करते हुए बतलाया है कि वे महाकवि माघ के भाई के साले थे।[2]

हरिभद्र सूरि वाद मे जैन साधु हो गये थे, इसे कई विद्वानों ने स्वीकारा है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भी लिखा है—

प्रभावक चरित्र के अनुसार आचार्य हरिभद्र चित्तौड़ के राजा जितारी के राजपुरोहित थे। जैन धर्म के तो वे महान् आचार्य थे ही पर भारतीय दार्शनिक विद्वानो मे भी उनका अप्रतिम स्थान है।[3]

मुनि जिनविजय, पं० सुखलाल तथा प्रो० हीरालाल कापडिया ने भी इस कवि को उच्च कोटि का संस्कृत व प्राकृत का कवि स्वीकारा है।[4]

---

१. महाकवि माघ : जीवन, कला और कृतियाँ, पृ० सं० २।
२. वही, पृ० सं० ४१।
३. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० सं० २६।
४. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० सं० २६।

मैं अधिक विस्तार में न जाकर केवल इतना ही कहना उपयुक्त समझता हूँ कि बाद मे भले ही उन्होने जैन-धर्म स्वीकार किया हो किन्तु इसका यह अर्थ नही कि उस कवि ने शाकद्वीपीय ब्राह्मणी की कोख से जन्म नही लिया। अतएव मैं तो इन्हे शाकद्वीपीय ब्राह्मण ही मानता हूँ।

इनके बनाये हुए १४४४ ग्रन्थ कहे जाते है और वे आज उपलब्ध नही है किन्तु जितने ही उपलब्ध है, वे हमारे लिए जीवन पर्यन्त मनन करने और प्रत्येक शास्त्रीय विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पर्याप्त हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनकी उपलब्ध रचनाओं के बारे मे एक सूची भी दी है-जिनके विषय है न्याय और दर्शन, योग, ज्योतिष, जैन धर्म, जैन आगमो पर टीकाए एव कथा इत्यादि है।[1]

महाकवि माघ और हरिभद्र के बाद माघ के ही भतीजे सिद्धर्षि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि के रूप मे हमारे सामने आते है। वे भी उच्चकोटि के कवि थे। उन्होने संवत् ९६२ मे "उपमितिभव प्रपंच कथा" लिखी थी। इसे डा० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा ने शाकद्वीपीय ब्राह्मण एवं माघ का भतीजा होना स्वीकार किया है।[2]

इनके ग्रन्थ के बारे में श्री अगरचन्द नाहटा ने अपनी पुस्तक राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा मे लिखा है-[3]

"उपमितिभव प्रपच कथा" का संपादन सर्वप्रथम डा० हरमन जेकोबी ने किया था और वह संस्करण एशियाटिक सोसाइटी बगाल से प्रकाशित हुआ था। सोलह हजार श्लोको का यह रूपक ग्रन्थ सारे भारतीय साहित्य में अपने ढग का एक ही सबसे बडा ग्रन्थ है।[4]

पं० नाथूराम प्रेमी ने इसके बारे मे लिखा है—

"और कोई चाहे जो मत हो, परन्तु मैं तो इस ग्रंथ पर

---

१. वही, पृ० सं० २६।
२. महाकवि माघ, पृ० सं० ४५।
३. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० सं० २७
४. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० स० २७।

इतना मुग्ध हूँ कि संस्कृत साहित्य में और शायद अन्य किसी भापा के साहित्य मे इसकी जोड का दूसरा ग्र थ नही समझता हूँ । मुझे पूर्ण आशा है, जो सज्जन इस ग्रंथ को भावपूर्ण आदि से अत तक एक वार अध्ययन करेंगे, उनका भी मेरे जैसे ही समान मत हुए विना नही रहेगा । इस अभूतपूर्व शैली का इस हृदयद्रावक रचना-प्रणाली का यह एक ही ग्र थ है । कठिन से कठिन विषय को सरल से सरल और सरस बनाने का शायद ही कोई इससे अच्छा ढग होगा ।[1]

"उपमितिभव प्रपच कथा" का महत्त्व अनेक दृष्टियों से है । तत्कालीन सास्कृतिक सामग्री का वह अटूट भण्डार है । डा० दशरथ शर्मा ने इसके सास्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालने वाले कुछ लेख लिखे जो "मरुभारती" पत्रिका मे छपे है । वास्तव मे जिस तरह डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने "हर्षचरित्र" "कादम्वरी" आदि का सास्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसी तरह इस ग्रंथ का भी स्वतन्त्र रूप से गम्भीर अध्ययन किया जाना अपेक्षित है ।

गुजराती मे श्री मोतीचन्द्र गिरधर कापडीया का एक उल्लेखनीय ग्रन्थ "सिद्धर्षि" नाम से प्रकाशित हुआ है । उसमे इस ग्र थ के विविध प्रकार के महत्त्व को प्रकाश मे डालने का यत्न किया गया है । सिद्धर्षि रचित "श्री चन्द्रकेवली चरित्र", "उपदेशमाला टीका" और "न्याया-वतार विवृत्ति" आदि अन्य रचनाएं भी प्राप्त हैं, जिनसे उनकी वहु-मुखी प्रतिभा का पता चलता है ।[2]

सं० १७०१ से १८०० तक के हिन्दी कवि

(१) प्रेमचन्द
(२) प्रयाग
(३) गुलालचंद
(४) शिवप्रसाद
(५) हरिनाम

---

१. वही, पृ० सं० २७ ।
२. वही, पृ० सं० २७–२८ ।

सं० १८०१ से १९०० तक के हिन्दी कवि

(१) तिलोक सेवक
(२) दौलतराम
(३) श्रीनाथ जैसोर जैसलमेर
(४) वक्सीराम गाडूराम
(५) तारचन्द व्यास
(६) मनोहरदास
(७) गणेशदास, शिवप्रसाद आदि

१९०१ के वाद के कवियों में भी निरंजन शर्मा 'अजित' और चन्द्रिकाप्रसाद पाठक भी शा० ब्रा० कवि हुए हैं ।

तात्पर्य यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की जाति एक उच्च-वर्गीय ब्राह्मणो की जाति मे से रही है और आज भी है ।

इस जाति में कई कवि ऐसे हुए है, जिनका नाम साहित्य में अमर रहेगा । इस वात को कई विद्वानो ने स्वीकारा है और रचनाएं इसका प्रमाण है । आज भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणो मे कई ऐसे कवि वर्तमान है, जिनकी रचनाएं हिन्दी एवं राजस्थानी दोनों भाषाओं मे प्राप्त होती हैं तथा जिनका नाम उच्च कोटि के कवियों में आता है ।

अध्याय : ३

शाकद्वीपीय ब्रह्मण कवियों का परिचय

(राजस्थानी साहित्य के रचयिता)

(१) संवत् १२०१ से संवत् १६०० तक के कवि

राजस्थानी साहित्य की सर्जना करने वाले शाकद्वीय ब्राह्मण कवियो मे सर्वप्रथम कवि जो हमारे सामने आते हैं, वे है नरपति नाल्ह, जिन्हे श्री अगरचन्द नाहटा[1] एव श्री गोवर्द्धन शर्मा ने शाकद्वीय ब्राह्मण माना है।

मोतीलाल मेनारिया उसे १६ वी तथा सत्यजीवन वर्मा उसे १३ वी सदी का कवि ठहराते हैं। अब इस वात से हम बाहर निकले तो भी कैसे ? तर्कों के नश्तरो ने कवि और उसके काव्य की हत्या सी कर दी है।

इन सव वातों पर हम एक-एक करके विचार करेंगे। सवसे प्रथम हम इसकी जाति का प्रश्न लें। मेरी धारणा है कि कवि जैनेतर हिन्दू धर्मावलम्वी है जो कि सरस्वती, हनुमन्त आदि की स्तुति से जान पड़ता है। भाषा और शैली से वह चारणेतर ही जान पड़ता है। अतः उसे ब्राह्मण (सेवग) मानने में कोई वाधा नही हो सकती।[2]

नरपति नाल्ह कृत "बीसलदेव रासो" की साहित्य संसार में

---

१. श्री अगरचन्दजी नाहटा का लेख राजस्थानी भाग ३, अक ३।
२. राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुंज, पृ० सं० १६।

बडी चर्चा है परन्तु इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में हमारी जानकारी प्रायः नही के बराबर है । कोई इन्हे राजा और कोई भाट वतलाते है परन्तु ये सव अनुमान ही अनुमान है । कोई सुदृढ ऐतिहासिक आधार अभी तक उपलब्ध नही हुआ है । लेकिन वीसलदेव रासो मे कवि ने अपने लिए दो-एक स्थानो पर "व्यास" शब्द का प्रयोग किया है, जिससे इनकी जाति पर प्रकाश पड़ता है ।

"व्यास वचन हम ऊचरई, दिन दिन प्रतिपे वीसलराई ।[1]"

"नरपति व्यास" कहई कर जोडि, तो तूठा तेतिसो कोडि कोहि[2]

"चउरास्या सहू वर्णव्या, अमृत रसायण नरपति व्यास ।"[3]

व्यास जाति राजस्थान में ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत जाति है और इसी का दूसरा नाम सेवग या भोजक जाति है । अतः नरपति का ब्राह्मण होना स्पष्ट है ।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने इसे सेवग माना है ।[4]

इस उपर्युक्त सभी आधारो से स्पष्ट है कि नरपति शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे ।

वीसलदेव रासो को कोई हिन्दी की रचना मानते हैं तो कोई अपभ्रंश की और कोई पुरानी राजस्थानी की । उदाहरणार्थ-

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार-"वीसलदेव रासो" का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है । कारक, क्रियाओं व नियमों और संज्ञाओं के रूप से अपभ्रंश भाषा के ही हैं ।[5]

वीसलदेव रासो में वीसलदेव के विवाह, उनकी उड़ीसा-यात्रा, उनकी रानी के विरह आदि का वर्णन है । इसमे चार खड है ।

---

१. वीसलदेव रासो-प्रथम खंड. छद सं० ७९ ।

२. वही, प्रथम खड, छंद स० ८४ ।

३. वही, तृतीय खड, छद स० १७३ ।

४. राजस्थानी भाषा और साहित्य-डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ०सं० ११४ ।

५. डा० रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० स० १४६ ।

सब मिलाकर २१६ छन्दो मे ग्रंथ समाप्त हुआ । इसकी भाषा—गुजराती–राजस्थानी का मिश्रण है ।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त इस ग्रंथ को बोलचाल की राजस्थानी भाषा मे लिखा मानते है ।[2]

बीसलदेव रासो का रचना काल

बीसलदेव रासो के निर्माणकाल के बारे में भी कई मत-भेद हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचन्द नाहटा इसका रचनाकाल सवत् १४०० के उत्तरार्द्ध का मानते हैं ।[3]

डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने बीसलदेव रासो का निर्माण काल सवत् १२७२ माना है ।[4]

डा० मोतीलाला मेनारिया उसे संवत् १५४५–६० के आस-पास मानते हैं ।[5] प्रो० नरोत्तम स्वामी भी इसे सं० १२७२ की रचना मानते है ।[6]

बीसलदेव रासो की उत्कृष्टता सम्बन्धी कुछ मान्यताएं

डा० रामकुमार वर्मा—

लोकरंजन के लिए बीसलदेव रासो में काव्य का सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक ढंग से अनेक प्रसंगों मे सजाया गया है उसमें जीवन के स्वाभाविक विचार, गृहस्थ जीवन के सरल विश्वास जन्म-जन्मान्तरवाद, शकुन विचार, बारहमासा आदि बड़ी सरसता के साथ चित्रित किये गये हैं । स्थानीय प्रथाओ और रीतियो का भी बड़ा

---

१. डा० मोतीलाल मेनारिया–राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ०स० ११६ ।
२. बीसलदेव रासो की भूमिका, स० डा० माताप्रसाद गुप्त एव अगरचन्द नाहटा, पृ० सं० ५५ ।
३. वही, पृ० स० ५५ ।
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० सं० ११६ ।
५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अंक २, पृ० सं० १६३–१७१ ।
६. राजस्थानी साहित्य एक परिचय, पृ० सं० २७ ।

स्वाभाविक वर्णन है। इस प्रकार इस काव्य में स्थानीय अनुरंजन विशेष मात्रा मे है।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त

यह एक भावुक कवि की सरस कल्पना से प्रसूत ऐसे स्वस्थ प्रणय की कथा है जिसमे जीवन का तरल रस प्रवाहित हो रहा है।[2]

श्री राजनाथ शर्मा

मूलतः यह एक प्रेम कथा है। कवि के सम्मुख प्रेम के उदात्तरूप मे चित्रण के अतिरिक्त कोई भी प्रकट उद्देश्य नही रहा है। वह तन्मय होकर उज्ज्वल एकनिष्ठ प्रेम का चित्रण करता रहा है।[3]

डा० सरनामसिंह शर्मा

प्राचीन राजस्थानी साहित्य पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है। भाषा की प्रकृति उसकसाहित्य को राजस्थान की तत्कालीन लोक-भाषा का साहित्य स्वीकार करने में बाधा डालती है, किन्तु मरुवाणी ने अपनी अंगडाईयों से अपभ्रंश के कलेवर में अपना अच्छा रंग जमा लिया था। ऐसे साहित्य के निर्माताओ मे वज्रसेन सूरि शालिभद्रसूरि, विनयचन्द्र शार्ङ्गवर, सोमसुन्दर, नरपति, चद और रणमल्ल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[4]

कुछ भी हो इतना तो हमे मानना ही पड़ेगा कि नरपति शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और उनके द्वारा रचित बीसलदेव रासो कृति साहित्य के क्षेत्र मे अपना अनूठा स्थान रखती है।

नरपति की कविता का नमुना देखिए, जो बीसलदेव रासो से लिया गया है—

धन-धन पिता तोरी माय। जीणी प्रणामुं राजा बीसलराय।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा० रामकुमार वर्मा, पृ० स० १४६।
२. बीसलदेव रासो की भूमिका, पृ० स० ५५।
३. बीसलदेव रासो—भूमिका, पृ० सं० १।
४. राजस्थान-साहित्य परम्परा और वगति-डा० सरनामसिंह शर्मा, पृ० सं० २८-२९।

भोज-तणी चउरी चड़्यो । राजमती परणी रंग मांहि ।
व्यास वचन ईम ऊचरई । दिन-दिन प्रतिपै बीसलराई ।।[1]
"नरपति"व्यास कहई करि जोडि । तो तूठा तेतिसो कोड़
रास स्वयवर नीपजई । राजमति बीसल चहुवांण
वहु सवादइ चालीयउ । तास रसायण करू वखाणं ।।[2]

देपाल

डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इन्हे शाकद्वीपीय ब्राह्मण माना है ।[3] उनके अनुसार इनकी रचनाएं सवत् १५०१ से १५३४ तक है । ये नरसी मेहता के समकालीन थे । श्री ऋषभदास के अनुसार ये प्रेमानन्द की टक्कर के कवि हैं ।[4] रचनाएं निम्नलिखित हैं—

(१) जावड भावड रास
(२) रोहियाण प्रबन्ध-रोहिणीया चोर-रास
(३) चन्दनवाला चरित्र चौपाई
(४) श्रेणिक राजानो रास
(५) जवूस्वामी पच भव वर्णन चौपाई (१५२२)
(६) आर्द्र कुमार धवल
(७) सम्यकत्व वार व्रत कुलक चौपाई (१५३४)
(८) पुण्य-पाप फल (स्त्री वर्णन) चौपई ।
(९) स्नात्र-पूजा
(१०) हरियाली
(११) स्थूलभद्र फाग
(१२) पावाच्याकुमार मासा
(१३) पार्श्वनाथ जीराउलीरास
(१४) नवकार प्रबन्ध
(१५) मनुष्य भव लाभ आदि

१. बीसलदेव रासो, प्रथम खंड, छ० स० ७९ ।
२. वही, छद सं० ८४ ।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, वि० सं० १५००-१६५०, पृ०सं० २५० ।
४. जैं०गु०क० भाग १, पृ० सं० ३७ टिप्पणी ।

इनकी केवल दो रचनाओं की प्रति मुझे देखने को मिलीं। एक का वर्णन तो स्वयं माहेश्वरी जी ने अपनी पुस्तक राजस्थानी भाषा और साहित्य में किया है। दूसरी कुछ उलटवासियां एक गुटके से रा. प्रा. वि. प्र. बीकानेर से देखने को मिली है। दोनों के उदाहरण प्रस्तुत है—

(१) जम्बूस्वामी चौपाई से

धन धन जे गुरु लहई सुसाध,
आराधी भव टालई व्याध,
वचन सुणी तस सेवा करइ,
भवसागर से दुत्तर तरई।[1]

(२) हरियाली से-[2] उलटवासियां

वरसे छंइ कावली भीजे छे पाणी
माछलडी वग लोघड ताणी
उरे आंवा कोयल नडरी
कालिय सिंच ता फलीय वीझोरी ॥ १ ॥ आंकण
ठाकणी यई कुमारज घठीयउ
लगडा ऊपरि गदह चढीयो
नीसा धोवे उठण रोवे
सांडलो वहतो कोतिक जोवे ॥ २ ॥

डोकर दूजे भेंस वीसूके
चोर चोरी करे तलाव वाधी
मूके एह हीयाली जे नर जांणे
मूष कवि (देपाल) बषाणे ॥ ३ ॥

वहू वियाई सासू जाई
उउउई देवर माता नीपाई
सूसरो सूतो बहू हिंडोले
हालो हालो भाभी बोले ॥ ४ ॥

---

१. राजस्थानी भासा और साहित्य, पृ० स० २५० ।
२. गुटका न० १२९।५०, ३७९३, रा०प्रा०वि०प्र० बीकानेर।

कवि भीदाजी

कवि भीदाजी जोधपुर के रहने वाले थे ।[1] ये राव जोधाजी के समकालीन थे । राव जोधाजी की मृत्यु सवत् १५४५ मे हुई थी ।[2] अतएव कवि का रचनाकाल संवत् १४८० से १५३० के वीच होने का अनुमान किया जा सकता है । राव जोधा का वर्णन भी कवि ने अपनी कविता मे किया है । आपकी फुटकर रचनाए कुचेरा निवासी जी धगडूजी के पास सुरक्षित है । इमके अतिरिक्त कुछ रचनाएं वही के ब्रह्मचारी जी महाराज के पास भी हैं । रचना उदाहरण—

दरवार जनोदेवी दीठो पोला पग पग पखड़ीया
इण घाट ऊपर सेर सगती वडा कुंड ने भावडीया
इण मात मे का कुंड मांही जुलते जोगेश्वरी

दरवार तणो मीदर जगत आवे जातरी
प्रथमाय सारी पूजे अम्वा रात दीन परभात री
जड मोह रुपीया पगा जडीया पूजता परमेसरी

दोपमाल की रूप देखो जोल मंदीर जालीया
ममाय देवी धवला मदिर पूज वा देवालीया
पूजवा तुलजा तरग पगलीया गर गर नारी नीसरी

भर काज भेगी समव करने कने आन ऊवी हीगला
ईण सुर सागू सोभ देवी होत काडीया हीगला
जटराव जोधमाल जारगे ग्यांन नही भूलूं घडी
वात राणे ने जा वाहीं भीदे सेवग के गई अलगी जणी ।[3]

(२) संवत् १६०१ से संवत् १७०० तक के कवि

कवि भूरजी

ये भीनमाल के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम लिखमाजी था । इनके ही वंशजो के कथनानुसार आज से कोई चार सौ

---

१. कुचेरा निवासी श्री ब्रह्मचारी जी के गुटके से, पृ० सं० ५७ ।
२. जोधपुर राज्य का इतिहास–छठा अध्याय, प्रथम भाग ।
३. ह० लि० गु० से (कुचेरा) पृ०सं० ५७ ।

वर्ष पहिले इनका जीवन-काल रहा है। भीनमाल निवासी श्री तेज-राजजी के अनुसार मैं इन्हे संवत् १६०१ से सं. १७०० तक के मध्यकाल का कवि मानता हूँ। उनकी रचनाओं के कुछ नमूने निम्नांकित हैं—

सांवतरी अमीया सीरिया, पारवती सीव पांण
सूर ज्योंरा कल सींवर, भाय वपाणु माण[1]
उलस रथ तरण हरण दोय आणंद
हरण तरण द्राद हरंग सरण गुण गुण
वरण करण तंत सीमरण ओह सूर वजंत असरण
दनीयर दन करण तरण देवाकर सेस करण।[2]
करण परगट सेस कमल
कमल अत निरमल परभाकर
नरमल तेज जगनाथ
देव अनीत दूरी कर
भेद भेद वाचजे जग झालर झणकारा
गाला छूटे गवां अलग गमे अंधारो
सूरज देव रानल सिवर दलत भांज दरसण दियौ
हथ जोड़ज भूरो कहे जोत भाण जुगत ज जुवो।[3]

कवि रतन सेवग

जैसा कि नाम से ही पता चलता है ये (सेवग) शा. ब्रा. थे। ये संवत् १६०१ से १७०० तक के मध्य के कवि थे। रचनाओं से पता चलता है कि ये भक्त थे। इनकी कृति अर्थ—गौरवपूर्ण और सामान्य रूप से सरस है। उदाहरण—

अथ श्री गुणेसाय नमः श्रीमाताजी श्रीषमज माताजी रा कवत लिषते—

यो उकार अरू परू पते धरीयो रांणी

---

१. ह० लि० ग्र० पृ० सं० २ श्रीयुत तेजराज मीनमाल से।
२. वही, पृ० सं० ४।
३. ह० लि० प्र०, पृ० स० ७ श्रीयुत तेजराज मीनमाल से।

आप जोत अवतार मारदे तो मुगलोणी
आप लीओ अवतार पार ब्रह्मासन पायो
आप ही ससट उपाव सगत कर रूप सवायो
सभ नेन सांभ भाजे सवल सरगद सासु संचरी
मोह लोक माहे ओ चव मम पम पूजा कीधी षरी ।[1]

रतन सेवग नेराते मन हरने मेहे मोहे
अत माम घणे आवु अठे सेवां कीजो मन सघे
घन लोक घणो अगता लधर वरदीजो लत वधरे ।[2]

आरां ऐनांग काहा जें
सगत भली कर आतवांणी आवसी
नदी जल प्रवल न भे नर
अजु आली आनम
मास आसोज मोहीनो संवात् सोल छीनु
देव वर अत रोदी घोनो
अग माह वेहे तरती अके, अतराजी दस आसु
सरदार सपन माही जन सको भोजके सेवे भाव सूं ।[3]

कवि भोजक गोवंदो[4]

ये भी संवत् १६०१ से १७०० तक के बीच के कवि थे । इनकी रचना भी रतन सेवग के गुटके से प्राप्त हुई है । रचना से पता चलता है कि ये भगवद् भक्त थे और विभिन्न देवी-देवताओ मे भी आस्था रखते थे । रचना उदाहरण—

जोग गुण जोगे चरचा लिषत
जोगण जागे मोरी आव भवानी आगे
लटी आला षेडा के लेरी राये जोगण जागे
कठ मे कधो आ मई आ मेया घोते आए मेया

---

१. ह० लि० प्र० गु० भैंरूलालजी अगवरी के पास से, पृ० सं० ३४ ।
२. वही, पृ० सं० २५ ।
३. ह० लि० प्र० गु० भैंरूलाल अगवरी के पास से, पृ० सं० २८ ।
४. वही, पृ० सं० ४५ ।

चोली कचमे की ओसीण गार जोग जागे
सरवर धो धो श्रो चेल धोतीश्रा रे चलवा
गांमे की श्रेसणाव जोगण जागे ।
गावे गावे भोजक गोवंदो हे मां
ओ पात्रे लाष पसास जोगण जागे मांये जागे ।।

कवि सेवग कमनीयो[1]

इनकी फुटकर रचनाएं प्राचीन हस्तलिखित गुटके में संकलित हैं। उसी में संवत् १६०१ के वाद की रचनाएं अन्य कवियों की भी हैं। इससे निश्चित है कि ये भी संवत् १६०१ से १७०० के मध्य हुए होगे । रचना उदाहरण—

चरचा भैरूजी री से

सुष सांपत दीओ सदा सेवगां
परतू परतापुरे
कर जोडे वैठे दास कसनीओ सेवग
चौतीसां हे वचुरे
हो काला गोरा वीरा मैहर कीजे ।

कवि मूला सेवग

ये अगवरी गांव जिला जालोर के रहने वाले थे । इनकी एक रचना फुटकर गीत प्रा. ह. लि. गु.[2] जो कि अगवरी वाले भैरूलाल जी के पास है उनमें मिलता है । उसी में संवत् १६०१ के वाद के अन्य कवि रतना सेवग आदि की रचनाएं भी संकलित हैं । इससे अनुमान किया जाता है कि ये सं. १६०१ के वाद के कवि थे । रचना उदाहरण—

मूला सेवग री वीनती भैरू लीजो
लीजो चरण चढाश्रै रांगीला भैरू
तोने चढ़ाज राग रो पालणो भैरू

---

१. वही, पृ० सं० ४७ ।
२. प्रा० ह० लि० गु० श्री भैरूलाल जी अगवरी के पास से, पृ०सं० १५५ ।

चरचा लपते मात री श्री सुधा जी री लपते
नव षोभ व्रती : जपेरा जन नख जोत नर नारी
हे कोनुवस वास आपरो : तानु लीये उधारी
माता मतवाली केल ककाली : मधमत मतवाली है ये
चांम मा सुर राणी : धन देवी सुधारी घरा याण

कवि सेवग मनजी

इनके जीवन का विशेष वृत्तांत तो नही मिलता, किन्तु अनुमानत: १६०१ से १७०० के वीच के कवि थे। रचना उदाहरण—

गीत सुयष रो षभज माताजी रो कवि मनजी रो कीहो है।[1]
तोलें जोगणी हाथे मचुल सणगार वैठो साग
आवाँती मो माती आगम ले चांदे मात
चलां तीले आंती चाकै अतरचरस आंग
हीव मठे लत हारण वस रो हास ॥

(३) संवत् १७०१ से संवत् १८०० तक के कवि

लगभग सवत् १७०० से राजस्थानी साहित्य का उत्तर मध्यकाल प्रारम्भ होता है। इस काल मे डिगल के साथ पिंगल की भी अच्छी उन्नति हुई और दोनों भाषाओ मे उच्चकोटि के ग्रन्थ रचे गए। इसी समय मे कवि वृन्द, कवि पोकर, रामसुख, शिवचन्द आदि शा० ब्रा० कवि हुए।

महाकवि वृन्द

कवि कुल चूडामणि महाकवि वृन्द का नाम हिन्दी साहित्य के शीर्ष स्थानो में तो है ही साथ ही राजस्थानी साहित्य मे भी आपने काव्यसर्जना की। अतएव हिन्दी एवं राजस्थानी दोनों के कई विद्वानो ने कवि वृन्द को उच्च कोटि का कवि माना है। आप शाकद्वीपीय दवेरा गोत्र के ब्राह्मण थे।[2] इसे सभी साहित्यकारो ने स्वीकारा है।

---

१ प्रा० ह० लि० गु० श्री भैरूलालजी अगवरी के पास से पृ० सं० १५८।

२ (अ) शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु अक ४, वर्ष १, पृ० स० ६।
(व) रघुनाथ रूपक गीता रो भूमिका, पृ० स० ३।

कवि वृन्द का जन्म सं० १७०० के अश्विन शुक्ला १ गुरु-वार को हुआ था। इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नाम नवरग था। कवि वृन्द के पिता का नाम रूपजी था।

आज भी वृन्द के दोहे कई पाठ्य पुस्तकों में सकलित हैं। ये दोहे पाठशालाओं और कालेजों मे पढाये जाते है। अभी कुछ अर्से पहले ही डॉ० जनार्दनराय चेलेर को महाकवि वृन्द की जीवनी एवं कृतित्व पर शोध-उपाधि प्रदान की गई है।

कवि वृन्द का स्वर्गवास सवत् १७८० में मिति भादवा वदि अमावस्या रविवार को हुआ। यदि वृन्द के वशजों द्वारा कुछ अधिक सहयोग मिल पाता तो मैं और भी उनकी रचनाएं सामने लाने का प्रयास करता किन्तु वंशजों से पत्र-व्यवहार करने पर भी तथा वहां वार वार चक्कर काटने पर भी मुझे खेद है कि उनका डिंगल साहित्य उपलब्ध नही हो सका। इसलिए जो कुछ एक या दो गीत मुझे यत्र तत्र प्राप्त हुए हैं, वे आगे दिए जा रहे है।

वृंदजी के रचे हिन्दी ग्रंथ

(१) भाव पचाशिका-स्थान औरगावाद सं० १७४३
(२) शृंगार शिक्षा-स्थान अजमेर
(३) यमक सतसई
(४) पवन पच्चीसी
(५) हितोपदेशाष्टक
(६) भाषा हितोपदेशक-ढाका (वगाल मे) सं० १७६१
(७) वृन्द सतसई-ढाका सं० १७६१ मे
(८) वचनिका-किशनगढ में सं० १७६२ में
(९) सत्यस्वरूपक रूपक सं० १७६४
(१०) फुटकर दोहे आदि।

वृन्द द्वारा रचित राजस्थानी साहित्य से कुछ उदाहरण—

त्रकूट बंध गीत

(स) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१८।
(द) 'पारीक' पत्र नवम्बर सन् १६२६।

दळ दिखण मिल दिल्ली दळां । वध वेध खेद दुहूँ वळां ।।
घर लियरण घूपट दिगरण घसमस, रूक रथ राजा न ।।
अवरंग संगर आहु रे । फल फौज गज धन फरहरे ।।
घर फसर हेवर धूज घर । मद भरर कुंजर सिर चमर ।।
नर निजर नाहर डर निडर । तन पहर वगतर छिलम छर ।।
हर समर हसवर कस कमर । घर सरध सर घर कर सिफर ।।
वद कंवर वीरत वांन ।।

अरणभंग पोरस ऊलसे । अहराण अरि सिर ऊससे ।।
ध्रुव रूप वंस असंक धारण, धींग दोमज धीर ।।
त्रंमाल नोवत त्रहे । गण भूत भैरव गहगहे ।।
उठ नाल अरडड गज गरड़ । नड़ अनड़ धड़हड भड निवड़ ।
छुट वांण छड़ छह तूट छड़ । अस उरड अड़वड़ धूम पड़ ।।
वड़ विरच राजड वीर ।। २ ।।

कुल किसन कलहरण कोपियो । अग रंग अद्भुत ओपियो
रिम राह वाह अथाह रिमहर, जोध से रजवांण ।।
गह पूर गय धड घोडणो । मन मेल हथ थट मोडणो ।।
घण वरण रण वणसघण घंण । खग खिवण छेण छंण तीर छण
जुध जूडे जेण जंण दूठ जेंण । हुय वेण हेण हंण मच गहण ।।
घण दिखण दपटण रोस घंण । किय कमध तिण खिण दुयण कंण
रण मांन तंण महरांण ।। ३ ।।

भारथ लख दल भंजणों । गह फौज मोजां गंजणो ।।
जगमाल भारह माल जेही, वीर हर वानैत ।।
असपत्त छल वल आयरे । पिसणो पछोड पाधरे ।।
खग वाज खड खड़ खाट खड़ । तड तिड़ तड़ तड़ ताड़ तड़ ।।
वध वड़ड़ ऊवड़ कंध कड़ । लुथ लुत्थ लड़ थड़ प्राण पड़ ।।
जुख ग्रीध भड़ फड़ अंत अड़ । हस वीर हड़ हड़ भांज हड़ ।।
जेंण जुद्ध धूहड़ जैत ।। ४ ।।

कवि शिवचन्द

ये जाति के सेवग थे और इनका काल संवत् १७०१ से १८००

के मध्य का रहा होगा जैसा कि गुटके से प्राप्त होता है ।[1] कवि जोधपुर के रहने वाले थे किन्तु इनके वंशज वाहर चले गये । अव तो वशज भी नही हैं । रचना उदाहरण—

बलिहारी हूँ विमलाचल गिर की
निव जडुर तिम सिषर भिडुर की
भवसागर तारण तरकी ।
साहर अनुपम अतिसय करके
महिमा जीती सुर गिरी
परमातम पद प्रति विवतन की
वंछित पूरण सर तरू की
चरण सरण होय ज्यों 'सेवग शिवचंद' के
भव भव से हिज जिनकर की ।

कवि लालजी

ये भीनमाल के रहने वाले थे। आपके द्वारा रचित दो लघु हस्तलिखित पुस्तकें एक संकलन मे देखने को मिलती हैं जो श्री तेजराज भीनमाल वालो के पास सुरक्षित हैं । पहली पुस्तक तत्त्वबोध के कुछ अंश संस्कृत तथा कुछ हिन्दी मे है । दूसरी पुस्तक मुक्तामणि राजस्थानी मे है । उनके वंशजों के कथनानुसार इनका काल १७०१ के वाद का है । ये भक्त कवि थे। रचना उदाहरण मुक्तामणि से—

पूछे नग पर व्रह्म कूं कहूँ वाक्य सुणि कांन
करमकांड अर भगति कर ता पीछे ले ग्यांन
पूछत मारग व्रह्म का, वाक्य विचारक हूँ सुणि काना
वावन करम पीछे नवधा कर, ग्यांन गति अवसाण बषाना ।

कवि पोकरजी

आप भीनमाल के रहने वाले थे । इनके पिता श्री भूरजी और भाई श्री लालजी भी कवि थे । अतएव उन्हो का प्रभाव इन पर पड़ा । आपका जीवन काल संवत् १७०१ से १८०० के मध्य का रहा ।

---

१ ह० लि० गु० स० १७३५ रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर ।

रचना उदाहरण—

राम नाम वड रूप है अपरमपार अपार,
पथ री उपाई जणा, आद रूप अवतार ।।
रण आदम सरूप आप भूप ओपिया,
मही समन्दर पेस माय, कीज भीरम कोपिया ।।
वरल्ल नीर वेदवांन, तोड से सतानी ये
जपोस नाम, आठ जाम, राम नाम राम हो ।
मथे समन्दर फेर मेर नाग जेहर नेत रे
पिरथीस अधार कामपीठ साहवीस सन्त रे ।।
रतन काउ देत रोल वीरज माम वाभीये
जपोस नाम आठ जाम, राम नाम राम हे ।।
राम नाम राखो हिरदे तर्ण दन देता तरण
हाथ जोड सवद 'पोकर' कहे राम नाम राखो धरण ।।

कवि रामसुख

आप मेडता सिटी के रहने वाले थे। ये इसी काल के कवि थे। आपकी कुछ फुटकर रचनाए मिलती हैं। आपका एक गीत आज भी मीरां के मन्दिर में बड़े चाव से गाया जाता है। रचना उदाहरण—

परम जोत वारो धाम को अपारो
कोटिक दिवाकर सो जग उजियालो है
गऊ लोक के पधारो, मेडते मे जारो
जयमल के काज सारो मीरां ऊपर वारो है।
परसे की प्रीतवारो, चक्कर पूढी एक सारो
नैंचें निरधारो, कवि 'रामसुख' कहै कर जोर
सष चक्कर पदम चार भुजा वारो धणी हमारो है।

कवि रूप जी

ये जालोर के पास गांव आभोर के रहने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपका जन्म संवत् १७०५ मे और मृत्यु १७९४ को हुई। रचना उदाहरण—

सगती भजा सबद : जाण सके वरली जांणे
अवतार घणा प्रगटा अणत अभग जुग के इससे
"रूपलो" सेवग चरणौ पेमाउ वेद धमी री
सरी समायुता १७५० माह सुद ७ लीषी ।[1]

कवि जैचांद जी

ये जालंधरनाथ के भक्त थे और जालौर के पास गांव के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १७३४ मे एवं मृत्यु सं० १७६९ मे हुई । रचना उदाहरण—

मादा भके एस रदै नर मर षड़ी
सषेचर रष घुमरेत षत पैरो
रजो ताष गदर पीवो जटधर
जैचांद के हिरदे वसै वचर नाथ जलंधरनाथ

अतः गीत जलंधर जी रो सेवग जैचंद रो ।।[2]

कवि लदराज

ये कुचेरा निवासी थे । गुटके के आधार पर इनका जीवन काल (१७०१ से १७८०) के वीच माना गया है । इनकी रचनाएं एक गुटके में सुरक्षित हैं। उसी से यह रचना ली गई है । रचना-पत्र में कुछ प्रस्ताविक दोहे हैं—

सेहरा सारां होसी रे पटण पी रांण
पूरण कर प्रस्ताव सत प्रगट कीयो दुनी आंण
सुण सीख्यां प्रस्ताव सत जे चालत सुजाण
लोक भलो कई लद भला सुधरे केई नीदाण

कळस :

या सुणीया प्रस्ताव प्रथम, अविनासी ओळख
या सुणीया प्रस्ताव धरम भरम मना नांही रख
या सुणीया प्रस्ताव दुत केहि नीत गावे,
या सुणीया प्रस्ताव वुध तणी लदराज बंधावे

---

१. हस्तलिखित गुटके से ला गई—श्री भैरूंलालजी के पास से पृ० सं० ७४ ।
२. वही, श्री गणेशजी के पास से, पृ० स० ८ ।

प्रानलेता प्रसताव श्रावण में प्रसताव तक लदराज ऊपर इति श्राज संवत् १७३० रचित वद १० शनिवार सावण ।[1]

कवि श्रखैराम जी

आप साडेसर गोत्र के शा० ब्रा० थे श्रौर सोजत निवासी थे। श्रापका जन्म सवत् १७०५ मे श्रौर मृत्यु सं० १७६० हुई। आपके वर्तमान वंशज श्री विजयराज जी अभी ग्राम मसूदा (व्यावर) में मौजूद हैं। आपने भक्ति सवंधी रचनाएं लिखी।

उदाहरण—

लाज रखी हरि द्रोपद की जन आतर होय के चीर वंवारो
तारण संत यूं ही गज कारण ग्राह हट्यो गजराज उवारो।
भीड़ पड़ी प्रह्लाद प्रभू तो नरसी रूप धर हिरणाकुस मारो
अखैराम यूं ही निसवास, गोहार गाय निरतर वारो।।[2]

सक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि संवत् १७०१ से सं० १८०० तक के शाकद्वीपीय व्राह्मण कवियो की रचनाएं यद्यपि वहुत ही कम मात्रा मे देखने को मिलती हैं, फिर भी इस काल मे जो जो भी कवि हमारे सामने श्राए हैं उनकी रचनाएं तो स्तुत्य हैं ही। हम देखते हैं इसी काल के कवि वृंद हुए जिनका कि नाम श्राज भी साहित्य के शीर्ष स्थानो मे वड़े श्रादर के साथ लिया जाता है।

संवत् १८०१ से १६०० तक के शाकद्वीपीय व्राह्मण कवि एवं उनकी रचनाएं

संवत् १८०१ से संवत् १६०० के वीच में शाकद्वीपीय व्राह्मणों मे वहुत ही उच्च कोटि के कवि हुए जिनका नाम राजस्थानी साहित्य मे वड़े आदर से लिया जाता है। कवि मछ द्वारा रचित "रघुनाथरूपक गीतां रो" वहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ है। कवि प्रयाग द्वारा रचित "श्रभैगुण ग्रंथ" यद्यपि श्रभी प्रकाश में नही आया है किंतु फिर भी यह राजस्थानी का एक उत्कृष्ट प्रवन्ध काव्य है। कवि वीका द्वारा रचित "माताजी रो छंद" ग्रंथ भी आज तक

---

१. हस्तलिखित प्राप्त गुटके से, पृ० सं० ८।

१. हस्तलिखित प्राप्त गुटके से, पृ० स० २४।

प्रकाश में नहीं आया किंतु वहुत ही अच्छी रचना है। इसी तरह कवि लच्छीराम, मगलदास आदि भी इस समय के वहुत उच्च कोटि के कवि हुए हैं जिनकी रचनाएं आज भी राजस्थानी साहित्य की अमूल्य सम्पति है।

कवि मंछ

जीवनी

मंछ कवि का असली नाम श्री मनसाराम था। 'मंछ" आपका काव्योपनाम है। ये कुवेरा गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और गू दी का मोहल्ला, जोधपुर के रहने वाले थे। आपका जन्म सवत् १८२७ में हुआ और मृत्यु सं० १८९७ मे।

वाल्यावस्था से ही मछ वड़े वुद्धिमान थे। इनके चाचा श्री हाथीरामजी एवं श्री गिरधर जी द्वारा इनको शिक्षा प्राप्त हुई। इनका विवाह जोधपुर के ही तेजकरण जी की सुपुत्री "राधा" के साथ संवत् १८४५ मे हुआ। महाराजा मानसिह इनकी कविता पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होने ७५०) रु० वार्षिक पुश्तदर पुश्त कर दिया। आपके पिता का नाम श्री वखशीराम जी और माता का नाम श्रीमती रुक्मणि था। मंछ कवि के वशजो में श्री फतेराज जी श्री फौजराज जी, श्री फतेराज जी के पुत्र श्री विजेराज जी उनकी पत्नी श्रीमती फीडीया देवी एवं दो तीन वच्चे अभी वर्तमान है।

कवि मंछ द्वारा रचित साहित्य

जैसाकि उनके वंशओ से ज्ञात हुआ कि मंछ ने कई रचनाएं की किन्तु वे उपलब्ध नही है। केवल एक ग्रंथ "रघुनाथरूपक गीता रो" ही उपलब्ध है किन्तु उसी एकाकी रचना के आधार पर ही मंछ कवि साहित्य के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित है।

रघुनाथरूपक गीतां रो ग्रंथ

"रघुनाथरूपक गीतां रो" ग्रन्थ डिंगल भाषा का मान्य और प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमे डिंगल के प्रचलित एवं प्रशस्त छन्दों के लक्षण और फिर उन छन्दो मे रामचरित्र का वर्णन है। मंछाराम का लिखा यह एक ग्रन्थ रघुनाथरूपक गीतां रो ही प्रकाश में आया है। कवि का ज्ञान, भाषा पर अधिकार, उपलब्ध कविताओं

की परिष्कृति इस बात का प्रबल प्रमाण है कि कवि ने और भी बहुत कुछ लिखा होगा किन्तु अब सिवाय इसके और कोई रचना उपलब्ध नही है। कवि की सारी प्रसिद्धि एक इसी ग्रंथ पर निर्भर है।

मंछाराम स्वय राम के भक्त थे। उन्होने डिंगल छन्दों (गीतों) पर जो काव्य-शास्त्रीय रचना की, उसी पे भगवान् राम की गाथा लिखी। निस्सदेह उसे उच्च कोटि के ग्रन्थो की श्रेणी मे मानना ही पड़ेगा। इस ग्रंथ के बारे में जो जो मत विद्वानों ने दिए हैं, वे दृष्टव्य हैं—

ग्रियर्सन के शब्दों में

'डिंगल का सबसे अधिक प्रशंसित ग्रन्थ मंछाराम का 'रघुनाथ-रूपक' है। यह एक छन्दशास्त्र है, जिसमें मौलिक उदाहरण इस ढंग से प्रयुक्त हुए हैं कि रामचन्द्र का रामाख्यान धारा-प्रवाह-रूपेण दे दिया गया है।[1]

पुरोहित हरिनारायण के शब्द में

डिंगल में वीर रस के वर्णन तो बहुत हैं परन्तु रीति ग्रन्थ ऐसे बिरले ही हैं, जिनमे ऐसा शुद्ध प्रकार रचनाकार ने ग्रहण किया हो। इस हेतु यह ग्रन्थ इस अवस्था और समय मे डिंगल काव्य शिरोमणि कहा जाय तो अनुचित न होगा।[2]

डॉ० गोवर्द्धन शर्मा के शब्दों में

आचार्यत्व और कवित्व मानो वे दो तलवारें है, जो एक म्यान मे नही रह सकती। किन्तु मंछाराम एक ही कवि हैं, जो एक अच्छे डिंगल के कवि माने जा सकते है और डिगल काव्य के श्रेष्ठ आचार्य भी।[3]

"रघुनाथरूपक एक रीति-ग्रन्थ अथवा छन्द ग्रन्थ की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है।"[4]

---

१ इंपीरियल गजेटियर जिल्द दूसरी, अध्याय ११, पृ ३७।

२ रघुनाथरूपक गीतां रो, भूमिका, पृ० स० १४।

३ राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुंज, पृ० सं ६६।

४ वही, पृ० सं० ६७।

'साहित्यरूपी समुद्र का रस लेकर ऐसा (रघुनाथरूपक) अच्छा बनाया हुआ रामचन्द्र के यश समुद्र का यह गीतकाव्य सब संसार के पीने योग्य है।'[१]

'रघुनाथरूपक' नव विलासो में विभाजित है। प्रथम दो विलासों में वर्ण, गण, दग्धाक्षर दुगण, वयण सगाई, काव्य दोष, अक्षरत्याग, फलाफल अखरोट उक्ति के लक्षण भेद, रसो के नाम, भेद, लक्षण इत्यादि का वर्णन है। शेष सात विलासों मे डिंगल काव्य में प्रयुक्त होने वाले ७२ जाति के गीतों के लक्षण विवेचित हैं। चूंकि गीतों के उदाहरण में रामकथा कही गई है, इसीलिए ग्रन्थ का नाम 'रघुनाथरूपक गीतां रो' रखा गया है। ग्रन्थ के नामकरण के बारे मे स्वयं कवि ने कहा है—

इण ग्रन्थ मो रघुनाथगुण अतभेद कविता भाषियो
इण हीज कारण नाम ओ रघुनाथरूपक राखियो।[२]

रचना उदाहरण 'रघुनाथरूपक गीतां रो' से

जपै समुझ नित जाप, सागर-भव तिरवो सहल
जळ तिरिया पाहण सुजड, पतसिय नाम प्रताप ॥[३]
मो मत प्रमाण कवि मंछ कह, सुकवि वाण ग्रन्थाण सुण
रस गथ गीत पिंगल रचे, गहर कहूँ रघुनाथ गुण।[४]
वन वैठो भला चढो गिर-वदरी, धरा भेष के धारो
चित्त नह लग्यो राम रै चरणा, नहं जव लग निसतारो।[५]
मंछ कवि कहे पुन सरन सधार व्रिद
याही ते सरन लयो रावरे चरन को
गुन को निहारो तो भर्यो हूँ पूर अवगुन सो
निज गुन धारो तुम असरन सरन को।[६]

---

१ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० २८६।
२ रघुनाथरूपक गीता रो—स० महताचन्द्र खारैड, पृ० सं० २८४।
३ वही, पृ० सं० २।
४ वही, पृ० सं० ४।
५ वही, सृ० स० १७।
६ वही, पृ० स० २८५।

अस्तु: मेरी मान्यता है कि भक्ति साहित्य एवं डिंगल काव्य का अंशमात्र प्रभाव भी जब तक रहेगा, कवि निस्सदेह अमर रहेगा।

कवि प्रयाग

कवि प्रयागजी के जीवन के बारे मे मुझे विशेप जानकारी तो नही मिली किन्तु इतना अवश्य है कि सवत् १८०१ से संवत् १९०० के मध्यकाल मे हुए थे, क्योकि इनके द्वारा रचित अभैगुण ग्रन्थ की प्रति करने वाले चोषा ने वीकानेर मे उनके पास वैठकर ही इसकी प्रति की है। इसकी मूल प्रति तो श्रीयुत मूलचन्दजी प्राणेश के पास है किन्तु उसकी एक प्रति उन्होने मुझे कुछ समय के लिए ही दी थी। इस ग्रन्थ मे उसका वर्णन उन्ही की कृपा का परिणाम है। ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में लिखा है—

श्री गणेसाय नम:

अथ अभैगुण भोजक प्रियागजी कह्यो। अथ सवैया पंचदेव स्तुते। एवं ग्रन्थ के अन्त में लिखा है। इति श्री अभैगुण संपूरण लिपिते भोजक चोषा वीकानेर मधे प्रागजी कन्हा लिख्यो स० १८२७ सावण सु० १३ वार शुक्र।[1]

अभेगुण ग्रन्थ राजस्थानी भाषा का एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक प्रवन्ध काव्य है। इस कृति मे जोधपुर के महाराजा श्री अभयसिंह के जीवन की मुख्य घटनाओं का विस्तार से वर्णन है, विशेपकर सर विलन्द खा से युद्ध-काल का तथा उसके साथ युद्ध की घटनाओ का। प्रसंगवश कवि ने भिन्न भिन्न प्रकार से उनके समय की घटनाओं को क्रमवद्ध करने का प्रयास किया है।

अभैगुण २७६ छन्दो मे लिखा गया ग्रन्थ है, जिसमें दोहा छप्पय, कवित्त, गाहा, नीसांणी, पधरी, मोतीदांम आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है।

अभैगुण ग्रंथ यद्यपि ऐतिहासिक प्रवन्ध काव्य है, फिर भी

---

१ ह० लि० प्र० प्रतिलिपि कर्त्ता श्री मूलचन्द प्राणेश दि० १४-११-६८
नोट:—इसका एक चित्र भी श्री मूलचन्दजी ने मुझे दिया था।

ऐतिहासिक शैली के चरित्र काव्य की भी सज्ञा इसे दी जा सकती है, क्योंकि मगलाचरण, नामकरण, वस्तु–वर्णन, सूची परिगणन, सम-सामयिक परिस्थितियो की झलक ऐतिहासिकता इत्यादि का पूर्ण निर्वाह इसमे हुआ है । सूची परिगणन युद्ध–वर्णन, हाथियो का वर्णन, फौज-वर्णन आदि को चित्रित कर कवि ने अपनी काव्य–कुशलता का परिचय दिया है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

युद्ध वर्णन—

गजै वाज गैणाग, जाग वीरत झुंझारा
आग तोप उछळै, गिणै नह जिका लगारां
वीर हाक वापरै, धीर जूटा षग धारा
तीर वान तरवार, जवन गिर पड़े हजारा ।[1]

घोड़ा वर्णन—

चित चंचळ गत चंग अग अण भंग अप्रवळ
विढ़ नैणा अरि वग, विहगय तधा वचहु वळ ।[2]

— सवैयो —

ऐसे है तीरथ तोहू माहातम न्हाहै तै होत निवेदन वेदन
'प्राग' कहै जु सुभाग महीपत, गायै ते होत दरद को छेदन
पारस परस तै होत है कचन सरस इते जगजीत को नन्दन
दरस ही तै माहराज अभै सघ कचन मे हुवै हाथ कवीजन[3]

कवि भौजिग वीका

कवि वीका जाति से भौजिग ब्राह्मण अर्थात् शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । कवि का विशेष परिचय तो नही मिलता किन्तु उनके द्वारा रचित 'माताजी रौ छंद' ग्रन्थ की एक प्रति मुझे राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान वीकानेर के श्री दाऊदयाल के सौजन्य से प्राप्त हुई । इसकी मूल प्रति तो न मालूम कहां है किन्तु इसकी प्रतिलिपि ग्रन्थाक ४४५२ (११) पत्र १८ श्लोक २१० रा० प्रा० वि० प्र० बीकानेर में

---

१ अभैगुण, छं० स० १८८ ।

२ वही, छद स० २०५ ।

३ वही, छंद स० २७६ ।

है जिसके प्रतिलिपि कर्त्ता श्री गिरधरवल्लभ दाधीच हैं और मिलान-कर्त्ता श्री स्वामी। उसी की एक प्रतिलिपि मैंने स्वयं बीकानेर से की है।

ग्रन्थ के आरम्भ मे लिखा है –॥ नमः ॥ श्री गणेसाय नमः ॥ अथ माताजी रौ छंद भौजिग बीका रो कह्यो लिख्यते॥

एव ग्रन्थ के अत मे—इति श्री माताजी रो छंद सतसी पाठ सम्पूर्ण ॥ सं० १८०७ वर्षे मृगसिर वद ५ तिथौ। लिषंत प० प्रीत सौभाग्य वरोडा ग्रामे लिखा है।

इससे स्पष्ट है कि इसके रचनाकार कवि भौजिक बीका ही थे एवं यह ग्रंथ सवत् १८०१ से १६०० के बीच रचा गया।

इनमें विभिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ–गाथा, दूहा वडा, कवित्त, छंद रसावली आदि। यह कृति १८ पत्रो मे है जिसकी कुल श्लोक सं० २१० है। रचना उदाहरण—

वयणै सिभ वषाणीया, वडगात वडाई
सुरस धीर सकज, भड अस तेज उठाई
हैवर गैवर पायदल ठावी ठकुराई
जरे चालै निसंभ मिभ, भड वका भाई ॥[1]

मंगलदास

आपका जन्म मार्गशीर्ष तीज को संवत् १८७० को हुआ। आपके पिताजी का नाम गगाराम जी था। ये सोजत के रहने वाले थे। कवि मगलदास के वंशज अभी विद्यमान हैं, जिनमें श्री सवाई रामजी अग्रगण्य हैं, जो स्वयं कवि हैं। श्री मगलदास कवि होने के साथ ही अच्छे कर्मकाण्डी व परमात्मा के भक्त थे। आप छद शास्त्र के ज्ञाता थे एवं कविता के बारे में काफी ज्ञान रखते थे। आपने देश के कई भागो मे भ्रमण किया था।

कवि के वंशज के कथनानुसार आप लस्कर, ग्वालियर, कोटा, इन्दोर इत्यादि जगह रहे। आपने श्री होलकर महाराजा साहब से सम्मान भी पाया। आपकी रचनाएं, भजन, पद, स्तुतियां आदि

---

१ माताजी रो छद, पृ० स० ६।

विभिन्न रूपों मे मुझे उन्ही के वंशज श्री सवाईरामजी से और कुछ रचनाए विष्णुजी से सोजत जाने पर प्राप्त हुई। श्री प्रभुदयाल का भी काभी सहयोग रहा।

कवि ने केवल एक देव को ही अपना सर्वस्व नही माना अपितु उन्होने कई देवी-देवताओ से सम्बन्धित पद, स्तुतिया आदि रचे।

श्री गणेशजी के प्रति—

गजानन्द सुन्डाला मोरै गै घटकराजी गणेश।
पारवती रा पुत्र कहावो थारे पिता महेस।
रिध सिध दोनूं पटराणी, हाजर रहै हमेस
मंगलदास सदा गुण गावे, पूजै सकल नरेस॥[1]

श्री नर्मदाजी के प्रति—

नित नमो नरवदा माय।[2]

लच्छीराम

कवि लच्छीरामजी जालोर के निवासी थे। आपके दूर के रिश्ते में श्री हस्तोमलजी प्राध्यापक रा० कालेज पाली में विद्यमान हैं। रचनाओ से ज्ञात होता है कि ये मछाराम कवि से काफी प्रभावित थे। इसी से उन्होने लिखा—

रुगनाथ रूपक जोयो रे सार काडीयो साज
कूंसी है कविताई की मीलै तो यावै माज

इनका जन्म संवत् १८१५ मे और मृत्यु सवत् १८७४ मे हुई। इनके द्वारा रचित बालक पीरथीबोध की रचना मुझे सिवाने वाले नृसिहदासजी से प्राप्त हुई, जिनके पुत्र श्री बाबूलाल भी हैं। कवि द्वारा रचित केवल एक ग्रन्थ देखने को मिलता है, जिसमे उन्होने काव्य के माध्यम से ही गण विचार, दोष विचार, छदो आदि के बारे मे विस्तृत जानकारी देने का अथक प्रयास किया है। रचना उदाहरण—

---

१ हस्तलिखित भजनमाला, पृ० स० १।
२ वही, पृ० सं० २४-२५।

अषु वालक पीरथी वोध, षापरीयां लगै पीछांण
कीवताई जो नर करै, सीत मेरा कोसाण ।[1]
कवलो एक मात्रा करो जरूलोडै एक जांण
पीस मीलोवडी पेकीजे: पेल इसी पीछाण ।[2]
कांना दोजे मात्रा करो अगीन मात दो आंण
मसत कभी री मांनि अेकां के दुग्रके काण ।[3]

गुणेशजी

ये जालोर के पास अगवरी गांव के रहने वाले थे । आपके वर्त्तमान वंशजों मे श्री भैरूंलालजी, श्री सुमेरमलजी, श्री चदनमल जी आदि हैं । गुणेशजी का जन्म सवत् १८१५ मे और मृत्यु सवत् १८८५ मे हुई । गुणेशजी की फुटकर रचनाए उन्ही के हस्तलिखित गुटके से मैंने वही जाकर प्राप्त की हैं । रचना उदाहरण—

श्री गुणे सायेनमः "सेवग गुणेस री पोथी छै
गीत गुणेस जी रो छै:
सदा घाइजै प्रथम जै रा, सघरा वसन वधन रा
कुछ हर कुछ षरा कुछ है राव सेस
धरदा अक धरा सातरा भजन रूप रा
गज राम षरा भुरा सभरी गुणेस ।

प्रेमसुख भोजक

ये फतेहपुर के रहने वाले थे और वहां के लोगों के कथनानुसार इनका काल १८०१ से १९०० के मध्य का रहा । रचना उदाहरण—

स्याणो होय सूम जब मन मे विचार करै
दान पुन देनो वडा वावळा चलायो क्यो
पईसा समान नही जमीन रे पड़दे पर

---

१ वालक पीरथी वोध, पृ० सं० १ ।
२ वही, पृ० स० ४ ।
३ वही, पृ० स ७ ।

या यों दूनी दूनी खरच गमायो क्यों।
कोड़ी खातर अपनी जान गमाय देत
हाहा विश्वनाथा यह दान ही वणायो क्यों।
'प्रेम' कहै इसे परवाण विना सार्‌यो होत
मेटन मरजाद ओ कपूत जायो क्यों।

श्री छबीलमल

ये कुचेरा निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १८४५ में और मृत्यु अल्पआयु मे हो संवत् १८९० में हो गई। इनकी रचनाएं वही के श्री ब्रह्मचारीजी के पास गुटके में सुरक्षित हैं। रचना उदाहरण—

कुचेरे के सेर मांय एक काला भैरू रहता है।
सव दुनियां की आसा वोही पूरण करता है।
एक छतीस पुरग भैरूं के चरणा आवे
कोई अन्धा कोई मन चिन्ता दूर हो जावे
एक कीला से पूजा भैरू को आती है
कला इन पाल भैरूं कूं पाती है
छकीयोड़ो भैरूं लहरा वोत लेता है।[1]

कीरतो सेवग

ये कुचेरा निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनका काल भी १८०१ से १९०० के वीच का रहा। इनकी रचनाएं भी ब्रह्मचारी जी के गुटके में मिलती हैं। रचना उदाहरण—

आज मांरी चौसट माता सरणे आया री राखो लाज ए।
नगर उजीणी नवापुरा में चौसट मात बीराजे
आतुणी पोल्या के महीने नीतकी नौपत वाजे ॥
चौसट माता वड़ी विधाता देव मोकली चंदी
राव भरत री करै तंपस्या नीचे सिपर नन्दी ॥२॥
माह महीने तीज तीजे ने गुण देवी रा गावां

---

१ हस्तलिखित पोथी (कुचेरा वाले ब्रह्मचारी जी के पास), पृ० सं० ४।

"कीरतो सेवक" करै वीनती राज रीजक सवाया पांवा ॥[1]

हेमराज

ये भीनमाल के रहने वाले थे। इनका जन्म सवत् १८०२ और मृत्यु संवत् १८४६ के आसपास हुई। आपके वर्तमान वंशजों में श्री तेजराजजी आदि हैं। ये भक्त थे। इनकी रचनाओ मे सरसता है। रचना उदाहरण-

वाराह साम वाराह साम वाराह साम वारी
मैं तो हूं चरणो रो चाकर राखो लाज हमारी।
संख, चक्कर, गदा सोवे चार भुजा धारी
हरणाकस ने आप हणियो लछमी वारा अवतारी।
प्रात समे पूजा होवे आरती उतारी
केसर कंकू आड सोवे निरखै नर ने नारी।
पीरथी ऊपर पग धरीयो नाग नताण सतधारी
कर जोड़े "हेमराज" कैवे आपो धन अवतारी ॥[2]

कवि जसराज

इनका जन्म संवत् १८२४ में और मृत्यु संवत् १८८४ में हुई। आप भक्त कवि थे और भीनमाल निवासी थे। रचना उदाहरण—

दोय जोड़ूं हाथ सुणो वाराह देवा
चौरासी टालूं सदा और करूं सेवा।
हाथ जोड़ 'सेवग जसियो' कैवे
दास सदा थांरै चरणां रैवे।[3]

कवि चौमनीराम

ये जालोर के रहने वाले थे। इनकी रचनाएं तो विशेष नहीं

---

१ वही, पृ० स० १५।
२ हस्तलिखित पृ० ४ से तेजराज भीनमाल वालों के पास से।
३ वही, पृ० सं० २८।

मिली किन्तु इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि इनका जन्म १८२७ एवं मृत्यु १८६० में हुई । रचना उदाहरण—

पाव से गया नही ग॒ ज्ञानी
उण नर केरा पाव कहीजे देवल थंभे जैसा
हरी सिमरण बुद्धि नहो राखे क्यो लेवे वली
कहते 'चीमनीराम' राम राम से हो निसतारा
राम को हीये नही धारा ॥[1]

कवि गिरधरलाल

आपका जन्म संवत् १८०२ में सोजत सिटी में हुआ और स्वर्ग-वास मिती सावण सुद ११ संवत् १८६७ मे हुई । रचना उदाहरण-

औ तो बंसीवारो कानो रे मन मोरो मोह लियो
अजी औ तो गोकल ने मथरा बीचे तोफान करे ।
मैं तो जाय पुकारू राजा कंस ने फेर नही मांगे डोण रे ।
बंसी वजावे सव मन भावे कानो गावे मीठी तान रे
"गिरधर" कवि गावे मदन रिझावे कुंज ताल घर ध्यांन रे ।[2]

कवि परमानन्दजी

आप बीकानेर के रहने वाले थे । आपका जन्म संवत् १८५० और मृत्यु संवत् १६३० में हुई । आपके बारे में कहावत है कि एक समय में आपको अजमेर से आते वक्त रास्ते में डाकू मिल गये । जब डाकूओं ने रास्ते मे मुठभेड करनी चाही तो कवि ने उसी समय एक कवित्त सुनाया । इससे डाकू बड़े प्रभावित हुए और कवि को बड़े आदर सम्मान के साथ छोड दिया गया । कवि के वर्त्तमान वंशज श्री किशनगोपालजी (गुहड़ महाराज) से मुझे बीकानेर में ही रच-नाएं देखने को मिली । यद्यपि रचनाएं फुटकर ही हैं फिर भी मनो-हारिणी हैं । रचना उदाहरण—

हास्यरस—

---

१ नीति ज्ञान-प्रकाश, पृ० स० ७२ ।
२ ह० लि० ग्र०, पृ० सं० १२८ ।

सेठाणी सैणी घणी, देणे रो नहीं दाम
जांन जोमी जुगत से, खरचो नांय छदाम
खरचो नांय छदाम, नाम में वसन्त वडाई
वीमल वीचारे वात साथ सव संघ सदा ही
लावण कर लालच नही, काचा करो मत कान
नैतो दियो नां कवि ने खरचे नांय छदाम ।।[1]

उदयपुर नगर की प्रशंसा मे एक दोहा भी द्रष्टव्य है—

दया दांन धरम मे उदैपुर सीरे नांम
रगराणे परताप, जाहर गुण यस काम ।।[2]
कहत है "परमानन्द कवि" नीकमो हुणो नांय
नीकमो हो जावे वांको चेतो ही अचेत है ।[3]

कवि नगराज

ये जोधपुर के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १८४१ एवं मृत्यु संवत् १९०३ में हुई। ये महाराजा मानसिंह के राज्यकाल मे मौजूद थे। इसकी रचनाएं फुटकर हैं। उदाहरण-

समधर वीघा, वृन्द सुणता वलै मलराय थांने वखाण
दोने नगो साच सव सरसे, नाथ हुकम होय जोधाण
सेवग साचो सुकवियो, नरवत वड़े "नगराज"
महाराजा नृप मान रे, किता सुधारण काज ।[4]

कवि दौलतराम

ये जाति के सेवग थे।[5] इनका जन्म संवत् १८०५ के आस-पास हुआ। इनके द्वारा रचित एक भजन मुझे रा० प्रा० वि० प्र० बीकानेर में देखने को मिला। ये जोधपुर निवासी थे। इनकी मृत्यु

---

१ हु० लि० प्र० पृ० स० १५।
२ शाकद्वीपीय ब्राह्मण बन्धु, अंक १७ में प्रकाशित।
३ हु० लि० प्र०, पृ० स० १८।
४ शाकद्वीपीय ब्राह्मण वधु अंक १७, पृ० सं० ८ में प्रकाशित।
५ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० ११ भूमिका।

सं० १८६७ में हुई । रचना उदाहरण—

घडी घडो पलपल छीन छीन प्रभू को समरण करले प्राण
प्रभू सुमर तेरे पाप कटेला, जनम मरण दुख मिट जाले रे
मन वच काय लाय चरणा चित्त, लाय ध्यान हिये धर ले रे
"दौलतराम" धरम नवका चढ भवसागर तू तरले रे।[1]

कवि सगुण

इनका विशेष वृतांत्त तो ज्ञात नही हो सका किन्तु फुटकर रचनाएं एक गुटके से मिली हैं।

रथ वैठी जिनराज आछ उनछव आयो
महोछ्य आयो मोतीड़ो वधायो
मन भायो महाराज सहीत सकल सेवायो
'सगुण' सेवग का सीधा सगला जायो।[2]

कवि रतन सेवग

ये मारवाड़ पाली के रहने वाले थे और इनका जीवन कला १८२० एवं मृत्यु स १८७० मे हुई। ये भक्त कवि थे इनकी रच-नाओं मे शान्त रस की प्रधानता है। रचना उदाहरण—

जगनायक वह आज आणंद वधाइया
ज० सुत जायो लोक सहू आणंदरूप
सेग सूवे साडूजीम गुरू चेलण
पास वद ज० २३ मेरा नगर माहि कौण ।।[3]

कवि निगुण सेवग

ये वीकानेर निवासी थे। इन्होंने जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की विनती में कई पद रचे हैं। अनुमानतः इनका काल १८०१ से १९००

---

१ स्फुट पद, रा० प्रा० वि० प्र० वीकानेर पत्र स० २५७।

२ वही, पत्र सं० २५८ ।

३ रा० प्रा० वि० प्र० वीकानेर के ११९४५ से। खजांची ६७०२ पृ० सं० ६१–६२ ।

के बीच का रहा । रचना उदाहरण—

रीषभ जिनेसर त्रिभूवन दिनकर
वीनतडी अव वारो रे
निगुण सेवग मा वांछित ही पूरो
तहीज गुण वाली तें जेठ शुकल सोमवारा रो
वीकानेर भजारो है ।[1]

कवि रसकनाथजी

ये कुवेरा गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । ये वडलू (भोपालगढ) निवासी थे । कवि के वर्त्तमान वंशजों मे श्री जगन्नाथजी एवं उनके पुत्र केदारजी विद्यमान हैं । रसकनाथजी का जन्म संवत् १८-२० की चैत्र शुक्ला १० को हुआ और मृत्यु भाद्रपद ५ को संवत् १८९० मे हुई । रचना उदाहरण—

प्रथम भगत प्रह्लाद जिकण ने अगन जलायो
वचन लिया जिणवार वली हुता पिण वधियो
कलु माह जंणा करुणा करे वल दल वन्ध वुझा दियो
निर वाव निगण वन्ध निज दहली दार वन्धा दियो ।[2]

कवि मेघराज

जैसलमेर परिचय के अनुसार ये सं० १८०१ से सं० १८७० के वीच के कवि थे ।[3] ये जैसलमेर के रहने वाले थे । इनकी रचनाएं तो कम ही मिलती है किन्तु फिर भी ये भक्त कवि थे । रचना उदाहरण—

मेहर करो महाराज देव मुख दरसण दीजे
मेहर करो महाराज राज चरणो मे लीजे

---

१ रा०प्रा०वि०प्र०बीकानेर ११९५० खर्जांचा ६८०३/३२ के गुटके से पृ०सं०१ से ।

२ ह० लि० प्र० विरहपदवतीसी से ।—इति श्री रसकनाथ विरचते विरहपद वतीसी सम्पूर्ण सवत् १८६७ मिगसर वद ७ ।

३ जैसलमेर परिचय–प्रथम भाग–ले० नन्द किसोर जैसलमेर वाले, पृ० सं० ५२–५३ ।

मेहर करो महाराज अकल समायो आयो
मेहर करो महाराज पूजारी सेवग मग 'मघो' कहै।
तीन लोक तारण शरण चरणो रो चाकर लहै।[1]

सवत् १८०१ से सवत् १९०० के वीच के कुछ अन्य कवियों में सेवग खेताजी[2], सेवग लाधाजी,[3] कवि समधर, कवि सेवग विहारी जी[4] आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन कवियो की रचनाएं भिन्न भिन्न गुटकों में मिलती हैं।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का परिचय
'राजस्थानी साहित्य के रचयिता'

सं० १९०१ से वर्त्तमान तक के कवि जिनका प्रयाण हो चुका है

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से सवत् १९०१ से प्रारम्भ होता है। इस काल में वहुत से शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि हुए हैं। इस काल के कवियो मे श्री हरिनारायण पुरोहित (जोधपुर), कवि तेज (जैसलमेर), श्री देवीचन्द (भीनमाल), श्री नथमल (ब्यावर), केवलराम (वडलू), रामरख (नागौर), परसराम (मैंगलवा), रूगनाथ (मोरसा), धुधलीमल (वाडमेर), आदि प्रमुख कवि हुए है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य फुटकर कवियो को भी मैंने इसमें यथास्थान दिया है। उनके कुछ नाम इस प्रकार है— हरदेव (कुचेरा), अन्नो सेवग (खारिया), हसराज (कुचेरा), प्रताप (रीया), गोपीकृष्ण (वोकानेर), जवाहरलाल (वीकानेर), सोहन (मेडता), कांनीवाई (जोधपुर), माणकलाल (जोधपुर), वशीलाल (जोधपुर), मिसरीमल (मोकलसर) आदि।

उपर्युक्त कवियों मे अधिकतर कवि भगवद् भक्त थे इनकी रचनाओं में भक्ति-भावना स्थल-स्थल पर प्रत्येक पद, गीत, भजन, दोहों, छद इत्यादि में कूट कूट कर भरी हुई है। कोई राम का प्रिय भक्त था, तो कोई श्रीकृष्ण का। कोई यदि सिचवाय-माता का भक्त था तो कोई गणेशजी का तो कोई श्री कृष्ण का।

---

१ वही, पृ० स० ५२–५३।
२ प्रा० ह० लि० गुटका श्री भैरूलालजी अगवरी वालो के पास, पृ० स० ५२
३ वही, पृ० स० ४। ६ वही, पृ० स० ५२। ७ वही, पृ० स० ७२।

भक्त होने के साथ ही इन कवियों की एक विशेपता और यह है कि ये कवि समाज-सुधारक भी थे।

कवि हरिनारायण पुरोहित

जीवन परिचय

आपका जन्म मिति श्रावण वदी ६ संवत् १९३३ को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री प्रह्लाददासजी एवं माता का नाम जीतूवाई था। किन्तु वाद मे ये श्री गगादासजी के गोद चले गये। गंगादासजी की पत्नी का नाम गोदीवाई था।

आप जोधपुर के प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे से थे। आपने ही "सूर्य सप्तमी" के यज्ञ को जोधपुर में सवत् १९५२ मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की वगीची में आरम्भ करवाया था, जो कि आजकल तमाम राजस्थान मे हर वर्ष होता है। पहिले यही यज्ञ मण्डोर मे होता था। तत्पश्चात् आपने शाकद्वीपीय ब्राह्मण कुल उद्योत-कारिणी सभा की स्थापना की एवं उसके मंत्री भी रहे।

सवत् १९७० मे आपने रात्रि-पाठशाला भी खोली, जिसमें करीव ५० छात्रो को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। शाकद्वीपीय ब्राह्मण वन्धु मासिक पत्र के वोर्ड के आप मंत्री रहे। आपने मह-कमाखास जोधपुर मे भी कार्य किया। फिर आडिट मे रहे एवं फिर १९७७ से सवत् १९८५ तक आप जोधपुर राज्य के हाउस-होल्ड कन्ट्रोल में रीडर पद पर रहे। मेड़ते मे भी आपने हकुमत का कार्य किया था।

तात्पर्य यह है कि श्री हरिनारायणजी पुरोहित केवल शाक-द्वीपीय ब्राह्मणो में ही नही अपितु जोधपुर के लव्ध-प्रतिष्ठित एवं यशस्वी व्यक्तियो मे से थे। आपकी मृत्यु संवत् २००५ के माघ वदी १४ को हुई। आपकी पत्नी का नाम सौभाग कंवर है, जो मौजूद हैं। आपके दो पुत्र और चार पुत्रियां हुईं, जिनमे से दो पुत्रियां तो गुजर गईं वाकी वंश विद्यमान है। इनके वंशजो के नाम (१) अनोप कंवर (२) सूरज कंवर (३) इंद्र कंवर (४) आदित्यनारायण (५) सूर्यनारायण (६) चांद कंवर।

कवि द्वारा रचित साहित्य

कवि हरिनारायण पुरोहित 'हरि' जोधपुर के विख्यात कवियों मे से थे। आपके द्वारा रचित एक हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त है[1] भौतिकवादी युग मे भी सांसारिक ऐषणाओं से प्रेरित न होकर पुरोहितजी ने अपने काव्य में भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित की है। अपने काव्य के माध्यम से ही कवि ने अपना श्रद्धा-विगलित और भक्ति-सचलित हृदय प्रभु के समक्ष प्रकट किया है। पुरोहितजी की रचनाओ को देखते ही गोस्वामी तुलसीदासजी की यह उक्ति अनायास ही हमारे समक्ष उपस्थित हो जाती है–

'कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।'

कवि-कुल-चूड़ामणि पुरोहित ने अपने काव्य में, पदों भजनों एवं स्तुतियों के रूप मे अपने भक्त-हृदय के भावों की अभिव्यक्ति की है। बहुत से पद और गीत भगवान् की लीला से सम्बन्धित हैं। कही कवि ने गोपियो के आतुर विकल और प्रेमपूरित हृदय की भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया है और कही अपने मन की व्यथा प्रकट की है।

कवि की भक्ति भावना का केन्द्र केवल एक ही देव नही है। इस क्षेत्र में कवि की सहिष्णुता स्तुत्य है। वे अंध-भक्त नहीं हैं। विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियो के रूप में कवि ने उनके चरणों मे अपनी श्रद्धा और भक्ति के प्रसून अर्पित किए है। कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं–

श्री गंगश्यामजी के प्रति[1]

दरसण दो गंगश्याम पियारे।
विपत विडारन, भगत उवारन सकल सुधारन काम,
जोधाणे जूनी मंडी विराजे आलीजा गंगश्याम॥[2]

श्रीराम के प्रति

दास हरी चरणन को चेरो रघुपति मोरे प्राण अधारे।[3]

---

१ ह० लि० ग्रन्थ पृ० स० १६।
२ वही, पृ० संख्या १७।
३ वही, पृ० स० २५।

श्रीकृष्ण के प्रति

वलराम भैया सुध लो मोरी
हरी भोजक विप्र शरण तोरी ।[1]

कवि ने अपने को प्रभु के सामने दास ही माना है जो प्रत्येक पद में देखने को मिलता है और प्रभु को अपना सर्वस्व लुटाते हुए कवि ने यही कहा कि मैंने तो तेरा ही ध्यान धर लिया । इससे अधिक एक भक्त और कर ही क्या सकता ?

तेरो ही ध्यान धरियो री ।[2]

श्री सूर्यनारायण के प्रति –

जै सूरज देवा जै आदित्य देवा ।[3]

श्री गणेशजी के प्रति—

गणपत मोरी विनय सुन लीजे ।[4]

श्री जोगमाया के प्रति—

मैं हूं वालक शरण तिहारी मैयाजी राखो लाज हमारी ।[5]

कवि तेज

राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध कवि तेज का जन्म संवत् १९३८ के आषाढ मास में हुआ ।[6] आप शाकद्वीपीय ब्राह्मण श्री गौडी दास जी के पुत्र थे । आपकी माता का नाम सूजावाई था जो श्री द्वारकादासजी की पुत्री थी ।[7] आपके तीन भाई और दो वहिनें थी। भाईयो के नाम क्रमश· इस प्रकार हैं– श्री पुरुषोत्तमदासजी, श्री नखतमलजी तथा श्री मूलचंदजी । कवि तेज जैसलमेर निवासी थे।

---

१ वही, पृ० सं० १५ ।
२ वही, पृ० सं० १० ।
३ वही, पृ० सं० १८ ।
४ वही, पृ० स० १ ।
५ वही, पृ० सं० २ ।
६ कवि तेज शर्मा का जीवन चरित्र, पृ० स० ७ ।
७ वही, पृ० सं० ८ ।

इनकी मृत्यु संवत् १९८३ में फागुन शुक्ला २ को हुई। आपके वर्त्त-मान वंशजो मे श्री सगतमलजी तथा उनके पुत्र श्री नन्दकिशोरजी आदि है जो अभी भी जैसलमेर मे ही रहते है। इनकी कुछ छोटी बड़ी रचनाओं की सूची निम्नलिखित है-

(१) स्वराज्य बावनी (२) (अ) शनिश्चर की लावणी (ब) केलोद की लावणी (३) नैन खसम को खेल (४) आईनाथ अड-तालीसी (५) जोग भर्तहरी का ख्याल (६) गायन (७) शैतान सुन्दरी (८) पजाबी छैला (९) छैल तम्बोलन (१०) मग-परिचय आदि। रचना उदाहरण-

हिन्दुस्तान का सिक्का हिन्द की छाप जमावेगे
कागज और कथीर विदेशी सिक्का जलावेगे
फायदा हिन्द उठावोगा, तुम्हारा जब स्वराज होगा।[1]
नैन मूंदकर अरज सुणो सूर्यात्मज शनिजी महाराज
चूक परी सों जता मे जाहर भुगत खोहूँ आज॥[2]
देख्या गाव किलोद हाल कवि तेज शुबस्ती सारी का
सती सेठ पुनवान जीव परतख अमोल उदारी का
बसती है गुलजार सुखी नर नार देश देखण मौजी
घरा शाम निपजै तमाम का पुस माल दे रहे रोजी।[3]
कमा नफा कर लेऊं चौगणा कहो मडद का काम
आडतियो के बीच गाय ला खाऊं गुपत हराम॥[4]
भजो सब विश्वम्भर करतार
जाकी माया जगत रचाया सबका पालनहार॥[5]
दरसण कर सुख पायो रे।[6]

---

१ स्वराज्य बावनी (कवि तेज) पृ० स० ४।
२ शनिश्चरजी की लावणी (कवि तेज) पृ० सं० ४।
३ ग्राम केलोद की लावणी (कवि तेज) पृ० स० १४।
४ नैन खशम को खेल (कवि तेज) पृ० स० २७।
५ कवि तेज कृत गायन (कवि तेज) पृ० स० ७।
६ वही, पृ० स० ४७।

मोहन कुवजा से नेह लगायो रे ।[1]
समाज की कुरीतियों पर व्यंग करते हुए कवि लिखता है—
चवड़े वेचे बेटियां स रे न्यात न करे विचार
पच चौधरी सेठ वके तो देय सुखां री मार
पच चौधरी पापिया स वो वसै न्यात से दूर
ऐन बिगाड़े न्यात की स वो भोगे नरक जरूर[2]
देस जात का करो सुधारा जीवन सफल वरणावो ।[3]

कवि देवीचन्द

राजस्थान के प्रसिद्ध ग्राम भीनमाल मे कविकुल–चूड़ामणि श्री देवीचदजी का जन्म सवत् १९३४ मे हुआ । आपके पिता का नाम रूपजी एवं माता का नाम गजरावाई था । इनकी पत्नी का नाम सुन्दर देवी था । इनके वर्त्तमान वशजों में श्री मोतीलालजी हैं जो कि भारत के प्रख्यात चित्रकारो मे हैं । श्री मोतीलालजी के पुत्रों मे श्री पुष्पकात, श्री रविकान्त एवं श्री हरिकान्त हैं । श्री पुष्पकांत भो ख्याति प्राप्त अध्यापक हैं ।

यशस्वी कवि देवीचंदजी परमात्मा के पूर्ण भक्त थे तथा देवी भैरव इत्यादि के पक्के उपासक थे । कहते हैं कि भक्ति की प्रेरणा-स्रोत महाकवि तुलसीदासजी की पत्नी की भांति इनकी भी पत्नी सुन्दरदेवी ही रही । इनका देहान्त संवत् २०२१ मे हुआ ।

श्री देवीचद के भजनो और पदो मे भक्ति का अनुपम स्रोत प्रवाहित होता है । वैसे तो कवि ने भिन्न भिन्न देवी-देवताओं के प्रति अपनी भक्ति दिखलाई है परन्तु मुख्य रूप से वे जोधपुर के श्री गगश्यामजी के भक्त अधिक लगते हैं कारण कि उनकी जो एक पुस्तक प्रकाशित है वह श्री "घनश्याम महिमा" के नाम से ही है । श्री गगश्यामजी का मंदिर जूनी धान मंडी जोधपुर मे है। वहां आज

---

१ यही, पृ० सं० २० ।
२ नैनखशम को खेल, पृ० सं० ३४–३५ ।
३ वही, पृ० स० ५९ ।

भी हजारों दर्शनार्थी आते हैं और इनके सम्वन्धी कई कवियों ने भजन, गीत आदि रचे है। उदाहरणार्थ—इसी प्रवन्ध मे आए हुए कवि श्री हरिनारायण पुरोहित।

कवि देवीचन्दजी ने केवल एक देव को ही अपना आराध्य नही माना अपितु सभी देवी-देवताओ व अवतारों मे उनकी श्रद्धा रही है। अव हम देखेंगे कि उनके द्वारा रचित पदो में कौन कौन से देवता की रचनाएं मिलती है।

श्री गंगश्यामजी के प्रति–

निरखूं गगश्याम नारायण पंडित वेद पढे पारायण
गीता भागवत नित गायन मेला जनत होता है।
मोटो तीरथ मण्डी मे मन्दिर सोवन कलश शिखर है।
सुन्दर ग्राहत आप छुडाये गजदर दानव खाते गोता हैं।[1]

फिर– श्री गगश्याम रटूं नित नाम
करे सिध काम धारियो मन को।[2]

उनकी महिमा के वारे मे सूर की भांति कवि ने लिखा है–

आधला देखे, पांगला चाले पगा रे।
भाके देवीचद खुशी दिल रहता है मेरा।[3]

गंगाजी के प्रति—

गंगाजी का माहात्म्य ऋग्वेद से लेकर रामायण में, पुराणों मे देवी-भागवत मे एवं अनेकाधिक ग्रन्थो मे भरा पडा है। आज भी करोडों दर्शनार्थी प्रतिवर्ष गंगा-स्नान करने हेतु सैकड़ों रुपया खर्च कर जाते है। अनेकों घरों में गगाजल आज भी रक्खा जाता है। घर को शुद्ध करने तथा अनेक शुभ कार्यो मे गंगाजल काम मे लिया जाता है। भक्त लोग नाना प्रकार से गगा-पूजन करते हैं तथा उनकी महिमा का गुण-गान करते हैं। कोई हर हर गंगे तो कोई जय जय गंगा मैया आदि। कवि देवीचंदजी ने भी गंगाजी के प्रति अपने भाव दर्शाये हैं।

---

१ घनश्याम महिमा, पृ० स० ४।
२ वही, पृ० सं० ५।
३ घनश्याम महिमा. पृ० सं० ६।

प्रातः समै गंगा का दरशण कर मन परसण होई ग्राई रै ।।[1]
पीवो मत जरदो प्यारे, लगते कफ खोसी है ।[2]

घुंधलीमल (बाड़मेर)

जीवनी

राजस्थान के पश्चिमी भाग के वाडमेर मे सवत् १९३७ की माघ शुक्ला १४ को श्री धुंधलीमल का जन्म हुग्रा । ग्रापकी माता का नाम नवली वाई और आपके पिता का नाम खुशालचदजी था । वचपन मे ही ग्रापके पिताजी का देहान्त हो गया । विधवा माता ग्रौर एक मात्र तीन साल का पुत्र इस घर मे केवल मात्र दो प्राणी रहे। शनैः शनै वालक धुंधलीमल ने ग्रथक प्रयासो से जीविकोपार्जन किया और ख्याति ग्रर्जित की । दिनाक २०-३-६३ अर्थात् २०१९ में यह सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया । कवि के वर्त्तमान वशजो मे श्री पन्नालालजी ग्रादि है ।

रचनाए

कवि द्वारा रचित रचनाएं यद्यपि अधिकतर फुटकर ही है, जिनमे तथापि भक्ति की ओर कवि का झुकाव अधिक रहा है, फिर भी कवि ने अन्य विपयो पर भी भाव दर्शाये है । रचना उदाहरण—

मित्र कुमित्र की चाल वतावत
चायना की गत देखलो सारी
भारत सूं भीड़वा की करी दिल
खास जो खड मे होत खुवारी ।।[3]
धर ध्यान के घुधल ध्याय सदा
मोहि तार चौरासी को तारन हारो ।[4]

---

१ हस्तलिखित, पृ० स० ५ ।
२ वही, पृ० स ७८ ।
३ फुटकर पत्र—१ ।
४ हस्तलिखित प्र० स० १ ।

कवि नथमल (ब्यावर)

जीवनी

कवि श्री नथमलजी का जन्म वैशाख सुदी १४ (नृसिंह चतुर्दशी) सवत् १६४२ को पाली (मारवाड) मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ। आपके पिता का नाम श्री अम्बालालजी था। कवि को वचपन से ही कविता के प्रति अभिरुचि थी। आपने दो विवाह किए, पहिला विवाह गाव हुरड़ा मे (गुलाबपुरा के पास) गंगा वाई के साथ हुआ, जिससे एक पुत्ररत्न एव एक पुत्री हुई। पहली पत्नी का देहावसान हो जाने के कारण आपको दूसरा विवाह करना पड़ा, जो नन्दावाई के साथ हुआ। नन्दावाई के छः पुत्रिया हुई जिनमें दो तो अभी वर्त्तमान हैं वड़ी पुत्री का नाम अनोपकवर और छोटी का नाम छोटी देवी है। कुछ समय वाद नथमलजी पाली छोड़कर व्यावर चले आए और यही पर आपने कवित्व शक्ति का परिचय देकर जनता के हृदय मे घर कर लिया। कवि स्पष्टवक्ता थे और यहां तक कि कभी झूठ भी वोलते तो पश्चात्ताप करते थे। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई तथा आपने हिन्दी, सस्कृत एव राजस्थानी भाषाओं का अध्ययन किया। आपका स्वर्गवास मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी को संवत् २०२४ मे हुआ।

रचनाएं

आपके द्वारा रचित साहित्य दो भाषाओ मे मिलता है (१) हिन्दी (२) राजस्थानी, जिनमे से दो पुस्तको का प्रकाशन हुआ है एवं वाकी रचनाए अप्रकाशित है।

प्रकाशित– (१) **करुणा कहानी**

प्रथम वार संवत् १६६४ मे मनोहर प्रिंटिग वर्क्स व्यावर से मुद्रित एवं स्वयं द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तक मे भारतीय किसान की जीवन दशा का वर्णन काव्यरूप मे मिलता है। रचना प्रभावोत्पादक है।

(२) **नथमल भजनावली**

सवत् २०१८ की भादवी १० मंगलवार को गजानन्द प्रेस व्यावर द्वारा मुद्रित।

अप्रकाशित–

उपरोक्त प्रकाशित रचनाओं के अतिरिक्त आपका कुछ साहित्य भी है जिनमे भजन, समस्यापूर्ति, दोहे आदि हैं तथा एक ड्रामा तथा अनेकों गीत भी देखने को मिलते है। रचना उदाहरण–

स्वदेशी मारू म्हारे पोत मंगाओ जी
असल कसूवल लाओ प्यारा मारूजी पीरो रंगाओ जी
झीणा पीरा में म्हारो अग झांके जी
मोटो थे लाजो लाज वचाओ प्यारा मारूजी पीरो।[1]

पराई स्त्री के साथ प्रीति नही करनी चहिए, इसोलिए कवि एक जगह कहता है–

पर नारिन सों नेह न कीजे,
जा से धन योवन सव छीजे।[2]

नशे का विरोध करते हुए कवि कहता है–

मत ना पीओ खोटी भांग,
गहला वणसो होली सांग।[3]

फिर– गाजो सुल्फो वुरी वलाय।[4]

किसान की दशा का चित्र खीचते हुए कवि ने लिखा है–
कृषियान की कश्ती हिलोरे खा रही मझदार है।[5]

भक्ति सम्वन्धी–

खोया समय न मिलता भज राम नाम "नथमल"
भवसिन्धु पार करले सुख राज करले भाई।[6]

कवि रामरिख

ये नागौर निवासी थे। इनके लिखे हुए कुछ भजन एवं पद

---

१ ह. लि. पो. (कवि नथमल) पृ. स. ५।
२ वही, पृ० ७।
३ वही, पृ० २४।
४ वही, पृ. सं. २४।
५ करुणा कहानी, पृ. सं. ४।
६ नथमल भजनावली पृ. स. १०।

तो मुझे नागौर के ही श्री गोपीकिसनजी चंडक द्वारा प्राप्त हुए जो कि वही के श्री रूपचंदजी शाकद्वीपीय ब्राह्मण ने दिलाए थे तथा वही से एक प्रकाशित श्री शनिश्चरजी की कथा एव एक लघु पुस्तक सनातन–धर्म भजन दीपिका प्राप्त हुई। इनके जीवन की विशेष जानकारी तो नही मिलती किन्तु शनिश्चर की कथा मे दिए हुए आधार पर इनका कविता काल १६ वी शताब्दी का ही प्रामाणित है। इनके पिता का नाम श्री सुखरामजी था। कवि–परिचय के सम्बन्ध मे दोहरा दृष्टव्य है–

> संवत् दस नौ तेसटे भादुं वद गुरुवार
> द्वादसी सुभ दीन कही कथा बुधि अनुसार।[1]
>
> ।। टेक ।।
>
> कुल्ल उतम भवीस पुराण देख दरसा रे
> मघ सेवग सेवा प्रिये परसिद्ध पीया रे
> सीवलाल मदन–सुखराम है तात हमारे
> गुरु गोविंद वल्लभ सदन सीस कर धारे
> रंगत चार रसाल सुनो पेक्षाल चाल
> सुन्दर गुणीजन वीघन हरन ऐ सदा सुख
> मंगल के आणन्द करण ।।[2]

श्री भैरव के प्रति–

> चढत सिन्दूर अंग पना अंग हद सोवे
> मूरत मन मोवे सूरत देखे सुत भाजे है।[3]

श्री हनुमानजी के प्रति–

> अंजनी के कुंवार हिरदे धार ए अरज मेरी।[4]

केवलराम

ये वडलू ग्राम के रहने वाले थे जिसे आजकल भोपालगढ के

---

१ शनिश्चरजी की कथा पृ० स ११।

२ वही पृ० सं० ११।

३ ह० लि० प्र० पृ० ५५।

४ वही पृ० ५८।

नाम से अभिहित किया जाता है । इनके पिता का नाम श्री नरसिंह दासजी एवं दादा का नाम रसिकनाथ जी था। कवि केवलराम का जन्म सवत् १६११ मे और मृत्यु संवत् १६७० मे हुई । कवि द्वारा रचित एक पुस्तक "रामलीला" प्रकाशित है । यह स० १६२५ में सा० भगवानदास सतोकचदजी द्वारा बम्बई से जगदीश्वर प्रेस से प्रकाशित हुई है।

कवि द्वारा रचित पुस्तक रामलीला मे सगीत सम्वन्धी राग रागनिया, सुर और तान देने की विधि, राग के भेद, राग-गाने का समय एवं अन्य भक्तिपद, स्तुतिया आदि देखने को मिलती है । इससे सिद्ध है कि कवि केवलराम जी कवि तो थे ही, संगीत विद्या मे भी पारंगत थे । रचना उदाहरण—

श्री गणपत कूं सिवरके सारद सीस नवाय
सट रागै तीस रागनी "केवल कहे वणाय ।[1]
गुणनिध रसिकनाथजी ता सुत नृसिहदास
ता सुत केवलराम है मुरधर वडलू वास[2]

कवि ने यह भी वताया है कि कौनसी राग का भजन किस समय गाना चाहिए । जैसे दिन के पहले पहर मे—

दिन का पहली पहर कूं गावे देवगंधार
फिर विभास, विलाव रे वसंत राग सुषकार ।[3]

कवि केवलरामजी भक्त थे । दशरथपुत्र राम आपके इष्ट-देव रहे, परन्तु इसके अतिरिक्त कृष्ण, महादेव, गणेशजी, सरस्वती आदि के वारे मे भी आपकी रचनाए मिलती हैं। कही श्री हनुमानजी का गुणगान किया है तो कही सिचवाय माता का भी । किन्तु फिर भी कवि ने अपनी पुस्तक का नाम रामलीला दिया। इससे सिद्ध होता है कि कवि राम भक्त अधिक थे । रचना उदाहरण—

---

१ ग्रथ रामलीला (कवि केवलराम), पृ० स० ३, दोहा स० १ ।
२ वही, दोहा स० २ ।
३ वही, पृ० स० १५ ।

श्री राम के प्रति

ध्यान धरो जिया सियावर चरणा ।[1]

सरस्वती के प्रति

सरसत मात तुंही गुणधारी
विद्याबुध बधावण हारी ।[2]

श्री गणेशजी के प्रति

श्री गणपत कूं सिवंरके सारद सीस नवाय
षट रागे तीस रागनी 'केवल' कहे वणाय ।[3]

श्री देवीजी के प्रति

सिच्चियाय भवानी ओईसा में ओपे थारी थापना ।[4]

श्री हनुमानजी के प्रति

भजो हनुमान जाई रामचन्द्र गाये ।[5]

परसराम

कवि श्री परसराम जी ग्राम मेंगलवा जिला भीनमालके रहने वाले थे । आपका जन्म सवत् १९०५ मे हुआ तथा मृत्यु सवत् १९७५ में । आपके वर्तमान वंशजो मे श्री अम्बालालजी, श्री हजारीमलजी एवं श्री गटमल जी हैं । कवि के वंशजो से स्वयं मैं मिला किंतु उनकी अन्य सामग्री प्राप्त नही हो सकी । जो कुछ भी मुझे श्री तेजराज जी भीनमाल वालो से मिली, उसी के आधार पर इस ग्रंथ मे कवि का वर्णन आ सका है ।

कवि परसराम द्वारा रचित कुंडलियो मे नित्य नूतन सौदर्य के दर्शन होते हैं । उनकी कविता का प्रिय विपय राम है जिसमें सत्यं, शिवं सुन्दरम् का समन्वय पाया जाता है । गोस्वामी तुलसीदास की भांति एक राम को अपना कर आपने सारे जगत को अपना लिया ।

---

१. वही, पृ० स० १२ ।
२. रामलीला (कवि केवलराम), पृ० स० १२ ।
३. वही, पृ० स० १ ।
४. वही, पृ० सं० ७८ ।
५. वही, पृ० सं० ११ ।

उनको काव्य के रूप मे भावो को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा राम से मिली थी । स्पष्ट है तुलसीदास जी द्वारा रचित साहित्य का प्रभाव इन पर पड़ा । राम के अतिरिक्त कवि को कोई अन्य वात अच्छी लगती है तो वह है धर्म, सत्य, दया एवं संतोष । रचना उदाहरण—

> नैछो राखे राम रो, रटजे दिन ने रात
> मोडा ती मत मेलजे, वडे न वीजी वात
> वड़े न वीजी वात, धरम सत वीजी धारो
> छोडो मती सतोप, वड़े मन दया विचारो
> रैणो के 'परसराम' अण मे नांय अंदेसो
> रटजै दिन ने रात, राम रो राखै नैछो ।[1]

रुगनाथ

कवि रुगनाथ जी गांव मोरसी के रहने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । आपके वर्तमान वंशजों मे श्री मूलचंदजी, मनोहरजी, कनजी आदि है । किंतु उनके द्वारा भी कवि के वारे मे विशेष जानकारी नही मिली, केवल इतनी ही जानकारी मिली कि ये सवत् १६०५ के आसपास हुए और २२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गप्रयाण कर गये । इनके द्वारा रचित कुछ छद, कवित्त आदि मुझे श्री तेजराज जी भीनमाल वालो से मिले । रचना उदाहरण—

गुरु महिमा

> गुरु किरपा पायो गुणां पारस तणो परसंग ।
> वगत करे नहीं विनवो अग्यांनी से अंग ।[2]

अन्य उदाहरण—

> मत जोवन रे मांय मोहिनी माया मांणो,
> आण न हरखो याद, जीव जोखम नी जाणों ।[3]

---

१ ह० लि० प्र० कुडलिया, सं० २६ ।
२. ह० लि० प्र० दोहा, सं० २ ।
३. वही, कवित्त, स० २ ।

घरम बात ना धीर, राड ही सालो मोडे,
जुलुस चीता जाय, वणी बात फिर वगाडे ।[1]
कैवे रुगनाथ हरषे कासू, को तो लिखे कबूतरी,
उण जगे जीव रैसी अदर, डाग वजी जमदूत री ।[2]

हरदेव

ये कुचेरा निवासी थे। इनकी रचना मुझे कुचेरा–निवासी श्री ब्रह्मचारी जी महाराज से प्राप्त हुई । रचना उदाहरण—

पूनम को जतरा आवे नर ओई वार बार घ्यावे
रिध सिध वरदायक अम्बा सनमुख पार पुगावे
जोरा करे मुनीजन सगला सुरा राय ने घ्यावे
हाथ जोड कर विनती घ्यावे सेवग 'हरदेव' पावे ।[3]

अन्नो सेवग

ये खारिया के पास खोमटा के निवासो शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । इनका जन्म सवत् १९०५ और मृत्यु सवत् १९६७ में हुई । आपकी रचना कुचेरा निवासी ८० वर्षीय श्री घगडूजी से मिली । रचना उदाहरण—

वारह कोस टीपोर वंगलो टिकट कटै उठे माल चढ़ै
पूंगी री भसम चार ले पुरुष मन सीतल कर डब्बा झड़ै
करै काम हद कोड ज्यारी जगत गतनी जाणे
करै काम हद कोड, न्याव धरम करै नीसाणे
कोड काम कंपनी कला, वेद पुराणां मे वीसरै
अपी बात अंगरेज री कवि "अन्नो" कविता करे ।[4]

कवि नथमल जी

आप मथुरीया गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और मंडार

---

१. वही, सं० ९ ।
२ वही, सं० ९ ।
३. श्री ब्रह्मचारी जी कुचेरा वालो के गुटके से, पृ० सं० ५८ ।
४. श्री घगडूजी कुचेरा वालो से प्राप्त फुटकर रचना ।

जिला सिरोही के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम श्री कस्तूर जी था और माता का नाम कुसालदेवी। किंतु बाद मे ये हिम्मतमल जी के गोद चले गये थे, जिनकी पत्नी का नाम घापूबाई था। आपके वर्तमान वशजो मे श्री हजारीमल जी एव उनके पुत्र मोहनलाल जो है। कवि का जन्म संवत् १६३० और मृत्यु स० १९९९ मे हुई। रचना उदाहरण—

कोटा कंटरोल दुकान करी जद
भला भला माल की चीजा न भराणी
मोटा मोटा सव धापीया मेम्बर
जके जके सव मन री जाणी
कपडो गुल खांड भलै न कछु
नागा फिरणै री आ ही निसाणी
अनाथ को माल तो हाथ न आवे
मुलक कटरोल री रोल मचाणी।[1]

कवि हंसराज

ये कुचेरा निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपकी कुछ फुटकर रचनाएं देखने को मिलती है। आपका जन्म सवत् १९०५ मे और मृत्यु सं० १९६५ मे हुई। ये भक्त कवि थे। रचना उदाहरण-

एक सब पीर नमे तूंवर तपधारी
एक रामा राज कबार आप अवतारी
देस देस का जातरू चरणा मे आवे
कोई अन्धा, कोई पागला, लूला दरसण पावे
कर जोडी "सेवग हसराज" जस गावे
वो वसे कुचेरा सरे सदा सुख पावे
तुम कीजो मारी साय भगत हितकारी।[2]

प्रताप

ये रीया गांव के रहने वाले थे और हठीला गोत्र के शाक-

---

१. ह० लि० प्र० फुटकर कविता।
२. रामहापीर री लावणी, कुचेरा से प्राप्त, पृ० स० ५।

द्वीपीय ब्राह्मण थे । आपका जीवनकाल सं० १६०१ से सं० १६८० के बीच का रहा । आपने जैनाचार्य की प्रशसा मे एक पुस्तक लिखी उसी से एक कवित्त नीचे प्रस्तुत है—

कवित्त

परतख पीपाड पास रीया, जग जाणे शहर,
सगती की मेहर सेती, बस्ती गुलजार है ।
विजयसिंघ महाराज, आये सेठ साहूकार जो,
क्रोड एक रुपिया हू की मेरे दरकार है ।
खोलके खजानो सेठ, छकड़ा मे छकड़ा जोड़
मोटो सो गाम कीना, मुलक म्हा जार है ।
जिण ही को वासी, मेरो नाम है "प्रताप"
सेवग जात है हठीलवंश, जाणे नर नार है ।[1]

कवि जवाहरलाल

ये बीकानेर निवासी थे । आपका जन्म संवत् १६५० मे शा० ब्रा० परिवार में हुआ । आपके पिताजी का नाम मेघराज जी था । कवि के वशजो से मिलने पर भी विशेष सामग्री तो नहीं मिली किंतु एक लघु पुस्तिका राष्ट्रीय ज्ञान भजन माला देखने को मिली, जिसमे राष्ट्रपति, प्रधानमत्री आदि के धन्यवाद पत्र भी प्रकाशित हैं । इसमे कुछ राष्ट्रीय कविताएं हैं । कवि बंधु ने बच्चों को गिनती सिखाने का माध्यम भी कविता या गीत ही अपनाया है । वास्तव मे यह तरीका सुन्दर है । कवि स्वयं अध्यापक थे इसीलिए इसी प्रयोग को काम मे लेकर बच्चों के प्रति, राष्ट्र के प्रति एव काव्य के प्रति अपना प्रेम कवि ने दर्शाया है । उदाहरण—

एक एक एक, ससार मे बणो नेक
दो दो दो, सवकूं हाथ जोड दो
तीन तीन तीन, हुवो भगती मे लीन[2]

---

१. श्री पार्श्वचद्र कवितावली, पृ० सं० २५ ।
२. राष्ट्रीय ज्ञान भजन माला, जवाहरलाल, पृ० सं० ५ ।

पांच पांच पांच, वोलो हमेमा ही साच ।[1]
वीस वीस वीस, भारतमाता कूं नवावो सीस ।[2]
'जवाहरलाल' सदा वड़भागी चावे है शिक्षा परचार[3]

कवि श्री गोपीकृष्ण जी

ये वीकानेर के रहने वाले थे । इनका जन्म मार्गशीर्ष वदी अष्टमी को सवत् १९२० मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ । आपके पिता का नाम परमानन्द जी था । काव्य का ज्ञान आपने अपने पिताजी से ही किया । आपने कई गावो एव शहरो का भ्रमण किया तथा व्यापार के क्षेत्र मे आपने काफी नाम कमाया । आपके वंशज अब भी वीकानेर मे व्यापारी है और उच्च कोटि के व्यापारी माने जाते हैं। कवि के वंशज श्री किशनगोपाल जी उर्फ गुट्टड महाराज हैं, जिन्हे अभी ही राष्ट्र की ओर से श्रीमती इन्दिरागाधी ने ताम्रपत्र भेंट कर सम्मानित किया । कवि की कुछ रचनाएं मुझे इन्हीं से प्राप्त हुई । कवि का देहान्त सवत् २०१२ मे वैसाख सुदी ८ को हुआ ।

कवि श्री वंशावली
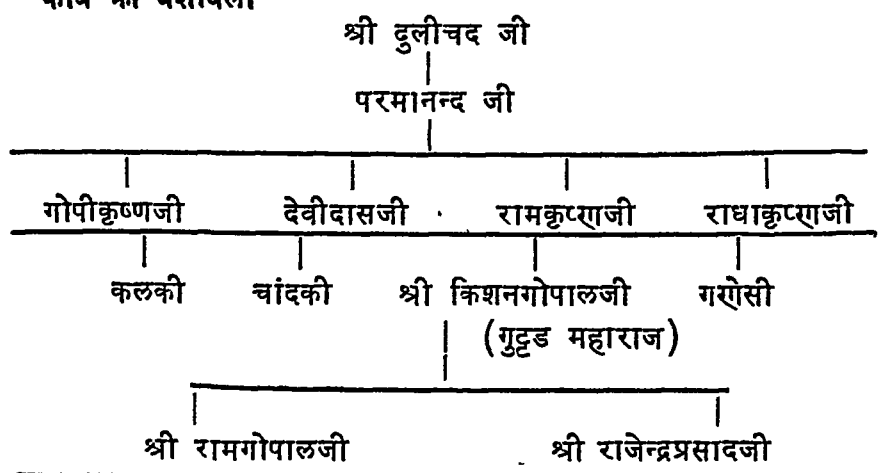
१. वही, पृ० स० ७ ।
२ वही, पृ० सं० ८ ।
३. वही, पृ० सं १० ।

रचना उदाहरण—

ईसवर अल्ला एक है नाम दोय फल एक
वेद बीचारो वात ने दिल में धार विवेक
सरत काम ईसर सुमिर अल्ला ख्वाजा पीर
मद तज दाम महाजन रे सकल दीप रा बीर

वेद पाठ बहु रीत, हवन हरख उच्छब सदा
पंडत प्रेम री प्रीत छटा घटा गोविद गुण
बसे देस बीकाण शाकद्वीप ब्राह्मण कथै
परमानन्द कवि के पुत्र है 'गोपीकृष्ण' कवि जांण
श्री माता दियो ग्यांन सुभ आषर दे सारदा
धरूं मै थारो ध्यान, करज राज राठौड है
बीकाणे वड वीर गंगासिह गरजै आकाश
धरमी चित मे वीर पूत पौत बीरधी करौ

नव एक औ पांच पव, बार गुर गणवार
चेत सुकल री सातमी, 'गोपी' लिखे विचार ।

कवि श्री माणकलाल जी

आप कुवेरा गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि थे । ये जोधपुर निवासी थे । आपके पिता का नाम श्री राधालाल जी एवं भ्राताओं के नाम क्रमशः श्री रामलाल जी एवं श्री बंशीलाल जी था । माणकलाल जी के पत्नी का नाम कानीबाई था । कहते है कि कविता की प्रेरणा इन्हें भी गोस्वामी तुलसीदास जी की भाति इनकी पत्नी कानीबाई से ही मिली । इसीलिए आपने अधिकतर भक्ति संबंधी पद, भजन आदि रचे । आपका जन्म सवत् १९२३ में हुआ एवं स्वर्गवास संवत् १९७१ में अर्थात् केवल ४८ वर्ष की अल्प आयु में ही आपका देहान्त हो गया । माणकजी के दो पुत्र एवं दो पुत्रिया हुई । एक पुत्र श्री भवरलालजी का देहान्त हो गया तथा शेष श्रीमती मानीबाई एवं श्रीमती बन्नासा एव एक पुत्र श्री शंभुदत्तजी जो स्वयं अच्छे लेखक हैं मौजूद हैं। निम्नोक्त रचना मुझे उन्ही से प्राप्त हुई । उदाहरण—

राम सुमरले मनवां तूं तो राम सुमर ले रे
भगत अनेक उबारण वालो
आधो ने मारग दिखावण वालो
वो ही आसी आडो तूं तो राम सुमर ले रे ।
काया रो निसतारो करणीयो एक ही है भगवान्
पाप्यो रो पाप मेटणे वालो एक ही है सीरी राम
राम नाम ले ले तूं तो और भव पार उतर ले रे
काम किरोध अठै रै जासी कोई न आसी काम
आयो है संसार मे तो भज ले आठो जाम
कहै "माणक" कथ सुख चहै तो राम सुमर ले रे ।[1]

कवि श्री बंशीलालजी

ये जोधपुर निवासी थे और कुवेरा गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे । आपका जन्म वैशाख सुदी तीज सवत् १९५७ में और मृत्यु सवत् २००२ भादवा वदी तेरस को हुई । आप श्री राधालाल जी के पुत्र थे और इनके भाई श्री माणकलाल जी भी अच्छे कवि थे। कवि के पुत्र श्री गणेशलाल जी और उनके पुत्र श्री जौहरीलाल जी अभी वर्तमान मे विद्यमान है । ये भक्त थे । रचना उदाहरण—

श्री सरसती सारदा माता सगले काम सुधारो
भोग धरै भटियाणी राणी भलो देवा भडारो
भटियाणी सा भवर खिलाई
जो वंशी देवो वो ही बधाई
जोधाणो जूनी मंडी वसे वास
"वंशीलाल" री उम्मेद जी पूरो पूरी आस ।[2]

श्री भगवतीलाल व्यास

ये जोधपुर निवासी थे । इनके वंशजों से मिलने पर भी इनकी रचनाएं उपलब्ध नही हुई । इनके वंशजो मे श्रीयुत् ओमप्रकाश जी हैं जो कि आजकल बम्बई मे हैं । उनसे ज्ञात हुआ कि कवि का

---

१. हस्तलिखित पोथी, पृ० सं० ४ (कवि माणकलालजी)
२. फुटकर रचना प्रकाशित, पृ० सं० ५ ।

जन्म संवत् १६०५ के आस पास हुआ और संवत् २००० मे ये संसार से प्रयाण कर गये । रचना उदाहरण—

वर्ग जाति की वहै उन्नति करणी चावे
तीरथ सूं भी अधिक जात गंगा मन भावै
लायक है दोनूं पुरुष सारस की सी जोड है
ललकार के गाना करै सिरमौड है ।[1]

कवयित्री कानीबाई

आप जोधपुर निवासी थी एवं कवयित्रियों मे प्रथम शाकद्वीपीय ब्राह्मण महिला थी । ये मेणका नाम से प्रसिद्ध थी । इनकी भक्ति का प्रभाव इनके पति पर भी पडा । फलतः वे भी भक्त कवि हो गये थे । कानीवाई के पिता का नाम श्री शोभाराम जी तथा पति का नाम श्री माणकलाल जी था । कहते है ये वचनसिद्ध महिला थी । इनके पुत्र श्री शंभुदत्त जी वर्तमान मे अच्छे कवि है । कवयित्री का जन्म सवत् १६२२ में और मृत्यु ८४ वर्ष की आयु में हुई । रचना उदाहरण —

मेंणको रम गयो रात अंधेरी
दरस किया आंतडीयां फलगी
पापी काया झटा सभलगी
नेणा रैणा बसेरी—मेणको

चांदणों हो गयो हिरदे मांय
अंधारो गयो फराटा खाय
चांदणी करणी सेण सवेरी—मेणको[2]

कवि श्रीरामजी

ये हठीला गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और गांव बूसी के रहने वाले थे । इनका जन्म सं० १६२१ वि० में हुआ था । आपके वर्तमान वंशजों में श्री मोहनलाल जी तथा उनके पुत्र श्री ओमप्रकाश

---

१. श्री ओमप्रकाशजी वशज से प्राप्त ।
२. ह० लि० प्र० फुटकर पत्र से ।

जी, श्री गणपतलालजी, श्री गिरजाशंकरजी एवं श्री दयाशंकर जी हैं। आप भक्त कवि थे। रचना उदाहरण—

साची सुरराणी जाणी, चारू वेद वषाणी
तोरा परचा भरपूर है
सतड के सिगासण, खमिया को खडग हाथ
जो वन सिह चढ़ी मात तेज को तरसूल है।[1]

कवि श्री रामचन्द्र जी

ये मेड़ता रोड के रहने वाले कुवेरा गोत्र के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपका जन्म सवत् १९६२ मे हुआ और मृत्यु संवत् १९९४ मे अर्थात् केवल ३२ वर्ष की अल्प आयु में ही आपका देहान्त हो गया। आपके वर्तमान पुत्र श्री अमरचन्दजी विद्यमान हैं। कवि की रचनाएं मुझे उन्ही से प्राप्त हुई। रचना उदाहरण—

मदन मनमोहन गिरधारी
मेरी सुध लेओ वनवारी ।।टेक।।
ग्यान मान घन हीन हूँ रहा कुछ भी न पास
कभी जो अपणे दास थे वना हूँ उनका दास
वहुत हो चुकी ख्वारी मेरी
"रामचन्द्र" प्रभु तोरे शरणे करो मेहर गिरधारी[2]

कवि सोहनलाल शर्मा

ये मेड़ते के रहने वाले थे। इनका काल संवत् १९०१ के वाद का है। ये समाज-हितैपी थे और भगवान् के भक्त भी। रचना उदाहरण—

आवो गणराज होके मूसे असवार
गजमुख लम्वोदर इकदंतो पीताम्वर धार
मुकट कानों वीच कुंडल जिगमिग जोत अपार
भाल तिरपुण्ड पर आरपा चन्दरमो पुष्पो रा हार
कश्यप पूत दिनकर प्रभु दाता तूं ही है रखवार

२. ह० लि० प्र० ८५, रा० प्रा० वि० प्र० बीकानेर से।

१. ह० प्र० प्र० मेड़ता रोड़ से, पृ० स० ८।

विरद तिहारो प्रभु वेद उचारत तुम परम उदार
शाकद्वीपी द्विज जबर सुन धारे जिण कूं तेरो अधार
'सोहन' कहत मग जाति जणो के कीजो जल्द सुधार ।[1]

इनके अतिरिक्त सवत् १६०१ के बाद के जिन शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का देहान्त हो चुका है और जिनकी फुटकर रचनाए देखने को मिलती हैं, वे है श्री बद्रीनारायण शर्मा, श्री कवि रमण, कवि धारसीमल (जोधपुर), कवि वृद्धि, कवि मिसरीमल (मोकलसर) कवि कुंवर विहारीलाल जी आदि ।

सक्षेप मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाए, यद्यपि सभी प्रकार के छदों गीतों, दोहो आदि मे मिलती है और रचनाओं मे भी वैविध्यता है, फिर भी अधिकाश कवियो की रचनाएं शान्त रसात्मक है जिनमे मुख्य स्वर भक्ति का है। इसे भक्ति रस भी कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने राजस्थानी के अतिरिक्त संस्कृत तथा प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी भाषाओ मे भी काव्य-सर्जना की । प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक की रचनाए इन ब्राह्मणो की देखने को मिलती है । ये कवि भक्त तो थे ही साथ ही समाज-सुधारक भी थे ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाएं परिमाण और विविधता की दृष्टि से सम्पन्न हैं ।

इसमे कोई सन्देद नही कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाएं स्तुत्य हैं ।

---

१. शाकद्वीपीय ब्राह्मण अंक ४-५, पृ० सं० १७ ।

अध्याय : 4

दार्शनिक दृष्टिकोण

दर्शन शब्द 'दृश्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है देखना-स्थूल नेत्रों से स्थूल और सूक्ष्म नेत्रो से सूक्ष्म तत्त्वो को देखना। गीता मे दर्शन तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान या परमात्माज्ञान को कहा गया है है।[1] आधुनिक युग मे दर्शन शब्द सामान्यत: जीवन दृष्टि के लिए प्रयुक्त होता है। व्यक्ति के हृदय मे जीवन और जगत् के विषय में जो जो जिज्ञासाएं तथा प्रश्न उत्पन्न होते हैं, उन जिज्ञासाओ, प्रश्नो एव रहस्यो का वह अपने व्यक्तिगत विश्लेषण के उपरान्त जो निष्कर्ष प्राप्त करता है, वही उसका जीवन दर्शन है।

आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है? उसका निवास कहां है? सत्य क्या है ? सौन्दर्य क्या है ? जगत् क्या है ? जीव और जगत् का क्या सम्बन्ध है ? इत्यादि प्रश्न प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे प्राय: उठते रहते हैं, इस पर वह मनन करता है, चिन्तन करता है एवं ऐसे प्रश्नो का वास्तविक हल ढूंढने का प्रयास करता है और जटिल प्रश्नो का समाधान भी मनुष्य अपनी बुद्धि से कर लेता है।

अत: युक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के दृष्टिकोण को हम दार्शनिक दृष्टिकोण कह सकते है। अब हम देखेंगे कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के जीव, जगत् और ईश्वर के प्रति क्या विचार रहे है और उनकी दृष्टि मे इनकी क्या धारणा रही है ?

मूल शक्ति

दार्शनिक दृष्टिकोण से शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों मे से

---

१ अध्यात्मज्ञान नित्यत्व तत्त्वज्ञानार्थं दर्शनम्। —गीता—१३/११

अधिकांश कवियों ने ईश्वर को ही मूल शक्ति माना है। उनका मत है कि जो कुछ है, ईश्वर है। वही जगत् को चलाने वाला है। वही सृष्टि का निर्माता है और उसी के अन्तर्गत विश्व के सारे कार्य-कलाप चलते है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने ईश्वर को ही सर्व शक्तिमान, सर्वेश्वर, सर्वात्मा, सर्वकार्योत्पादक, सर्वाधार, सर्वफलप्रदाता आदि माना है। इस सृष्टि का सृजनहार एवं सहार करने वाला भी केवल-मात्र ईश्वर को माना है। उदाहरणार्थ–

तीन तिरलोकी नाथ तूं ही
तूं ही है चारों धाम
तूं ही ईश तूं ही जगदीसा
तूं ही है कृष्ण अरु राम
वाय पकड मोय पार उतारो
आप ऊभारो जैसे गज घनश्याम
मैं आधीन आपरे शरणे चिन्ता मेटो तमाम ।[1]

अर्थात् तीन लोक का स्वामी हे प्रभु, तूं ही है, आप ही चारो धाम हो। आप ही ईश्वर, आप ही जगदीश, कृष्ण, राम सब कुछ आप ही हो। मेरी चिन्ता भी आप ही मिटाओ और मुझे भव-सागर से पार करो। तात्पर्य यह कि उस परमात्मा को ही सब कुछ माना है।

इन कवियों ने ईश्वर को ही सगुण लीलाधारी ब्रह्म माना है, जो अप्राकृत बैकुण्ठ मे रहता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने ईश्वर को लीलाधारी कहा है और उसे ही सर्वशक्तिमान माना है। उदाहरणार्थ श्रीराम को ही सव कुछ मानते हुए कवि मंछ कहते हैं–

जग में राम तुहाले जोडे
हुवो न कोई फेर हुवै ।[2]
श्री निधआगमसारं बारिजनयणं च ज्यानकीवल्लभं
अखिल जगत आधार, सारंगधारण जयो अवधेस ।।[3]

---

१ ह० लि० पु०, भजन स० ३४, पृ० स० ३ (कवि हरिनारायण पुरोहित)
२ रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० स० १९।
३ वही, पृ० स० १।

इन कवियों ने ईश्वर को ही पूर्णब्रह्म माना है। उसी मे अनन्त तेज, ओज एवं सौन्दर्य भरा हुआ है।

वे ईश्वर को ही सर्वसामर्थ्यशाली मानते हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के विचारो से ईश्वर जड को भी चेतन करने की सामर्थ्य रखता है। वह कभी किसी का अहित नही करता। वह सत्यं, शिव एवं सुन्दरम् की साकार प्रतिमा है। वह अन्तर्यामी भी है। इसलिए सबके हृदय की बात जानता है। ईश्वर की इच्छा से ही जगत् के सारे कार्य होते हैं और उसकी इच्छा सदैव श्रेय एव कल्याण से भरी हुई है। अतः शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की दृष्टि मे परमात्मा ही साकार है। वही जीव को भवसागर से पार उतारने वाला है। वही इस भूमि का भार उतारने के लिए अवतार लेता है। जगत् को चलाने वाला वही है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

तज सीला सराप भई नारी।[1]
नाम हेक नर राम रै किता कटै जगजाल।[2]
भगत उभारन दुष्ट संघारन धारण कर तलवार
भूमी भार उतारन कारण लियो सगत अवतार।[3]

सारांश यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने ईश्वर को ही सर्वज्ञ सर्वव्यापी, सर्वफलदायक, सर्वेसर्वा माना है। उसी को मूल शक्ति माना है। कवि तेज कृत एक रचना से उदाहरण प्रस्तुत है।

गुरु तुही चेला तुहो तुही करता, तुही हरता
अकेला है न भेला है, चराचर मे न्यारा तु।
तुही देखे दिखाता है खिलाता है न खाता है
सुलाता है न सोता है रूप रख ले तुम्हारा तूं॥[4]
निराकार आकार वही कार
जग रही है जोति।[5]

---

१ ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित) भजन सं० २२।
२ रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० स० ३५।
३ ह० लि० प्र० (हरिनारायण), पद स ७।
४ कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० २४–२५
५ कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० ३०।

जीव और जगत्

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की दृष्टि में जीव जगत् का भोक्ता है। उनके विचारों के अनुसार जीव और जगत् को परमात्मा का अंश माना गया है क्योंकि उनके विचारो से जगत् की निरन्तर एवं सतत गति को कोई नही जानता। यदि कोई जानता भी है, तो वह एक-मात्र ईश्वर है।

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

"ईश्वर अस जगत् अविनासी।[१]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि हरिनारायण पुरोहित ने भी अपने को परमात्मा का पुत्र बतलाया है, उदाहरणार्थ—

मैं हूं पुतर परिवार तुम्हारो
तूं है मात हमारी।[२]

कवि तेज ने जीव और आत्मा के भेद को मिटाकर ज्ञान की ज्योति जलाने हेतु ईश्वर से विनती की है। तभी तो कवि कहता है-

जीव आतमा झगड़ा मन का
भरमना भाव भगाय दे
भव जल गहरा, घोर अंधेरा
दीपक ग्यान जगाय दे।[३]

इतना ही नही, शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि तेज ने तो जीव की परतन्त्रता एवं अज्ञेयता की ओर स्पष्ट सकेत करते हुए लिखा है कि जीव जीवन और मृत्यु के चक्कर मे पडा रहता है। वह अमर होकर भी मृत्यु के हाथ मे रहता है और मुक्त होकर भी काल के सर्वथा अधीन है-

इन सास तणा विसवास आस मत राखो
कर सौदा सत का जरा झूठ आखो॥[४]

---

१ रामचरितमानस–उत्तरकाड दोहा ११६।
२ ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण) पद सं० ६।
३ तेजकवि कृत गायन, पृ० स० २६।
४ तेजकवि कृत गायन, पृ० सं० ३२।

इण भव कोकरीयो काम अगाड़ी आवे ।[1]

इन कवियो ने जगत् को सत्य माना तथा उसे ईश्वर का अचित अश कहा है। इतना ही नही, उन्होने कहा कि जगत् ईश्वर का शरीर भी है और उसका लीलाधाम भी वही है क्योकि वह जगत् के पदार्थो के रूप मे है। ईश्वर यहां नाना प्रकार की क्रीडा करने के लिए आता रहता है।

जग जहान मे जीव वसे जितरा
जिनका वही प्रभु पेट भरे।
वही राम रमे सवरे तन मे
सत ज्ञान बिना नही ग्यांन पड़े
धर ध्यान हिये रघुनन्द को
कट-बंधन सारा काज करे
तज काम किरोध कपट सव सूं
सुदभाव दया दिल जाय पड़े।[2]
सगत तणा गुणसार, आगा लग आषीस अनंत
पावै कोई न पार, वडे प्रवाड़े वीस हथ ।[3]

जगत् की इस निरंतर एवं सतत गति को कोई नही जानता। सिवाय भगवान् के और कोई नही जानता कि यहां प्रच्छन्न रूप से न जाने कव क्या होता रहता है। इसको जानना अति-कठिन है क्योंकि इस जगत् के सभी कार्य ईश्वर के ईशारे पर हुआ करते हैं। वही इसका नियन्ता है, वही आत्मा के समान इस शरीर रूपी जगत् मे समाया हुआ है और नाना प्रकार के व्यापार करता है। इसीलिए कवि तेज कहता है—

ये मेला जगत का खेला में
आखिर तूं अकेला है
भजन कर शाम नटवर का
सुधारा जनम का जो चावै

१ वही, पृ० ३२।
२ कवि हरिनारायण, पृ० सं० ४४।
३ मावाजी रो छंद (कवि बीका) पृ० १०

न खूटै जगत में न खरचे
न जल जाने मे मेला है—
नाम है साच साहिब का
गरीबो पे निवाज है वो
कहे कवि तेज जाणेगा वही
उसी का साफ गेला है।[1]
मिलै वह मूल माया रो उपायो जगत जिणने
वही कवि तेज जस गायो सरण ही वो दियो जिणने।[2]

अतएव शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के विचारों के अनुसार जीव और ईश्वर की अभिन्नता के सामन ही ईश्वर और जगत् भी अभिन्न है। फिर भी चित्त अचित् विशिष्ट गुणों वाला है। इस धारणा का उल्लेख शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ में मिलता है।

ईश्वर का अभिन्न होकर भी जगत से विशिष्टता अथवा अलौकिकता का निरूपण इस तरह किया है–

जपै समुझ नित जाप सागर भव तिरबो सहल
जल तिरिया पाहण सुजड़ पतसिय नाम प्रताप।[3]

कवि हरिनारायण तो सांसारिकता के मोह से दूर ही रहना चाहता है। इस भवसागर से वह मुक्ति चाहता है। कवि की इस आकांक्षा की अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे हुई है—

औ संसार जार को पिंजरो ममता में पच पच हारो
भवसागर मे भटकत भटकत खोवे खलक जमारो
'हरि' शरणे प्रभु तेरी आयो तेरो ही गुण गावे
भगती मुगती मिलै तो प्रभुजी भव से पार हो जावे।[4]

---

१ तेज कवि कृत गायन पृ० २२।
२ वही.........................पृ० २२।
३ रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मछ), पृ० सं० २।
४ ह० लि० ग्र०–कवि हरिनारायण पुरोहित, पृ० स० १४।

जगत् की इसी गति को देखकर कुछ संत महात्मा तो यही मानते हैं कि जगत् में केवल दु:ख ही दु:ख है, यहां सुख नही हैं, क्योकि सर्वत्र दु:ख, भय, शोक, आपदा आदि की सुचनायें अधिक सुनाई पड़ती हैं जबकि सुख, आनन्द, उल्लास आदि के स्वर कम गूंजते हुए प्रतीत होते हैं। प्रायः यहां पर प्राणी सांसारिक दु:खो से अधिक त्रस्त दिखाई देते हैं। परन्तु इस संसारधाम को ब्रह्मा ने स्वय ही बनाया है, जिसमे दुःख अधिक है। ससार में रहने वाले प्राणी-मात्र के लिए दुःख से मुक्त होने का एक मात्र उपाय भगवद्भक्ति है। उसी से यह दु:खमय जगत् सुखमय बन सकता है और प्राणी भयजनित सन्तापो से छूटकर आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। कवि नथमल के शब्दो मे—

ले शरण प्रभु चरण की
तज दूर विषय विकार
जावेंगे अघ ओघ मिट जाय
कट जाय कष्ट अधार।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की धारणा यही रही है कि जीव हमेशा जगत् के माया जाल में फंसा रहता है और मोह, लोभ, मद इत्यादि का जाल उसे अहंकार के आडम्बर से बाहर नही निकलने देता। यदि जीव जगत् में ऐसी अविद्या के रूप को छोड़कर भगवद् भजन करे तो निश्चय ही उसे सुख और सतोष मिल सकता है।

कर्म-विधान

दार्शनिक दृष्टिकोण से कर्म का बडा महत्व है। वेदों मे अनेक प्रकार के कर्मो की चर्चा हुई है। हमे किन किन कर्मों का पालन तथा किन किन कर्मो का परित्याग करना चाहिए, वे सभी भारतीय दर्शन मे स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार कर्म भी विभिन्न प्रकार के हैं, जैसे नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्य कर्म, निषिद्ध कर्म, प्रायश्चित्त कर्म आदि। अब हमें देखना

१ नथमल भजनावली, पृ० सं० ६।

यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों के विचारों मे कर्म के प्रति क्या धारणा रही है।

शुभ कर्म करने हेतु शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि नथमल कहते हैं

न्याव करम शुभ करके
धरम पर रह अटल नर तूं
पेट खातिर मत करे अकरम
जरा तन राख अकल नर तूं ।[1]
खोटे करम कमाई मतकर, मत बांध पाप रो ढेलो
करणा है तो शुभ कृत करले, जग चार दिनो का मेलो
खाया नही किया परमारथ, जोड किया धन भेलो
चलसी पाप पुण्य दो सग मे, जाणो पडसी अकेलो ।[2]
करम लाता है कर्म ले जाता है वही बस काम आता है।[3]

गीता का मुख्य उपदेश भी कर्मयोग कहा जा सकता है। गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्त्तव्यविमूढ अर्जुन को कर्म के विषय मे जागृत कराने के उद्देश्य से की गई है। यही कारण है कि गीता मे श्री कृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। अतः गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गीता मे निष्काम कर्म को ही प्रधानता दी गई है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की भी यही विचारधारा रही कि निष्काम कर्म ही हमारे लिये शुभ मार्ग प्रशस्त करता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि तेज के शब्दों मे—

माया घडी पलक मे बीते
काया कनक वीरथा मत खोय
पुरुष जग मे दो हेलो
परमारथ तन मन धन कीजे
स्वारथ मे चित्त भूल न दीजे

---

१ नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० स० ८।
२ वही, पृ० स० १७।
३ कवि देवीचद कृत, ह० लि० पो० पृ० सं० ५५।

करै तो चोखो करम ही कीजे ।[1]

कवि नथमल के शब्दो मे कर्म निष्काम करना ही श्रेष्ठ है क्योकि यह जगत् माया का जाल है और कोई काम नही आने वाला है ।

जग तो भरम रो जाल मांन तू भाई रे
करै करम निसकाम तिरैला वो ही रे ।[2]

कर्म का अर्थ आचरण है । उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है । ईश्वर स्वयं कर्मठ है, इसलिए ईश्वर तक पहुंचने के लिये कर्म मार्ग अत्यन्त ही आवश्यक है । शुभ कर्म वह है जो ईश्वर की एकता का ज्ञान दे । अशुभ कर्म वह है जिसका आधार अवास्तविक वस्तु है । वैदिक कर्म के अनुसार मानव वैदिक कर्मो के द्वारा अपने आचरण को शुद्ध कर सकता है । उपनिषद् मे भी कर्म को सत्य-प्राप्ति मे सहायक कहा गया है । तभी तो शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि तेज कहता है—

पोय पल पल मे मोती रे
कुकरमो को मिटा प्यारे ।[3]

कवि परसराम के शब्दो में—

जगिया झूठी जाण जो, विद सो करो विचार
अपनी सोजो आतमा, सपना ज्यूं संसार
सपना ज्यूं संसार, पांणी ज्यू पतासा
रहै भिन्न रो रूप, रीत है एक तमाशा
रैणो के परसराम, तकै मत चूकै टांणो
कर समरे करतार, जगा जग झूठा जाणो ।[4]

---

१ कवि तेज कृत गायन, पृ० स० २५ ।

२ नथमल भजनावली, पृ० स० १४ ।

३ कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० २४ ।

४ ह० लि० कुंडलिया (कवि परसराम), कु० स० २५ ।

पर उपकार पेणो, तटै नी लीजे टाला
नीत चहीजे नितनेम, मूरख ना फेरी माला[1]

गीता की अनमोल देन ही निष्काम कर्म की शिक्षा है। लोकमान्य तिलक के अनुसार गीता का मुख्य उपदेश 'कर्मयोग' ही है। प्रो० हरियाना के शब्दो मे गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म मे त्याग का उपदेश देती है।[2] डॉ० राधाकृष्णन ने भी कर्म योग को गीता का मौलिक उपदेश कहा है।[3]

कवि हरिनारायण पुरोहित भी परमात्मा के भक्त थे। वे भी कर्म मे विश्वास रखते थे, तभी तो उन्होंने एक पद में अपने विचार व्यक्त किए—

सुभ कर्म कियो जव मनुज भयो
मद माया मे सवको भूल रह्यो
चित चेत परो, सुभ काज करो
जम द्वार चौरासी का फेरा टरे
तज काम क्रोध कपट तन सुं
सुध भाव दया दिल माय धरे
वन भोजक विप्र हरी भजियों
भगवान् तेरो दु.ख पाप हरै।[4]

कवि कहता है कि शुभ कर्म किया था तभी तो मानव जन्म

---

१ ह० लि० प्र० कवित्त स ४ (कवि रुगनाथ)।

2 "In other words Gita teaching Stands not for renunciation of action but for renunciation in action"-Outlines of Indian Philosophy-P-12

3 "The whole Setting of Gita Points out that it is an exhoration to action"--Indian Philosophy-(VOI I) P-504

४ ह० लि० भजनावली पृ० सं० ४४

मिला। अब तूं हे मन मद-माया मे फंसकर परमपिता परमेश्वर को भूल रहा है। यह महान् गलत कार्य कर रहा है। इसलिये हे चित्त, चेत और शुभ कर्म कर, जिससे कि यम भी तुझे दुख न दे सके।

कवि कहता है कि काम, क्रोध, कपट आदि मन से निकाल दे और औरों के प्रति दिल में शुद्ध भाव धार ताकि भगवान् तेरे सभी दु.खो को हर लेगा।

कवि स्पष्ट रूप से यही कहना चाहता है कि शुभ कर्म करने से सारी विपदाए दूर हो जाती है।

कविवर तेज ने भी कर्म के वारे मे स्पष्ट सकेत दिया है—

समर घट शाम को मनवा
नफा इसमे कमावेगा ।। टेक ।।
न तेरा कौन तुं किसका पिता नही भ्राता
सुतासुत नार जग नाता, अकेला अत जावेगा ।।
न आता है संगाती हो न जाता साथ में तेरे
करम लाता ले जाता है
करम पद को पुगावेगा।
करे जो करम सुकरत का,
धरे पग को सुमारग मे,
लिया होसी अगारी में,
दिया सव काम आवेगा।[1]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि देवीचन्द की भी मान्यता यही है कि शुभ कर्म न किया तो वह व्यक्ति नरक का भोगी होगा। उदाहरण

जीया पलक नही तोहे खवर सवर कर प्राणी
गफलत मन तेरा घसर पसर की घांणी
ते जोया है धन-माल खयाल नही तन का
मोह-माया फस गये मेल मिला नही मन का
पैइसा सु करत नांह कीया दान धरम पुन का।[2]

---

१ तेज कवि कृत गायन, पृ० स० २४।
२ ह० लि० प्र० कवि देवचन्द पृ० ५७।

कवि लिखता है कि शुभ कर्म दान, धर्म, यदि नही किए हैं तो नरक में जाओगे ।

संक्षेप मे हम यही कह सकते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि कर्म को प्रधान मानते थे और उनका यही विचार था । कर्म सत्य की प्राप्ति के लिये किया जाय तो सर्वश्रेष्ठ है । वह कर्म जो असत्य तथा अधर्म की प्राप्ति के लिये किया जाता है, सफल कर्म नही कहा जा सकता है ।

कर्म को अन्धविश्वास और अज्ञानवश नहीं करना चाहिए । कर्म को इसके विपरीत ज्ञान और विश्वास के साथ करना चाहिए । कर्म से विमुख होना महान् मूर्खता है । इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को निष्काम कर्म ही करना चाहिए ।

भोग-विधान (स्वर्ग और नरक)

मीमांसा के अनुसार विश्व की सृष्टि ऐसी है कि कर्म करने वाला उसके फल से वंचित नहीं रह सकता । वैदिक कर्म करने से उनके फलस्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति होती है अन्यथा कुकर्म करने से नरक की ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की भी यही मान्यता है कि ससार में आकर भी यदि कोई व्यक्ति दुष्कर्म करता है तो उसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है । वह कितने समय के लिये मिलता है, यह कोई नही जानता । मेरी भी यही मान्यता है कि यदि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्राणी की आत्मा को ठेस पहुंचाता है या किसी भी प्रकार से दु:ख देता है तो निश्चय ही उसे नरक मिलेगा, चाहे वह कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, उसे स्वर्ग तो स्वप्न मे भी नहीं मिल सकता ।

संसार में यदि मनुष्य ने जन्म लिया है तो उसे शुभ कर्म ही करने चाहिए । इसी से भगवद् प्राप्ति हो सकती है अन्यथा मेरी समझ में तो भगवद् प्राप्ति तो बहुत दूर की बात है, भगवान् का स्मरण तक भी दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति को स्वप्न में भी नही हो सकता । दुष्कर्मों के फलस्वरूप व्यक्ति को अध्यात्म-मार्ग भूलकर

कुमार्ग की ओर भटकना पडता है ।

मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि यदि संसार की असारता, अज्ञानता, अवोधता, अपूर्णता आदि की सीमा से दूर होना है तो निश्चित होकर संसार मे रहते हुए भी परमपिता परमेश्वर के चरणो मे चित्त लगा दो, जिससे निश्चय ही कल्याण सम्भव है।

यदि हम भारतीय दर्शन अथवा पाश्चात्य दर्शन किसी की ओर भी नजर डालें तो स्पष्ट मालूम पड़ता है कि क्रोध के अविवेक अर्थात् मूढभाव उत्पन्न होता है एवं अविवेक से स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है । स्मृति के भ्रमित हो जाने से वुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और वुद्धि के नाश हो जाने से पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाते हैं ।[1]

शाकद्वीपीय व्राह्मण भी नरक और स्वर्ग के वारे में पूर्ण जानकारी रखते थे और इसके वारे में चिन्तन करते थे। तभी तो कई कवियों ने इस संसार को झूठा वतलाया और कहा कि प्रभु ही भवसागर से बेड़ा पार लगा सकते हैं । उदाहरणार्थ—

ये झूठा है संसार जार जग सपन समाना ए
झूठी काया झूठी माया झूठा जग में जाल फैलाया ।[2]
तज काम किरोध नरक से पार तूं उतर ले
वने भोजक विप्र हरी भजिये तूं सुमर ले ।[3]

कवि नथमल के शब्दों मे प्रभु की माया का कोई पार नहीं है । नरक से बेड़ा केवल वही पार कर सकता है, अतः उसी का ध्यान करो—

सुर न पार न पावे हरी की गति का,
वश क्या वतावे जो नर मूढ मति का ।
'नथमल' वरो धीयान निरभे उसी का,
करैं बेड़ा पार वही शरण गति का ।[4]

---

१ गीता अध्याय, २।६३ ।
२ ह० लि० प्र०, पृ० सं० ४४, पद सं० १९ (कवि हरिनारायण पुरोहित)
३ वही, पद स० १९ ।
४ नथमल भजनावली, पृ० स० ४ (कवि नथमल)

भोग–विज्ञान के बारे में कवि तेज के विचार भी अवलोकनीय हैं। कवि कहता है कि संसार छोड़कर जाने मे एक पल भी नहीं लगेगा और तुम्हारे माल खजाने सब यही पड़े रह जायेंगे। उदाहरणार्थ—

अरूली ख्वाजु सुख दुख साथ भोगता देखे,
पल लागे जगत ना तजियां तनकर चावो
सुख देत गरीवां होत दान फल दूनां
घर गुणत खाय सो जाय महल कर सूनां
सब मात तात कुल भाई सुत सुत वैनां
पत्नी पति के पिय मीत चले नां
इण भव को करियो काम अगाड़ी आवे
नर पड़े रहेंगे माल खजाना तेरा
जब काल करेगा आन सिर पर डेरा।[१]

फिर—

आकर काल अचानक घेरा
भूल गया कहना धन मेरा
त्राश मिली जमराज की
तब सब भई तुमार
याद करे कृत आगला
नरकां पड्यो गंवार।
नरकां पड्यो गंवार रोर बार वार पछतात
कितैक लमडा आप सेठिया
कितैक वाज कहाता है
खोप रहे धन लालच में
कुचाल करे नरक सो जाता है।[२]

मोक्ष का स्वरूप

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने अधिकतर ईश्वर से सम्बन्ध रखने वाली रचनाओं पर अधिक बल दिया है। कोई समय था जब

---

१ तेज कवि कृत गायन, पृ० सं० ३२।
२ वही, पृ० सं० ४१।

मीमांसकों ने स्वर्ग को जीवन का चरम लक्ष्य माना था। परन्तु मीमांसा दर्शन के साथ ही वाद के समर्थको ने अन्यान्य भारतीय दर्शनो की तरह मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य वताया है।

हमारे आलोच्य कवियों में से अधिकांश ने मोक्ष के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। उन्होने मोक्ष के स्वरूप और साधनों पर भी विचार प्रतिपादित किए हैं।

इन कवियों के अनुसार आत्मा स्वभावतः अचेतन है। आत्मा में चेतना का संचार तभी होता है जब आत्मा का सयोग शरीर, इंद्रिय, मन आदि से होता है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा का संपर्क शरीर, इन्द्रिय आदि से टूट जाता है। इसका फल यह होता है कि मोक्ष की अवस्था मे आत्मा के धर्म और अधर्म के कारण ही आत्मा को विभिन्न शरीरों मे जन्म लेना पड़ता है। जब धर्म और अधर्म का क्षय हो जाता है तो आत्मा का सम्पर्क शरीर से हमेशा के लिये छूट जाता है।

मोक्ष के हेतु कवि केवलराम कहते हैं—

केवलराम राम भजतों ही
जनम मरण भय छूटै।[1]

मोक्ष दुःख के अभाव की अवस्था है। मोक्षावस्था में सांसारिक दुःखो का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के मतानुसार मोक्ष आनन्द की अवस्था नही है। उनका कथन है कि यदि मोक्ष को आनन्द रूप माना जाया तो वह स्वर्ग के तुल्य होगा तथा नश्वर होगा। मोक्ष नित्य है क्योंकि वह अभाव रूप है। अतः मोक्ष को आनन्ददायक अवस्था कहना भ्रामक है। इसके अनुसार मोक्ष आत्मा के ज्ञान, सुख, दुःख से शून्य की अवस्था है।

वो ही पावे मुगति जगत सूं
जाके जागे जिगमिग जोत अपारा।[2]

---

१ रामलीला, पृ० सं० ५६, श्री केवलराम।
२ ह० लि० प्र०, पृ० १३ कवि हरिनारायण पुरोहित।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान और कर्म से ही सम्भव है। काम्य और निषिद्ध कर्मों को न करने तथा नित्य कर्मों के अनुष्ठान एवं आत्मज्ञान को मोक्ष का उपाय कहा है। आत्म-ज्ञान मोक्ष के लिये आवश्यक है, क्योकि आत्म-ज्ञान ही धर्माधर्म के सचय को रोक सकता है तथा शरीर के आत्यन्तिक उच्छेद का कारण हो जाता है।

अतः मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञान और कर्म दोनों आवश्यक है।

कवि नथमल के शब्दों में—खोया हुआ समय फिर नही मिलता। राम नाम का स्मरण कर ले ताकि भवसागर से पार करके सुखमय स्वराज्य करेगा अर्थात् तुझे हे प्राणी मोक्ष मिल जाएगा—

खोया समय न मिलता
भज राम नाम नथमल
भवसिन्धु पार करले
सुख रो सब राज कर तूं।[1]

तभी तो कवि मछ कहते हैं कि रात और दिन घड़ियाल यह पुकार रहे है कि यह मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियो के पश्चात् प्राप्त हुआ है। उसे व्यर्थ मे ही व्यतीत मत कर, गौर से देख, यह संसार झूठा यो ही जा रहा है। जो मनुष्य यहा से चले गये हैं उनकी खोज खवर मालूम करने पर भी नही मिलती है। हे चतुर मन, अब भी चेत, और श्री रामचद्र भगवान् का भजन कर और उन करुणानिधान से प्रीति कर जिससे सहज ही मे आवागमन छूट जावेगी। अत. मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। यहां आवागमन छुटने का स्पष्ट अर्थ यही है कि पुनः जन्म नही लेना पड़ेगा और ससार चक्र से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति होगी। उदाहरणार्थ—

रात दिवस इण रीत, प्रगट घड़ियाल पुकारै।
मिलियो मिनखा जनम, लाख चवरासी लारै॥
खाली तिको न खोय, जोय बहतो जग जालम।

---

१ नथमल भजनावली, पृ० स० १० (कवि नथमल)

षडिया त्यांरी खवर, मिलै नहं कीधी मालम ।।
चेत रे अजूं मनड़ा चतुर, रट रट श्री सीतारमण ।
करुणा निधान सूं गह ज कर, गमैं सहज आवागमन ।।[1]

फिर—

छुवै तुव चरण परवाह अवनी छिलै
दुख हवरण सरत जग मोख दे ।[2]

कवि देवीचन्द के शव्दो मे—

सुख माल जंजाल संसार सवै
भवसागर देवी खताल भर्यौ है
खलभल वात होवत वोहत दुःखो
नर देह धरी सम जोत नही
पढ़ो वेद पुराण है वात पकी
मुगति भगति जो वीदता रे गनकी
भगवान भजो देवीचंद भनै ।[3]

---

१ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० ४३ (कवि मंछ)
२ वही, पृ० सं० २६० ।
३ ह० लि० ग्रं० पृ० सं० १५७ कवि देवीचन्दं ।

अध्याय : ६

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की भक्ति-भावन

भक्ति

"भक्ति" पद संस्कृत के 'भज्' धातु में 'क्ति' प्रत्यय के
से बना है। प्रत्यय का अर्थ प्रेम से और धातु का अर्थ है
करना। सामान्य नियम यह है कि धातु और प्रत्यय के योग
एक सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है और उस अर्थ मे प्रत्यय
अर्थ ही प्रधान रहता है। अतः भक्ति का अर्थ हुआ सेवा कर
सेवा शारीरिक क्रिया है। सच्ची सेवा में प्रेम का भाव निहित र
है और बिना प्रेम-भाव के सेवा कार्य क्लेशप्रद हो जाता है
स्पृहणीय भी नही रहता। प्रेम की पूर्णता सेवाभाव में ही
नारदीय पचरात्र के अनुसार सम्पूर्ण इन्द्रियों को माया के बन्धन
सर्वथा मुक्त करके अनन्यमनसा परमात्मा का आराधन करना
भक्ति है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य दोनों ही साह
आनन्द का उपभोग करने के लिये चिन्मयेन्द्रिय विशिष्ट होते
भक्ति की पूर्णता के लिये यह आवश्यक नही कि किसी प्रका
विधि-विधान का अनुष्ठान किया जाय। भक्ति-मार्ग में तो भग
के नाम और गुणो का श्रवण और संकीर्तन ही एक मात्र क
बताया गया है। भक्ति तो स्पष्टतः अतीन्द्रिय व्यापार है।
के शाश्वत साहचर्य मे रहना ही भक्ति है।

भक्ति के विषय में धारणाएं

शाण्डिल्यसूत्र में ईश्वर के प्रति परानुरक्ति को ही भक्ति कहा गया है। अनुरक्ति और अनुराग पर्याय हैं अतः "परानुरक्तिरीश्वरे" इस सूत्र का अर्थ हुआ कि आराध्य के प्रति अनन्य अनुराग ही भक्ति है।

श्री रूपगोस्वामी ने अपने "भक्तिरसामृतसिन्धु" मे भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है-आंध्यात्मज्ञान की अभिलाषा न रखते हुए कर्म अथवा वैराग्य का भी मोह न रखते हुए और अपने किसी स्वार्थ की भावना को भी स्थान न देते हुए केवल श्रीकृष्ण की संतुष्टि के लिए उनका प्रेम-भाव से चिन्तन करना ही उत्तम भक्ति है।

ईश्वर के प्रति मनुष्य की स्वतः स्फूर्ति एव स्वाभाविक अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है।

छान्दोग्य उपनिषद् में आया है-स एवं रसानां रसतम. परमः परार्घे। अर्थात् प्रभु भक्ति सवसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस है। यह वह रस है जो अपने माधुर्य से मनरूपी चातक को मतवाला वना देता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् की भक्ति को संसार के संपूर्ण कष्टो को दूर करने वाला[१] तथा समस्त अनुपम सुखों की मूल[२] तथा संसक्ति की मूल समस्त अविद्या एवं माया और मोह का विनाश करने वाली वताया है।[३]

महा कवि सूरदास जी ने भगवान् की भक्ति को माया और मोह का विनासं करने वाली[४] तथा सभी भ्रमों को दूर करने वाली कहा है।[५]

इसी तरह शाकद्वीपीय व्राह्मण कवि मंछ ने उन्ही संतों को

---

१ विनु हरि भजत न जाय कलेसा—रामचरितमानस, उत्तरकाड, ८९।

२ भगति तात अनुपम सुख मूला—रामचरितमानस, अयोध्या कांड १६।

३. भगतिकरत विनु जतन प्रयासा, संतत मूल अविद्या नासा, उत्तरकांड ११९।

४. हरि माया सव जग सतापे, ताको माया मोह न व्यापै, सूरसागर १३३।

५ जव भगत भगवंत चीन्हे भरम मन ते जाय। सूरसागर १।७०।

धन्य बतलाया है जो भगवान् की भक्ति को हृदय में धारण करते है[1] उनकी कथा को कानों से सुनते है[2] और भगवान् के दर्शन आंखों से करते हैं।[3] भगवान् को ही गर्व का नाशक[4] और संसार के दुःखों का नाश करने वाला बतलाया है। उदाहरण—

तुम नाम कथा दरसण भगताई ररै सांभलै करै धरंत
रसणा श्रवण लोयणां हिरदै सोई धिन वसुधा में संत ।[5]

हे प्रभु ! वही संत पुरुष पृथ्वी पर धन्य है, जो आपके नाम को जिह्वा से रटते है, आपकी कथा को कानों से सुनते है, आपके दर्शन आंखो से करते है और आपकी भक्ति को हृदय मे धारण करते हैं।

इसी प्रकार कवि तेज ने भी भक्ति करने वालों के बारे में बताया है कि भक्ति करने वाले ही श्रेष्ठ है। [6]

भक्ति का स्वरूप

मानव जीवन का चरम लक्ष्य है श्री भगवान् को पाना। शास्त्रों मे भगवद्प्राप्ति के उपाय स्वरूप कर्म, ज्ञान और भक्ति-विविध योग विस्तार से वर्णित हैं। कोई-कोई अष्टांगयोग को भी स्वतंत्र योग समझते हैं किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने से प्रतीत होता है कि वह कर्मयोग के ही अन्तर्गत है। वस्तुत: कर्मयोग को सारे योगों की भित्ति कह सकते है। भक्ति और ज्ञान दोनो का ही अनुशीलन करने के लिये कर्म की आवश्यकता होती है। स्वयं श्री भगवान् ने कहा है—

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
—गीता ३।५

कर्म किये विना कोई क्षणमात्र भी नही रह सकता तथापि शुद्ध

---

१. रघुनाथरूपक गीता री, पृ०सं० २५० ।

२. वही, पृ० सं० २५० ।

३ वही, पृ० सं० २५० ।

४. वही, पृ० स० २५६ ।

५. रघुनाथरूपक गीतां री, पृ० सं० २५१ ।

६. तेज कवि कृत गायन पृ० सं० १० ।

भक्त और शुद्ध ज्ञानी दोनो ही आसक्तिरहित होकर केवल कर्त्तव्य मान कर कर्म करते हैं। भगवत्प्राप्ति के इन तीनो उपायो में कौनसा श्रेष्ठ है यह विवादास्पद रहा है किन्तु इतना अवश्य है कि भक्ति की महत्ता सभी ने स्वीकार की है। श्री भगवान् गीता मे स्वयं कहते हैं—

क्लेशो धिकतरस्तेपामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

भक्ति की संज्ञा और स्वरूप का निर्णय करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपाश्च।

अर्थात् भगवान् के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही भक्ति तथा भक्ति अमृतस्वरूपा है। भक्ति प्राप्ति होने पर त्रिताप की ज्वाला दूर होती है, मन मे विमल शान्ति का उदय होता है।

भक्ति का फल

भक्ति के फल मे भेद हो जाते हैं, जिसके प्रधान दो कारण हैं। एक, भक्त की अनेकविध कल्पना और दूसरा, इष्टदेव का कृपा-प्रसाद। प्रत्येक मनुष्य की विचार-धारा निराली होती है। प्रत्येक का स्वार्थ तथा कामना भिन्न-भिन्न होती है इसलिये फल में भेद हो जाना आवश्यक है और जहा कामना अलग-अलग होती है, वहां फल भी अलग-अलग। कुछ भी हो पर मेरे अपने विचारो से भक्ति का फल सर्वश्रेष्ठ है। वह हमारे पापो को हरने वाला, मोक्ष देने वाला एवं कष्टो को हरने वाला है। अतएव सबसे अच्छा तो यह है कि परम-पिता परमेश्वर का ध्यान विना किसी फलप्राप्ति की इच्छा किये हुए किया जाय।

भक्ति करने से क्या फल मिलता है, इसके वारे में शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सोवे खाय करै नहै सुकृत
खोवे दीह खलीता
प्रीत करै सिमरें सीतापत

जिकै जमारौ जीता ।[1]
भगत की विपत गमाई
हरि आप बने खुद नाई ।[2]
विडारे विघन भगतों का
सुधारे कारज दुनियां में ।[3]
मिटाया भार भूमि का असुर भय टार साभरिये
कह्या कवि तेज को निरभै प्रभू को भक्त प्यारो है ।[4]

शाकद्वीपी ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य में भक्ति-भावना

भक्ति के द्वारा जीवात्मा अपने किए बुरे कर्मों का फल क्षय कर सकता है । भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं कहा कि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूं। न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है परन्तु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे मे हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूं ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों मे से भी अधिकांश कवियों का झुकाव भक्ति की ओर रहा, अतएव निस्सदेह उनकी काव्य रचनाओं मे उनकी भक्ति-भावना का चित्रण मिलता है ।

(१) नित्य जाप की महिमा

कवि मंछ स्पष्ट करते है कि जो नित्य जाप करते है उनके लिए संसार सागर से पार हो जाना सहज है । रामचन्द्रजी के नाम के प्रताप से जड़ पाषाण भी जल के ऊपर तिर जाता है, फिर चेतन जीव का क्या कहना—

जपै समुझ नित जाप, सागर-भव तिरबो सहल
जळ तिरिया पाहण सुजड़, पतसिय नाम प्रताप ।[5]

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो-(कवि मछ), पृ० स० १६ ।
२. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० ८ ।
३. तेज कवि कृत गायन, पृ० १५ ।
४. वही, पृ० सं० १५ ।
५. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ) पृ० सं० २ ।

ईश महिमा

"वृंद" कहे साहिब समरथ सब बातन में
उनकी कृपा ते ऐसी बात अद्भुत री ।
पंगु गिरि गाह मूक निगम निवाहै क्यो न
पयोनिधि पैर्‌यो चाहै मिसरी की पुतरी ।[१]

(२) भजन का प्रताप

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने भजन के प्रताप को ही सब कुछ माना है । कवि मंछ के शब्दो में—

हाले जिण अगर घूमता हाथी,
ताता गयण झूमता तुरंग ।।
पैदल प्रबल रथा हद पंगी,
चतुरगी अत फौज सुचंग ।।
सिघासण चढणँ नर आसण,
सासण सह माने संसार ।।
खतम खुसी अनखूट खजाना,
निरमळ चंदमुखी ग्रह नार ।।
सुजत आठ दिसां सरसावै,
आठ दिसां खावै अरि ताप ।।
परतष ही दीस रै प्राणी
पिरभू भजण तिणों परताप ।[२]

(३) ईश्वर की महिमा

ईश्वर की महिमा का गुणगान सभी शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने किया है। उदाहरणार्थ—

तारवै-अनेका दया महारांण तस,
गिणां की वडम ग्रंथाण गावै ।।
तो उदक ओयण आंण लागे ताना,
पद जिके निरवांण पावे ।।[३]

---

१. फुटकर साहित्य से—कवि वृन्द ।
२. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० २३ ।
३ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० २६१ ।

तन धन जोबन चार दिवस को
ओस बूंद ज्यां झरणां
केवलराम राम नाम सिया वै
ध्यांन हिया बिच धरणा ।[1]

(४) संसार की नश्वरता

संसार की नश्वरता के बारे में अनेकों शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं मे चित्रण देखने को मिलता है। उनके विचारों में यह ससार झूठा है, झूठी ही काया है, झूठी ही माया है, माता-पिता भाई-बहन, औरत इत्यादि सभी स्वार्थी हैं। यह शरीर हाड मांस का पीजरा है। अगर ससार सागर से पार होना है तो माया, मद, लोभ काम, शोध इत्यादि से हमे दूर रहना चाहिए और इससे छूटने का प्रयास करना चाहिए । संसार नाशवान है अतएव प्रभु का स्मरण करके ही हम भव-सागर से पार हो सकते है । संसार की नश्वरता के बारे मे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ये झूठा है संसार जार जग सपन समाना ए
झूठी काया झूठी माया, झूठा जग में जाल फैलाया
कूड़ कपट तेज भगवत का ध्यांन लगाना ए
हाड़ मांस के पीजर माही बेन वसेरा पंछी आई
तज दे पंछी बास लास मटिया मिल जाणा ए ।।[2]
सत संगत से लाभ घणेरो और जगत को झूठो डेरो ।[3]
संसार सवारथ का साथी
बहन सुता भाई कोई काम नीं आई ।[4]
सब देख जगत की झूठी दुनियादारी ।[5]
मुतलब के संसार काहू ना प्रीत लगाना

---

१. रामलीला—केवलराम पृ० स० २० ।
२. ह० लि० ग्र०—कवि हरिनारायण, पृ० सं० १६ ।
३. ह० लि० ग्रं० कवि हरिनारायण, पृ० सं० ४४ ।
४. तेजकवि कृत गायन, पृ० सं० ४७ ।
५. वही, पृ० सं० ३८ ।

स्वारथ विन कोउ काम न आवे ।[1]

(५) धर्म की महत्ता

धर्म के वारे मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि रुगनाथ एक जगह कहते हैं कि जो व्यक्ति धर्म के प्रति आस्था नही रखता, न ही धीरज रखता है और झगड़ा करता रहता है, अच्छी वातों को विगाडता रहता है, वह व्यक्ति कैसे सुखी हो सकता है क्योकि जव यमराज का डका वजेगा तो जोव आधा ही रहेगा ।

धरम वात ना धीर, राड ही साले मोड़े
जुलुस चीता जाय, वणी वात फिर वग्गड़े
कँवे रुगनाथ हरषे कामू लिखे कवूतरी
उण जगे जीव रहसी अदर, डांग वजी जमदूत री ।[2]

(६) स्वार्थ त्याग की भावना

माया के आडम्वर को शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने मान कर यही कहा कि इसे छोडकर परहित कार्य करो, ताकि इसी से भवसागर से पार उतरोगे अन्यथा डूव जावोगे क्योकि यह ससार झूठा है । उदाहरण—

माया घड़ी पलक में वीते
काया कनक विरथा मत खोय
परमारथ तन मन धन कीजे
सवारथ मे चितड़ो भूल न दीजे ।[3]

माया रा आडम्वर मांहे
वदा केम वंधाणो ।[4]

अपने अपने सव सवारथ के ।[5]

---

१. रामलीला—कवि केवलराम, पृ० स० २० ।
२. ह० लि० प्र० कवित स० ६ (कवि रुगनाथ) ।
३. तेजकवि कृत गायन (कवि तेज), पृ० स० २५ ।
४. रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ) पृ० सं० १६ ।
५. कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० ३६ ।

(७) संसार झूठा है

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने संसार को बिल्कुल झूठा बतलाया है। उनके विचारो से संसार जाल मे फंसकर कोई भी व्यक्ति भवसागर से नही तर सकता। अतएव मोह, माया इत्यादि से जितना दूर रहे उतना ही अच्छा है। कवि परसराम ने तो यहा तक कहा है कि काया और माया तो पर्वत की छाया के समान है और जब काल (मृत्यु) आएगा तो पकड के मारेगा। इसलिए इससे बचने का एक ही उपाय है। वह है, प्रभु-स्मरण। उदाहरण—

काया माया कार मे छाया डूगर समान।[1]

मत जोवन रे मांय मोहिनी माया मांणो
आणे ना हरषो याद, जीव जोखम नी जाणो।[2]

जगिया झूठी जाणजो विद सो, करो बिचार
अपणी सोजो आतमा, सपना ज्यूं संसार
सपना ज्यूं ससार, पाणी ज्यू पतासा
रहै भिन्न रो रूप, रीत एक तमासा
रेणो के परसराम, तके मत चूके टांणो
कर समरे करतार, जगा जग झूठो जांणो।[3]

मुतलब के ससार, काहू ना प्रीत सगाना।[4]

दिलडा, समझ रे सगळो जग दाखे
पछे घणो पिछतासी।[5]

(८) ईश्वर के दिभिन्न रूपों का वर्णन

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों में से अधिकांश कवि परमात्मा के भक्त तो थे किंतु वे केवल अंधे भक्त नही थे। अतएव उनकी

---

१. ह० लि० प्र०—कवि परसराम कुंडलिया, पृ० स० ६।
२. ह० लि० कवित्त (कवि रुगनाथ), पृ० सं० १।
३. ह० लि० प्र० (कवि परसराम), कु० स० २५।
४. रामलीला—कवि केवलराम, पृ० स० २०।
५. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० १६।

रचनाओं में परमपिता परमेश्वर के अनेक रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

माताजी के वारे में

ओउकार अपारं, घरिया गुण ग्यान दीप निज धार
धुं धुंकार पहार, कीयौ उजास तास सिव सगत
करता सिव मडल सिस मथकर, सिव वेराठ सोहज शिव अतर
भांजण घडण तथा झालण मढ वीजे पासे सगत वरावर।[1]

श्री लक्ष्मीनारायणजी के प्रति

दिवस दसमी को रंग भारी,
सोजत मे लक्ष्मीनारायण करते असवारी।[2]

श्री रणछोड़जी के प्रति

हिंडोरे झूले सीरी रणछोड
कहावे वो ही नंदकिसोर।[3]

श्री सूर्यनारायण के प्रति

जै सूरज देवा जै आदित देवा,
सुरनर मुनिजन ध्यावत करत सदा सेवा।[4]

श्री जोगमाया के प्रति

मैं हूं वालक शरण तिहारी मैयाजी राखो लाज हमारी।[5]

श्री सिचयाय माता के प्रति

सहाय करी सिचयाय माय, रखरी शरण रावरी आयो
मारवाड़ मे मंदिर ओसियां, आदु धाम कहायो।[6]

---

१. ह० लि० ग्र० स० १ (कवि बीका) रा० प्रा० वि० प्र० बीकानेर, ग्रंथाक ४४१२।
२. ह० लि० भजनमाला (कवि मगलदास), पृ० सं० २।
३. वही, पृ० स० २४।
४. ह० लि० ग्रथ (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० सं० २।
५. वही, पृ० सं० ४१।
६. वही, पृ० सं० ४।

श्री महादेवजी के प्रति

कवि तेज कहे मुझे उमापति चरण
परस दे भगति रति ।[1]

श्री लक्ष्मीनाथजी के प्रति

श्री लक्ष्मीनाथ सहाई सदाई ।[2]

श्री शनिश्चरजी के प्रति

कहा लौ उपमा कहूँ ए
सनीसर के रूप की जो सुनी वेसी कही ।[3]

श्रीराम के प्रति

राम सुमरले मनवा तूं तो राम सुमरले ए ।[4]
नाम हेक नर ताम रे, किता कटे जगजाळ । [5]

सारांश यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भगवत्तत्त्व, भगवत्प्रेम एवं भगवत्प्राप्ति के पथ का जिस सरल एवं सरस वाणी में वर्णन किया है, वह साहित्य की अनुपम देन माना जा सकता है । वह सम्पूर्ण धर्म एवं भगवत्प्रेमियो के लिये विचारणीय ही नही, अपितु आदर्श एवं ग्राह्य भी है ।

इन कवियों ने भक्ति की महत्ता सर्वोपरि सिद्ध की है और संसार-जाल को झूठा कहा है। माया, काया, लोभ, मद, मोह दम्भ, क्रोध इत्यादि से दूर रहकर भगवान् के स्मरण को ही इन कवियो ने प्रधानता दी है ।

हमारे आलोच्य कवियों ने भक्ति की अपार महिमा भी गाई है । उनकी दृष्टि में तो यह साधन भी है और साध्य भी है । इसी से सम्पूर्ण भवक्लेश नष्ट होते हैं, ईश्वर की प्राप्ति होती है और

---

१. कवि तेज कृत गायन, पृ० स० ३१ ।
२. वही, पृ० स० ४६ ।
३. सनीसरजी की कथा—कवि रीखराम, पृ० स० २४ ।
४. ह० लि० फुटकर भजन—कवि माणकलाल ।
५. रघुनाथरूपक गीता रो—कवि मछ, पृ० स० ३५ ।

यह भक्ति ही परम पुरुपार्थ है । इसी से भगवद् प्रेम की प्राप्ति होती है, पूर्णानन्द मिलता है और जीव का संसार से उद्धार होता है ।

भक्ति के बिना कोई भी साधन सफल नहीं होता, न किसी प्रकार का सुख प्राप्त होता है । अकेली भक्ति ही सब प्रकार के फल देने वाली है और इसी से माया का बन्धन नष्ट होता है ।

सक्षेप मे इन कवियो का तात्पर्य यही है कि भक्ति एक अत्युत्तम मार्ग है और इस मार्ग पर चलकर हम अपनी हर इच्छा के अनुसार भगवान् के सगुण स्वरूप की प्राप्ति कर सकते हैं ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में भक्ति की विशेषताएं

भगवान् के प्रति अविरल विश्वास रखने वाले, अटूट श्रद्धा रखने वाले एव अगाध प्रेम रखने वाले व्यक्ति के हृदय मे इनका दर्शन करने, उनकी वाणी सुनने और उनके निकट सम्पर्क में आने की तीव्र लालसा होती है । इसी प्रवल लालसा का नाम भक्ति है । भक्ति एक ऐसा सरल और अत्युत्तम विषय है, जिसमें शुद्ध–भावना और श्रद्धा के सिवा किसी भी तर्क–वितर्क, अथवा प्रमाण की आवश्यकता नही रहती । जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशमान होकर अपने प्रकाश को प्रकट करने के लिये किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा नही रखता, ठीक उसी प्रकार भक्ति एक ऐसा विपय है, जो स्वयं प्रमाणरूप है, जिसके लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नही होती ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि अधिकांशतः परमात्मा के प्रिय भक्त थे । अतएव उनकी रचनाओं मे भक्ति का स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है । अब हम यह देखेंगे कि इनकी रचनाओं मे कौन कौन सी विशेपताए विद्यमान हैं और इन कवियों ने उसे किस किस तरह अभिव्यक्त किया है ? जो कुछ विशेपताएं इन कवियों की रचनाओं में मिलती हैं, वे निम्नोक्त प्रकार है –

(१) ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि परमपिता परमेश्वर के अनन्य भक्त थे। इसीलिये उन्होने भक्ति सम्वन्धी कवित्त, छप्पय, पद, भजन, गीत, दोहा, सोरठा आदि रचे । इन पदो, स्तुतियों, दोहों, गीतो, छदों

आदि से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये कवि ईश्वर के अनन्य भक्त थे। चाहे कोई राम का प्रिय भक्त रहा हो, अथवा कृष्ण का, चाहे महादेव का रहा हो, चाहे विष्णु का किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रभु के प्रति विश्वास रहा। इसका स्पष्ट कारण यह है कि इन कवियों ने परमात्मा को ही सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, और सर्वत्र रमा हुआ माना है। उदाहरणार्थ—

तीन त्रिलोकी नाथ तूं ही तूं ही चारूं धाम,
तूं ही ईश तूं ही जगदीसा तूं ही कृष्ण अरु राम।[1]
तूं ही दया का कोष दया दानिन के हिवड़े भरणी है
कुण पार पाय सके थारो, शुभ गुण खानी तूं ही तो है।[2]

(२) भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व

भारतीय सन्त कवियो की भांति शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने भी भक्ति को सर्वोपरि माना है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस तरह भगवान् की भक्ति को ससार के सम्पूर्ण कष्टो को दूर करने वाली,[3] समस्त अनुपम सुखो की मूल[4] तथा ससृति की मूल, समस्त अविद्या एवं माया का नाश करने वाली[5] बताया है। सूरदासजी ने जिस तरह भगवान् की भक्ति को माया और मोह का विनाश करने वाली[6] तथा सभी प्रकार के भ्रमों को दूर करने वाली कहा है,[7] उसी तरह शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भी भक्ति को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। उदाहरणार्थ—

भगत वसल भगतिन से उधारे
है पतित तेज कवि शरण तिहारे।[8]

---

१. ह० लि० ग्र (कवि हरिनारायण), पृ० स० १२।
२. नथमल भजनावली, पृ० सं० १६।
३. रा० च० मा० उत्तरकांड ८६।
४. रामचरितमानस–अयोध्याकाड १६।
५. वही, उत्तरकांड, ११६।
६. सूरसागर, १३।३।
७. वही, १।७०।
८. तेज कवि कृत गायन, पृ० स० १०।

(३) इष्टदेव के महत्त्व का गुणगान

प्राय: सभी सगुणोपासक भक्त अपने अपने भगवान् की लीलाओं का श्रवण वडे मनोयोग के साथ करते हैं तथा उनकी भक्तवत्सलता, असीम शक्ति-सम्पन्नता, लोकोद्धार की भावना, अकारण ही भक्तों का हित करने का स्वभाव, शरणागत की रक्षा, दीनबधुता, परोपकार-परायणता, पापियो के उद्धार करने की बात आदि का वर्णन वडी श्रद्धा-भक्ति के साथ किया करते है। भगवान् अत्यन्त कृपालु हैं, असीम शक्ति-सम्पन्न हैं, अनन्त सौन्दर्यशाली है, अनुपम-शील सयुक्त हैं, प्रणतपाल हैं, सुजान-शिरोमणि हैं, पतितपावन है, अत्याचारियो का विनाश करने वाले हैं तथा म्लेच्छ, चाडाल, निंदक, पाखडी, धूर्त, पतित, शापित आदि सभी पर भी करुणा करते हैं, ऐसे परमात्मा को कौन याद नही करता ? मेरे विचारों से प्रत्येक प्राणी करता है।

ठीक इसी प्रकार परमात्मा के गुणो का सभी शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने वर्णन किया और अपने इष्टदेव की महिमा का चित्रण उन्होने अपनी रचनाओ मे किया है। कवि हरिनारायण के शब्दो मे उदाहरण प्रस्तुत है—

उस ईश का राख भरोसा सदा,
जिसकी सव सृष्टि आस करे
जग जहान मे जितरा जीव वसे
सब जीनराव रो परभु पेट भरे।[1]

फिर—

आपका आधार एक क्या गरज औरां की।[2]

(४) नाम स्मरण की महिमा

कई भक्त कवियो ने भगवान् से भी वढकर भगवान् के नाम स्मरण को महत्ता दी है क्योकि भगवान् तो अवतार लेकर थोडे से पापियों का ही उद्धार करते हैं, जवकि उनका नाम अनेक पापियों

१. ह० लि० ग्र० कवि हरिनारायण पुरोहित, पृ० स० १६।
२ ह० लि० प्र० कवि देवीचद, पृ० स० ५५।

का उद्धारक है। इसी कारण करीव करीव प्रत्येक शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि ने ईश्वर के नाम की महिमा का गुणगान किया है। उन्हे विश्वास है कि नाम के स्मरण से जप, तप, तीर्थ आदि का फल अनायास ही मिल जाता है। इससे समस्त विघ्नो का विनाश हो हो जाता है, और प्राणी सभी प्रकार के सुख सौभाग्य को अनायास ही प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि भक्त-शिरोमणि सूरदास ने सभी को हरि नाम के स्मरण करने की सलाह दी है और बताया है कि हरि-नाम के स्मरण करने से सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।[1] इतना नही उनका विश्वास तो यहा तक है कि हरिनाम के स्मरण से जो सुख मिलता है वह जप, तप, कोटिक तीर्थ आदि से भी नही प्राप्त होता और मानव को फिर लौटकर इस ससार में भी नही आना पडता।[2] नाम स्मरण की महिमा के वारे मे राम-रक्षास्तोत्रं मे श्री शिवजी पार्वती से कहते है—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे
सहस्रनाम तत्तुल्य श्रीराम नाम वरानने।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो नामस्मरण को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि वे कलियुग मे केवल नामस्मरण को ही सब कुछ समझते हैं क्योंकि उनका मत है कि मानव को केवल राम नाम ही जपना चाहिए। इस कलियुग मे वैराग्य, योग, यज्ञ, तप, त्याग आदि सव व्यर्थ है, इनसे कोई विशेष लाभ नही होता। यदि लाभ हो सकता है तो केवल प्रभु का प्रेम-पूर्वक स्मरण करने से ही हो सकता है।[3] राम कृपा से मेरी भी यही हार्दिक मान्यता है।

इण कलजुग रे मायने स्वारथ रो सव काम
जो सुख चावे जीव को तो भजले रे मन श्रीराम।

---

१. हरि हरि हरि सुमिरो सव कोई
हरि हरि सुमिरत सव सुख होई। सूरसागर २।५।

२. सूरदास हरि को सुमिरन करि वहुरि न भव जल आवे।
सूरसागर। २।६।

३. विनयपत्रिका, पद ६७—राम नाम जपु जिय सदा अनुराग रे
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे॥

एवं

कांमी, कपटी, कुटिल नर, करे न सुकरत काम
उणने भी मुगति मिलै, जै भज ले श्री राम ।

तात्पर्य यह है कि नाम-स्मरण की महिमा कई शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने गाई है । उदाहरणार्थ—

जपै समझ नित जाप, सागर भव तिरवो सहल
जल तिरिया पाहण सुजड पतसिय नाम प्रताप ।[1]

फिर

सगत तणा गुणसार, आगा लग आषीस अनत,
पावे न कोई पार, वडे प्रवाडे वीसहथ ।[2]

(५) सर्वस्व अर्पण का भाव

महात्मा तुलसीदास ने अपने जानकीजीवन पर सर्वस्व न्यौछावर करते हुए रात-दिन राम-शिव के चरणो में ही पड़ा रहना अच्छा समझा है ।[3] वैष्णवो की षड्विधा शरणागति मे आत्म-निक्षेप अथवा तन, मन और कर्म सब कुछ ॐ तत्सत्परब्रह्मार्पणस्तु करने की प्रथा प्रचलित है । इसीलिए भक्त प्रवर सूरदास-"सब तजि तुव सरनागत आयो, निज कर चरन गहे रे" गाते हुए भगवान् की शरण मे अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं और प्रभु की कृपा से घनेरे सुख प्राप्त करते हुए दिखाई देते है । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे भी सर्वस्व-अर्पण का भाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है । उदाहरणार्थ—

सुत ग्रह केकई, सरसाय, वन विध रिषी अंग वणाय
कीधा वारणै धन काय, मन हर रहै चरणां मांय ।[4]

है घड़ी एक टारी रे ऊर से नांय टरै है
हारे राज कांई जननी जीवन प्राण है

---

१ रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ), पृ० सं० २ ।
२. माताजी रो छद, कवि बीका पृ० स० १७ ।
३. विनयपत्रिका, पद १०४ ।
४. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० १२३ ।

है अपणो जाणी अपनाव जोहे तोरे
राज काई चरण सरण रीखराम है ।[1]
देवन देव वो ही है पदारथ
"केवलराम" राम गहो शरणो ।[2]

(६) शरणागति की महत्ता

जो भी प्राणी भगवान् की शरण में आ जाता है, प्रभु स्वयं ही सांवलिया सेठ वन कर नरसी का सा भात दिया करते हैं। वस्त्रहीन जानकर स्वयं ही द्रौपदी के चीर की भाति वस्त्र बढा देते है। भूखा जानकर भगवान् स्वयं अपने भक्त के लिये भोजन दिया करते हैं और सभी प्रकार के भक्तों की देखभाल किया करते हैं।[3] इसी कारण श्रीराम ने विभीषण को भी शरण दी। इसका चित्रण कवि शाकद्वीपीय ब्राह्मण मंछ ने बड़ी सुन्दरता से किया है—

चिंता भभीषण एम वीचारी, खल ची आई अलग खवारी
हरष सूं ध्यान कर हरि दिस हाकिया
कदमा गयो भगत हितकारी
आपरै चरण री शरण हूं आवियो
आच दियो मस्तक रै ऊपर
सरस मन जाणियो आगमण सीत रो।[4]

फिर

तुम नाम कथा दरसण भगताइ ररै सांभलै करै घरत।[5]
पूरन परम परब्रह्म को भरोसो राख
सुन मुनि साख जिन डोले इत उत री।[6]
"केवलराम" राम शरणा व्है
उतरोगे भव पार।[7]

---

१. ह० लि० प्र०, पृ० स० ६ (कवि रामरख)।
२. रामलीला (कवि केवलराम), पृ० स० १२।
३. विनयपत्रिका, पद ७९।
४. रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ) पृ० स० १७१।
५. वही, पृ० स० २५०।
६. फुटकर साहित्य, कवि वृंद
७. रामलीला, कवि केवलराम, पृ० स० २०।

(७) धर्म की महत्ता

जो मनुष्य अपने आपको धर्म के लिये समर्पित कर देता है, उसकी इस लोक मे तो कीर्ति होती ही है वह मरने पर भी सद्गति को प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वधर्मपालन पर जोर देते हुए गीता मे अर्जुन से कहते है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।। —गीता ३।३५ ।

अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण मे लाये हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म मे तो मरना भी कल्याणकारक है[1] और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है ।[2]

मनुष्य जीवन वडे भाग्य से मिलता है। इसका समय अल्प है । अतः जव तक हाथ मे समय है, तभी तक हम लोगों को चेत जाना चाहिए एव धर्मपालन के लिए कटिवद्ध हो जाना चाहिए। समय वीतने पर पश्चात्ताप करना पड सकता है । भारी से भारी विपत्ति के आने पर भी हमे अपने धर्म का किसी भी हालत मे त्याग नही करना चाहिये । महाभारत मे कहा गया है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।।
—स्वर्गारोहण, ५।६३ ।

अर्थात् "मनुष्य को किसी भी समय काम से, भय से, लोभ से या जीवन-रक्षा के लिये भी कभी धर्म का त्याग नही करना चाहिए, क्योकि धर्म नित्य है और सुख-दु ख अनित्य हैं तथा जीव नित्य है और जीवन का हेतु अनित्य है ।

संसार के सभी सम्वन्ध माने हुए एवं अनित्य है । मनुष्य

---

१ कल्याण, वर्ष ३५, अक ४, पृ० ८३६ ।
२. वही, वर्ष ३५ अक ४, पृ० ८३८–८३६ ।

अकेला ही इस संसार में आता है एवं अकेला ही वापस जाता है। स्त्री, पुरुष, बन्धु, बान्धव आदि में से कोई भी उसका साथ नही देता। एक मात्र धर्म ही उसके साथ जाता है। कहा गया है—

मृतं शरीरं संत्यज्य काष्ठलोष्ट समं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

अर्थात् मनुष्य को किसी भी काल में अपने धर्म का त्याग नही करना चाहिये।[1] मरण संकट भी उपस्थित हो जाय तो भी मनुष्य को चाहिये[2] कि वह हंसते-हसते मृत्यु का वरण करले, परंतु स्वधर्म का किसी भी हालत मे त्याग न करे। उसी में उसका सब प्रकार से कल्याण है।[3] धार्मिक कार्य के कराने के लिए ही भारत की श्रुति-स्मृति, पुराण आदि में व्यवस्था की गई है, और वह धर्म के आगे धन-दौलत, राज्याभेषक सांसारिक अभ्युदय आदि को तुच्छ बताया गया है।[4]

रघुनाथरूपक गीतां रो मे भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि मंछ ने धर्म की महत्ता के वारे में लिखा है और धन दौलत आदि को तुच्छ बताया है—

माता पिता बंधव दौलत मद
सुत त्रिय जोड संध्याणो।[5]

(८) गुरु की महत्ता

गुरु शब्द का निर्माण गु+रु से हुआ है। "गु" से तात्पर्य है अंधकार तथा "रु" से तात्पर्य है अंधकार निवारण करने वाला प्रकाश। शिष्य के हृदय से अज्ञान रूपी अंधकार का निवारण करके उसमें जो ज्ञान का आलोक भर दे, वही व्यक्ति गुरु कहलाने का अधिकारी है।

महात्मा कबीर ने तो गुरु को ईश्वर से भी अधिक बतलाया

---

१. कल्याण, वर्ष ३५, अंक ४, पृ० ३५।
२. वही
३. वही
४. वही
५. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० ६८।

है, क्योंकि भगवान् के विमुख होने पर गुरु ही आश्रयदाता है जबकि गुरु के रूठने पर कही कोई आश्रय नही देता। वैष्णव भक्ति में भी गुरु को ईश्वर रूप ही माना जाता है। कबीर तो गुरु और गोविंद दोनों की एक साथ उपस्थिति मे भी गुरु को ही गोविंद से श्रेष्ठ बताते हैं।[1] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी गुरु को "नर रूप हरि" कह कर गुरु को ईश्वर का स्वरूप सिद्ध किया है और उनके चरणों की वदना की है।

"वदौ गुरु पदकंज कृपासिंधु नर रूप हरि"

हमारे आलोच्य कवियो ने भी गुरु की महत्ता पर बल दिया है। उदाहरणार्थ—

पित गुरां वयण प्रमांण रे, जो करे नाहि अजाण रे।
नर भोगवे नरकारणे, भु जिते अवर जाण रे।[2]

भंवा सूत रीख तार गुरु ताल कको असवार।[3]

(६) नीच तथा शुद्रों के प्रति भी प्रेम

भगवान् की दृष्टि मे सभी भक्त समान हैं। उनको एक ही जाति है। वे सब हरि-जन कहलाते हैं। इसीलिए किसी ने कहा है—

जाति-पाति पूछे नही कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

और इसी कारण से रैदास चमार, नाभादास चांडाल, नामदेव दर्जी, कबीर जुलाहे, रसखान मुसलमान आदि सभी उच्चकोटि के भक्त कहलाये है और भक्तो मे शिरोमणि गिने गये है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भी इसी भावना का निरूपण अपनी रचनाओं में किया है। उदाहरणार्थ—

चाख चाख राखै फल चोखा, तक उर भाव अमाप तिके
उमंगे प्रभु भीलणी आचा, अेठा बोर अरोगे आप

---

१. गुरु गोविंद दोनो खड़े, काके लागू पाय
बलिहारी गुरु देव की गोविंद दिया बताय—कबीर

२ रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० स० १०४।

३. हस्तलिखित ग्रथ देवीचंद, पृ० स० २५।

अंतज जाण करी न अवज्ञा, मन अडोल तप वृध मोह
मुनि राजेस तिकारे मोहे, तिणरो अधिक रखव्यो तोल।[1]

अर्थात् उसने (भीलणी ने) अच्छे अच्छे फल चखकर रखे थे। श्री रामचन्द्र जी ने उसके हृदय का यह अपार भाव देखकर उमंग कर उच्छिप्ट बेर भीलणी के हाथों से खाये। उसे शुद्र समझकर उसकी अवज्ञा नही की। उसका मन अडिग था और वह बडे तपवाली थी। मुनिराजों से भी उसका सम्मान अधिक रखा गया है। इसीलिए भगवान् राम भक्तराज सुग्रीव को जंगल मे निवास करने वाली तुच्छ जाति का जानते हुए भी उसके मिलने पर उसे अपने अंक मे भेंट करते है।[2]

सारांश यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में भक्त कवियों के विचारो मे एकरूपता मिलती है। इन कवियो ने परमपिता परमेश्वर को अज, अनादि निर्गुण एवं निराकार मानते हुए भी भू-भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुआ माना है।

भक्ति के क्षेत्र में सभी कवियो ने अपने अपने विचार प्रतिपादित किए है। इनकी रचनाओ मे भोग और मुक्ति का समन्वय पाया जाता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि प्रत्येक भक्त ने समत्वभाव का चित्रण अपनी रचनाओ मे किया है।

हानि और लाभ, दु.ख और सुख, जय और पराजय ये सभी द्वन्द्व जगत् मे विद्यमान रहते है, परन्तु सच्चा भक्त वही है, जो इन द्वन्द्वो से परे रह कर परमपिता परमेश्वर का स्मरण करता है। यही भाव शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने अपनी रचनाओं मे उतारने का भरपूर प्रयास किया है।

मनुष्य के अच्छे आचार-विचार और व्यवहार से प्रभुशक्ति उत्साहित हो विशेष कार्य करती है तथा कुत्सित व्यवहार से कार्य करना छोड़ देती है। परमात्मा शुद्ध, निर्गुण, परिष्कृत परिमार्जित-स्वरूप हैं। उनमें राजसी और तामसी भावना त्रिकाल मे भी नही

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० १४१।

२. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० १४१।

होती । वे समदर्शी हैं । इसीलिये वे हमारी विरोधी भावनाओं को, जो औरो के लिये हानिकर हों, पूर्ण नही करते ।

इसलिए भक्त को चाहिये कि वह अपनी शुद्ध भावना से तथा पवित्र आचार से अपने स्वामी का कृपापात्र वन जाय और अपनी शुभ कामना की पूर्ति के लिये प्रभु से अथवा उसकी शक्तियो से याचना करे, नही तो केवल परिश्रम ही होगा और भक्ति का यथा-योग्य फल मिलने में भी संशय रह जाएगा । भगवान् उसी पर प्रसन्न होते हैं जो सदाचारी, धर्मात्मा, परहितचिन्तक सरल-हृदय शान्त-स्वभाव, निर्लोभी, क्रोध और ईर्ष्या आदि दोपो से दूर हो और दुर्गुणो से भरा न हो । इस प्रकार की भावनाओ का चित्रण हमारे आलोच्य कवियों की रचनाओ मे देखने को मिलता है और यही कारण है कि इन कवियो ने परमपिता परमेश्वर को ही सर्वस्व माना है और अपना सव कुछ उसी के चरणो में अर्पित करने के भाव अपनी कविताओ मे व्यक्त किए हैं ।

अध्याय : ६

उपासना

उपास्य और उपासना की परिभाषा

"उपासना" संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत के सभी शब्दो को यह गौरव प्राप्त है कि वे प्रकृति-प्रत्यय के सयोग से निष्पन्न होते हुए भी प्रकृति-प्रत्यय के समुदित अर्थ का प्रतिपादन करते है। इस सिद्धान्त के अनुसार उपासना शब्द में उप, आस् और अन-ये तीन अंश है। इनमे उप उपसर्ग, "आस उपेवशने" धातु और भाव अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय है। उपासनम् उपासना अर्थात् शास्त्रविधि के अनुसार उपास्यदेव के प्रति तेलधारा की तरह दीर्घकालपर्यन्त चित्त की एकात्मा को उपासना कहते हैं।

उपासना के समानार्थक शब्द सेवा, वरिवस्या, परिचर्चा, शुश्रूषा, उपासन इत्यादि हैं। उक्त परिभाषा के अनुसार उपासक, उपास्य और उपासना ये तीन वस्तु हमारे सामने आती हैं।

उपासक आराधना करने वाले अर्थात् दीर्घकालपर्यन्त उपास्य के स्वरूप-गुणादि में चित्त-वृत्ति का सतत प्रवाह करने वाले को कहा जाता है।

उपासना और उपास्य के विविध भेद होने के कारण ये कई प्रकार के होते हैं।

इसी प्रकार उपास्यो की उपासना भी विभिन्न प्रकार की होती है। इसलिये उपासक, उपास्य और उपासना के अनेक भेद है।

उदाहरणार्थ—श्रुतिवचनो के अनुसार महेश्वर, रूद्र या शंकर उपास्यदेव कहलाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ससार के सर्ग, स्थिति और प्रलय के कारण है। इसलिये उपास्यदेव ठहरते है।

इसी तरह उपासना भी उपासक अपने उपास्य के अनुसार करता है। जैसे देवताओ की उपासना तक सीमित रहने वाले देवता की,और परमात्मा की उपासना करने वाले परमात्मा की उपासना करते हैं।

उपासना की आवश्यकता

उपासना की आवश्यकता के सम्बन्ध मे पंतजलि योगसूत्र में कह रहे हैं कि स हि क्रियायोग, समाधिभावनार्थं क्लेशतनूकरणार्थंश्च[1] अर्थात् उपासना समाधि को उत्पन्न करती है और क्लेशों को क्षीण करती है। जीवात्मा की परमात्मा के प्रति मन की समतुलना एवं तीव्र योगाभ्यासपूर्वक बुद्धि की एकाग्रता हो जाना ही 'समाधि' है। उपासना के विना काम, मत्सर, स्पृहा, तृष्णा, लोभ, क्रोध, मोह ईर्ष्या, असूया, द्वेषमूलक क्लेश मिथ्याज्ञान (अविद्या) विचिकित्सा, (सशय) मान प्रमाद–नामक द्रोहमूलक क्लेश, दम्भ, दुर्वासना, हिंसा अभिनिवेश (दुराग्रह) अहंता इत्यादि क्लेश कभी कभी जीवात्मा के हृदय से नष्ट नही हो सकते हैं। इन क्लेशो की निवृत्ति और शम, दया, प्रेम, शान्ति विनय आदि दिव्य वृत्ति के साथ साथ दिव्य चैतन्य के साथ सायुज्य की प्राप्ति के लिये उपासना अनिवार्य है।

उपासना के अनुसंधान से जीवात्मा मे अंतकरण. की शुद्धि और परमात्मा के प्रति श्रद्धा, प्रेम एवं विश्वास की वृद्धि होती है। अनेक प्रकार से शरणागत प्राणियो की रक्षा करने वाला, एकमात्र- परमात्मा है। उसी को जीवात्मा अपनी रक्षा का भार समर्पण कर देता है, जिससे वह परमात्मा का कृपा-पात्र वन जाता है।

---

१. कल्याण सं० ३६४, वर्ष २, पृ० ६७।

जीवात्मा में परमात्मा के ज्ञान, आनन्द यौवन, बल, लावण्य, वात्सल्य, सौदर्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, सत्यकामत्व, पराक्रम यश श्री कृतज्ञत्व आदि अनेक कल्याण गुणों का आविर्भाव होता है। जीवात्मा की बुद्धि परमात्मा में भक्तिरूप में परिणित हो जाने के लिये उपासना आवश्यक है।

निष्कामभावपूर्वक जो जीवात्मा परमात्मा की सर्वांगपूर्ण उपसना करता है, उसको भगवत्प्राप्तिरूप "योग अपुनरावृत्तिरूप" क्षेत्र में प्राप्त होता है। अतः इसलिये उपासना परम आवश्यक है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि मंछ कहते है—

गौतम सुता तास सागर
धीरज सुचिता ध्यावै
प्रभु वैमुख जिणारो रिपु प्राणी
ताह न कदे सतावे ।[1]

उपासना में सहायक तत्त्व

उपासना के सहायक तत्व वे है, जिनके योग से उपासना बलवती बनती है। उनमें चार बाते प्रधान हैं।

(१) सात्त्विक आहार
(२) सत्यभाषण
(३) संयम
(४) सत्सग

(१) सात्विक आहार

गृहस्थ के लिये न्यायोपार्जित धन के द्वारा पवित्रता से बना हुआ अभक्ष्य एवं उत्तेजक पदार्थों से रहित परमित भोजन ही सात्त्विक आहार है तथा विरक्त के लिये भिक्षान्न ही अमृततुल्य है। भिक्षा मे प्राप्त वर्जित पदार्थों का परिहार तो उसे भी करना अभीष्ट है।

(२) सत्य भाषण

वाणी द्वारा हित, मित एवं प्रियता से भरा "सत्य" ही सदा बोलना चाहिये।

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० २६।

(३) संयम

इन्द्रियों पर एवं मन पर नियंत्रण रखना ही संयम है। जैसे चर्मपात्र में जरा सा छेद हो जाने पर उसमे भरा हुआ पानी निकल जाता है, वैसे ही इन्द्रियो मे से एक भी इन्द्रिय यदि विषय में चली जाती है तो उसके द्वारा मानव की बुद्धि वह जाती है। अतः आराधक अथवा साधक को नित्य निरंतर मन एवं सभी इन्द्रियो का निरीक्षण करते रहना चाहिये।

(४) सत्संग

उपासना मे चतुर्थ सहायक तत्त्व सत्संग हैं, जो श्रेयस्कर एवं अमोघ है। सत्सग द्वारा साधक को उपासना के विघ्नों का पता चलता है एवं मनोविजय की युक्तियां जानने की तीव्र लालसा जागृत होती है। सतो के द्वारा प्रतिपादित भगवान् के मगलमय मधुरातिमधुर परम पावन चरित्र कर्णकुहर द्वारा अन्तस्तल मे जाकर भावाकुर का उत्पादन करते हैं तथा संतो के सान्निध्य से उनके पवित्र भाव भी श्वास-प्रश्वास द्वारा हृदय मे जाकर वहा शोधन का काम करके प्रेम-वीज का वपन करते है। कथा-उपदेश सुनने को न मिले तो भी उनकी सनिधि अनुपम निधि देने वाली एव लाभप्रद है। अतः सत्सग से भी मूर्ख को ज्ञान मिल जाता है और उसके अज्ञानीचक्षु खुल जाते हैं। सत्सग के लिये सतो का मिलना भी दुर्लभ है। वे भी विना भगवान् की कृपा के नही मिलते।

अव मोहि भाव भरोसो हनुमता, विनु हरि कृपा मिले नही संता।

शाकद्वीपीय व्राह्मण कवि भी इन उपर्युक्त चारो तत्त्वो को समझते थे और यह मानते थे कि उपासना के लिये ये चारो तत्त्वो सहायक है। उदाहरण प्रस्तुत है—

देशी वोलणो अमरत वोल, मुसाफर वोलणा मीठा।[1]
मिला सतसग दुनिया मे, रहा फिर संग क्या वाकी।[2]

---

१ ह० लि० प्र० देवीचद, पृ० स० ११।
२ नथमल भजनावली, पृ० सं० ७।

उपासना में सफलता

उपासना में सफलता के चार मुख्य कारणों का उल्लेख कई महापुरषो ने किया है। इन चारो में से यदि एक भी साधक के जीवन मे आ जाय तो निस्सदेह उपासना शीघ्र फलप्रसविनी होती है। ये चार कारण हैं—(१) विश्वास (२) व्याकुलता, (३) संकल्पत्याग, और (४) समता।

(१) विश्वास

अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे स्वप्न मे भी कभी सदेह न होना ही विश्वास है। विश्वास से चित्त को वड़ा वल मिलता है। चित्त चिन्ताहीन होकर साधना मे लगा रहता है-गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है कवनिहु सिद्धि कि विनु विश्वासा। (मानस-उत्तरकाड) तो शाकद्वीपीय व्राह्मण कवि तेज कव चूकने वाले थे। उन्होने भी कहा है—

तेज कवि कहे वारम्वार
पापी तूं विरद विचार
चरण पड़े की सरण जाण इण
भवसागर से उतरे पार।[1]

(२) व्याकुलता

व्याकुता उसे कहते है, जव हम अपने लक्ष्य को पाये बिना पलभर भी कही चैन से न रह सके। लक्ष्य की प्राप्ति के बिना ससार सूना-सूना दिखायी पड़े। ऐसी अवस्था मन की वन जाय तभी सिद्धि अविलम्व मिलती है। तभी तो शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि हरिनारायण पुरोहित कहते है—

नाथ मोरी विगडी बेग सुधारो,
आगे भगत अनेक उवार्या जाणे सव ससारो।[2]
एक मास दरसाय गये तुम बीते मास अपारी
कर किरपा व्रजवासिन घर आवो कुंज बिहारी
दास हरी सरणागत तोरी, चरण कमल वलिहारी।[3]

---

१. तेजकवि कृत गायन, पृ० स० ६।
२. ह० लि० ग्रथ—कवि हरिनारायण पुरोहित, भजन स० ३१।
३. वही, भ० सं० ३०।

कवि देवीचंद के शब्दों में—

आपरी फेरूं माला परगट दो घट उजियाला
दीनदयाला दरसण देवो मत लगावो देरा ।[१]

उपरोक्त तीनों अवतरणो मे भिन्न भिन्न कवियों की व्याकुलता स्पष्ट अंकित है और व्याकुलता से उपासना मे सफलता मिलती है ।

(३) संकल्प त्याग

"संकल्प त्याग" उसे कहते हैं, जब साधक अभ्यास के द्वारा अपने मन मे अनुकूल प्रतिकूल किसी प्रकार का संकल्प न उठने दे । चित्त सब प्रकार के चिन्तन से मुक्त हो जाय । उस अवस्था में चित्त ब्रह्मरूप ही हो जाता है । तब लक्ष्य के आकर्षण में सफलता मिलती है । इसका अभ्यास प्राय: सभी साधक करते हैं ।

(४) समता

"समता" उसे समझना चाहिये, जब साधक फल की प्राप्ति या अप्राप्ति मे, शीघ्रता से प्राप्ति या विलम्ब से प्राप्ति दोनों दशाओं मे अपने चित्त को सम रखकर सतोषपूर्वक साधन मे ही लगा रहता है । तब उसे सिद्धि वरण कर लेती है, क्योकि समता ईश्वर का ही रूप है । वह जिस हृदय मे आती है, वहां ईश्वर का प्रदुर्भाव असम्भव नही है ।

आपका आधार एक क्या गरज औरों की
सुखी देवीचद सदा सेवा चरणां की ।[२]
आसरो तुम्हारो हरि तू ही म्हांने तारो रे ।[३]

उपासना के भेद

संपूर्ण संसार को मोह में डालने वाली परब्रह्म परमात्मा की मलिन सत्त्व प्रधान माया के वशीभूत जीव के रज और तमभाव को नष्ट करने के लिये उपासना का आश्रय लेना चाहिये । यद्यपि शास्त्र-कारो ने मानव-कल्याण के लिये अनेक मार्गों का उपदेश दिया है,

१. घनश्याम महिमा, पृ० सं० ८, कवि देवीचन्द ।
२. ह० लि० ग्र० (कवि देवीचद), पृ० स० २ ।
३. वही, पृ० सं० २ ।

फिर भी अविद्या के नाश के लिये आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-साक्षात्कार के सम्वन्ध से वेदान्त और भगवद्गीता मे निम्न त्रिमार्ग वतलाया गया है ।

जव तक आत्मसाक्षात्कार की क्षमता प्राप्त न हो, तव तक चित्त की शुद्धि एवं मन की एकाग्रता के लिये कर्म और उपासना की परम आवश्यकता है । चित्त शुद्धि और मन की एकाग्रता के पश्चात् यद्यपि कर्मोपासना की कोई आवश्यकता नहीं, तथापि लोकानुग्रह के लिये देव-उपासना करते रहना अनुचित नही हैं । इसीलिये—

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ।[1]

इस प्रकार निश्चित हो जाता है कि स्वरूपातिरिक्त अन्य उपास्य आत्म-साक्षात्कार पर्यन्त ऐकान्तिक उपासना के योग्य है । आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् उनकी उस प्रकार की आवश्यकता नही रहती । आत्मातिरिक्त अन्य उपास्य भी आत्मत्वेन ही उपासना की योग्यता रखते हैं । इस प्रकार आत्मपर्याय परब्रह्म परमात्मा जो उपास्य है, उसके दो भेद हो जाते हैं (१) सगुण (२) निर्गुण । सगुण के पुनः दो भेद है—सगुण निराकार और सगुण साकार । निर्गुण निराकार तत्त्व एक ही है । उसकी उपासना निरतिशयानन्द की प्राप्ति और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति विना नही होती । इसलिये वेद में—

तमेव विदित्वातिमृत्युमति
नान्यः पन्था विद्यतेदयनाय ।[2]

इस प्रकार अन्य सभी मार्गो का निषेध कर दिया गया है ।

कुछ भी हो उपासक के लिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भ से अधिकारानुसार एवं गुरु के उपदेशानुसार उपास्यदेव का निश्चय करके उससे आगे भी क्रमशः परिच्छिन्न भाव का परित्याग करते हुए अपरिच्छिन्न भाव की ओर अग्रसर रहे ।

उपासना की अन्तिम-सीमा तक पहुचने पर सभी नाम-रूप

---

१. गीता, ३।२० ।

२. यजुर्वेद, ३१।३८ ।

लय हो जायेंगे और "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है । एवं "ब्राह्मणो नास्ति जन्मतः पुनरेव जायते ।" के अनुसार उसका जन्म मरण समाप्त होकर नित्य निरतिशयानन्द सच्चिद्रूप हो जाता है । वही व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाने का अधिकारी है ।

उपासना से लाभ

प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी की उपासना करता ही है। घर मे पति पत्नी की उपासना करता है और पत्नी पति की उपासना करती है। इस उपासना से भी लाभ ही होता है । अज्ञानी मनुष्य ज्ञानी के पास रह कर ज्ञान प्राप्त करता है यह उसको मिलने वाला लाभ ही है ।

इसी प्रकार सद्गुरु के पास का ज्ञान शिष्य को मिलता है और ज्ञान प्राप्त कर शिष्य उन्नत होता है । शिष्य ने गुरु की उपासना की तो शुभ फल उस शिष्य को प्राप्त हुआ ।

उपासना का अर्थ ही 'उप—आसना' पास बैठना है। हम शीत की पीडा को दूर करने के लिये अग्नि के पास बैठते हैं। वह अग्नि की उपासना है। इससे मनुष्य को लाभ होता है। अग्नि के गुण अग्नि के उपासक अपने मे धारण करता है ।

कुछ भी हो, उपासना से अनेक लाभ है। उदाहरणार्थ—उपासना करने से मन की शक्ति बढती है । उपासना से मनुष्य का व्यवहार सुधरता है । उपासना से तुर्यावस्था के आनन्द की प्राप्ति होती है। उपासना से मुख्यतः आध्यात्मिक लाभ अधिक होता है । मन सुदृढ बनता है और मन से कभी बुरा काम नही होता । इस तरह उपासना से व्यवहार तथा परमार्थ-इन दोनो मे लाभ ही होता है । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने उपासना के लाभ की चर्चा अपनी रचनाओ मे की है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> धनदारा सपने री माया मूरख हीय मत फंद फसावो ।
> अष्ट करम दुरमति सब त्यागो जीव दया घट मांय जमावो
> सुरत समाधि निरख निरंजन नर तन आवागमण मिटावो
> आतमपती को समर पियारे परमातम का दरशण पावो ।

कवि मछ का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

तिर्यो चहै भवपार तो उवर धार हरि येक।
तिण रै नाम प्रताप थी, उधरै जीव अनेक॥

कवि हरिनारायण के शब्दो मे—

कहो ईश त्रिन कैसे जीना
बिन दरस जरत मोरा सीना

सक्षेप मे उपासना से कई लाभ होते है और शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भी इसे माना है और इसका चित्रण अपनी कविताओ मे किया है जो एक वास्तविकता है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों को उपासना का स्वरूप

उपासना का स्वरूप कुछ भी हो सकता है। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव. नृसिह, देवी, गणेश आदि किसी भी रूप की उपासना की जाय, सब उसी परमपिता परमेश्वर की उपासना होती है। भक्त को चाहिये कि वह अपने इष्टदेव की उपासना करता हुआ यह समझता रहे कि मैं जिस परमात्मा की उपासना करता हूँ वही परमेश्वर निराकाररूप से चराचर मे व्यापक है, सर्वज्ञ है, सब कुछ उसी की दृष्टि मे हो रहा है। वह सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सत्, चित् आनन्दघन मेरा इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीला से भक्तो के उद्धार के लिये उनके इच्छानुसार भिन्न भिन्न स्वरूप धारण कर अनेक लीला करता है। इस प्रकार तत्त्व से जानने वाले पुरुष के लिये परमात्मा कभी अदृश्य नही होते और न वह कभी परमात्मा से अदृश्य होता है। श्री भगवान् ने स्वयं कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।[1]

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतो मे सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतो को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नही होता और वह मेरे लिये अदृश्य नही होता, क्योंकि वह एकीभाव से मुझ मे ही स्थित है।

---

१. गीता, ६।३०।

निराकार-साकार में कोई अन्तर नही है। जो भगवान् निराकार है, वही साकार वनते है। भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।[1]

मैं अविनाशीरूप, अजन्मा और सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ। भगवान् क्यों प्रकट होते है ? इस प्रश्न का उत्तर स्वयं भगवान् ही देते है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥[2]

अर्थात् हे भारत। जव जव धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तव तव ही मे अपने रूप को प्रकट करता हूँ। साधु पुरुषो का उद्धार और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने तथा धर्म-स्थापन के लिये मैं युग-युग मे प्रकट होता हूँ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की उपासना का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा है उदाहरणार्थ कवि मंछ राम को ही अपना सर्वस्व मानते हैं। इसीलिये उन्होने "रघुनाथरूपक गीतां रो" ग्रंथ रचा। इसी प्रकार कवि तेज ने भगवान् के विभिन्न रूपों पर अपनी रचनाएं लिखी। कवि नथमल, कवि हरिनारायण, कवि केवलराम इत्यादि कवियो ने भी भगवान् के विभिन्न रूपो पर अपनी अपनी रचनाएं लिख कर उपासना का स्वरूप प्रकट किया। कुछ उदाहरण अवलोकनीय है—

श्रीराम के प्रति

जग मे राम तुहाले जोडे
हुवो न कोई फेर हुवे ।[3]

---

१. गीता, ४।६।

२. वही, ४।७।८।

३ रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ), पृ० सं० १६।

श्रीमाताजी के प्रति

सगत तणा गुणसार, आगा लग आषीस अनंत ।
पावै कोई न पार, वडे प्रवाडे वीसहथ ।[१]

श्री ॐ कार के प्रति

ओमकार मानघात सदा सिव सबके सुखदाता ।
रटो ओमकार ।।[२]

श्री लक्ष्मीनाथजी के प्रति

श्री लक्ष्मीनाथ सहाई सदाई मेरे लक्ष्मीनाथ का ।
भगतवत्सल भव भजन दाता मात-पिता वरदाई ।।
और नही जग मे कोई मेरा जा संग जोडूं सगाई ।।[३]

ॐ नाम के प्रति

जाप जप मुख सूं ओम नाम
ध्यावै सुर मुनि जन तमाम ।[४]

श्री गंगाजी के प्रति

प्रात समे गंगा का दरसण कर, मन परसण हाई जाई रे ।
गंगा तो भागीरथ लायो, शिर से लहर चलाई रे
सीव परमा नारद सनकादिक, रूसि मुनि करे वड़ाई रे
गंगा घाट घाट मे लाघण, नकल रमा न कराई रे ।[५]

श्रीकृष्ण के प्रति

हां रे मन लागो रे गिरधरलाल सूं
चित चरणां मांय लागो रे ।
रेताला रमती ने लाधो,
कांकरो पूज्यो सालगराम रे ।[६]

---

१. माताजी रो छद, (कवि बीका) पृ० स० १ ।
२. ह० लि० भजनमाला (कवि मगलदास), पृ० सं० १९ ।
३. तेज कवि कृत गायन (कवि तेज), पृ० स० ४७ ।
४. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० सं० १ ।
५. ह० लि० पो० (कवि देवीचद), पृ० सं० १७ ।
६ .ह० लि० प्र० (कवि रामरिख), पृ० सं० ४-५ ।

वलराम भैया सुनलो मोरी
हरी भोजक विप्र शरण तोरी [1]

श्री शिव के प्रति

नन्दीगण चढकर आते है, शिव शेष नाग लपटाते है
त्रिभुवन पति तीन नेत्रवारा, सिर जटा विच वहे गंगाधारा
अवधूत महेश्वर मतवारा, शिव भसमी अंग रमाते है
गल वीच पहरण मुण्डनमाला, तन धारण वाघम्बर खाला
मुख सिघनाद सुणाते हैं, अरू डमरू वजाते है
केसर चदन चर्चित है, विल पत्र पुष्प चढवाते हैं
करे अहार धतुरा अमल आक, शिव भग का रग जमाते है[2]

श्री सूर्यनारायण के प्रति

राग भैरूं

सिंवर देव कासवसुत जग आणंदकारी
उदौ करण अधारहरण किरणाधारी ।।
भलहल तेज उदेभाण
पढत पढता रैय पुराण
गढ मढ वाज निसाण
सासतर विध तारी ।।सिंवर।।[3]

श्री चावंडा माता के प्रति

अम्वे महारानी संकट भयहरनी शक्ति शिरोमणि
शीश मुकुट चावड रे चील रे कुण्डल अमोल
भैरू चंवर करै चावड रे कालो गोरो वीर
चित्त मे चाव आव चावड रो पूरो करसी भवानी ।[4]

श्री भटियाणी जी के प्रति

मोटि सरूपा जाजलमान मचे भुपालोक मेला
कचोटिअ नु पाय इवे योग णिक रूर

---

१. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० १५, पद ४२ ।
२ ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० १५, पद ४३ ।
३. ह० लि० भजनमाला, पृ० स० २८–२९ (कवि मगलदास ।
४. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० ३ ।

घकै दीप धूप वरे फरूके चोफेर
घजा हाल कलिकाल विषे हाजरा हजूर
मनो सिधि करो कांम भटियाणी जोगमाया
आपो सुख माता साता समापायो आणंद
वात के लोहा तो हात वधारो वसरो वंस वस को वेलडे
सदा कते फत्ते करो देवीचंद कैवे ।[१]

वैसे तो काव्यरूप में कवियों ने भगवान् के विभिन्न रूपो के प्रति अपनी भावना दर्शायी है। उदाहरणार्थ कवि मंछ यदि रामभक्त थे तो कवि वीका माताजी के, किन्तु अधिकाशतः शाकद्वीपीय ब्राह्मण मुख्यरूप से सूर्योपासक रहे हैं।

यही कारण है कि प्रायः भारत के सभी भागो मे आज भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण माघशुक्ला सप्तमी के दिन यज्ञ, हवन आदि करते हैं। उस दिन सभी शाकद्वीपीय ब्राह्मण वधु इकट्ठे होते है, जुलूस निकालते हैं फिर विधि-पूर्वक भगवान् सूर्य को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ करते हैं तथा प्रसाद ग्रहण करते है। यह मैंने स्वयं ने देखा है। उदाहरणार्थ—जोधपुर में ही श्री गगश्यामजी के मदिर मे श्री मगराज जी होलावत यज्ञ करवाते है और सूर्य भगवान् के समक्ष पूजा-पाठ आदि करके प्रसाद बांटते है। इसी तरह स्थानीय बगेची चांदपोल मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण लोग यज्ञ हवन आदि कर प्रसाद ग्रहण करते है। स्थानीय रातनाडा मे तथा अनेक स्थानों पर एवं जोधपुर के अतिरिक्त भारत के अनेक भागो मे भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण यज्ञ-हवन आदि करते है। उसी दिन जुलूस भी निकालते है तथा वहा सांस्कृतिक कार्यक्रमो का भी आयोजन करते है एव प्रसाद लेते है।

तात्पर्य यह है कि अधिकाशतः शाकद्वीपीय ब्राह्मण आज भी अपने आपको सूर्यवंशज मानते है और मुख्यरूप से प्रतिदिन सूर्योपासना करते हैं।

श्री सूर्य भगवान् के प्रति कुछ कवियो द्वारा रचित स्तुतिया आदि प्रस्तुत है—

---

१. ह० लि० प्र० (कवि देवीचन्द), पृ० स० ५८।

जै सूरज देवा जै आदित्य देवा ।
सुरनर मुनीजन ध्यावत करत सदा सेवा ।।
आदित्य उदय होत उजियारा जग आणंद करता
रवि जगपालन करता ।।
कीड़ी कण मण कुंजर सबका उदर भरता ।।
कृष्ण को कुंवर साब करी भगति रवि सरणों लियो
कुष्ट निवारण खातिर कंचन तन तें कियो ।।२।।
भानु तन सुं भया मग भोजक पूजा हित प्यारा
वेद पुराण वखाणे जाणे जग सारा ।।३।।
कास्यव सुत सूरज की आरति जो कोई गावे
सख धनी कर जन मन वांछित फल पावे ।।४।।
भोजक विप्र हरी रवि तोरी शरणागत आयो
जंबूदीप जोधाणो प्रभु तेरो दरसण पायो ।।५।।[1]
सिवर देव कासव सुत आणदकारी
उदौ करण अंधारहरण किरणांधारी
भलहल तेज उदेभांण, पढत पढ़ता रैय पुराण
गढ़ मढ वाजा निसांण, सासतर विध सारी ।।[2]

दोहा—

फेरूं माला फजर में जग फंदा मिट जांण
कर जोड़ूं अरजी करूं फलजो सूर्य नरांण ।[3]
नमो तिमिर नास नम नमो सूरज नमो ।[4]

ईश्वर की उपासना का तात्पर्य उसके दिव्य सत्-तत्त्व की आराधना है । जप-तप, धारणा-ध्यान आदि उपायों से साधक सत्तत्व से ओतप्रोत हो जाता है । उसमे जितनी भी सत्तत्व की वृद्धि होती है, वह उतना ही आनन्द की अनुभूति करता है, उतने ही अशो मे उसमें ईश्वरत्व आ जाता है । इस सत्तत्व की पूर्णता ही

१. ह० लि० ग्रं० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० २ ।
२. ह० लि० भजनमाला, पृ० स० २८-२९ (कवि मंगलदास) ।
३. ह० लि० पोथी (कवि देवीचन्द), पृ० सं० १०५ ।
४. वही, पृ० सं० १०५ ।

ईश्वर प्राप्ति का लक्षण है ।

स्वामी दयानन्द ने उपासना की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है—"जिस जीवन मे उपासना की अमृतधारा प्रवाहित नहीं होती, वह जीवन शुष्क बालुकामयी मरुभूमि की तरह है। जब तक सूर्य और ज्ञान के साथ उपासना का मधुर मिश्रण न हो तब तक न तो कर्ममार्ग में ही पूर्णता प्राप्त हो सकती है और न ही ज्ञानमार्ग में पूर्णता लाभ । इसलिये ज्ञान के साथ साधन की पूर्णता के लिये उपासना परमावश्यक है ।"

सत्य है उपासना करके उपासक निरन्तर प्रगति-पथ पर ऊंचा उठता ही जाता है । उसका शरीर नीरोग रहता है और वह अपने मन मे शक्ति का अनुभव करता है । सांसारिक आपत्तियो से लोहा लेने की सामर्थ्य भी उपासक मे आ जाता है । वह उन्हे ईश्वर की कृपा का फल समझकर प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है और उन्हें ही अपनी उन्नति का माध्यम मानता है । विचार और विवेक के रूप में उसे सच्चे मित्र प्राप्त होते है। स्वय ऊंचा उठाने के साथ दूसरो का उत्थान भी वह आवश्यक समझता है । निःस्वार्थ सेवा तो उसके स्वभाव में आ ही जाती है ।

जब उपासना मे ये लक्षण दिखाई देने लगे, तब समझना चाहिये कि वह आनन्द-मय प्रभु का सामीप्य प्राप्त कर रहा है । यही सच्ची उपासना है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि भी परमात्मा के सच्चे उपासक थे। यही कारण है कि उन्होने भक्ति मार्ग अपनाया और अपने भावों की अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से की। यह उनकी उपासना का प्रबल प्रमाण है ।

अध्याय : ७

सांस्कृतिक एवं सामाजिक चित्रण

सांस्कृतिक निरूपण

संस्कृति शब्द "सम्" उपसर्गपूर्वक "कृ" धातु के भूषण अर्थ मे "सुट" का आगम करके क्तिन प्रत्यय करने से बनता है। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ होता है –"भूषणयुक्त सम्यक् कृति या चेष्टा। आजकल यह शब्द अंग्रेजी शब्द कल्चर का पर्याय माना जाता है।

संस्कृति शब्द का प्रयोग सामान्यतः दो अर्थों मे होता है। एक व्यापक एवं दूसरा संकीर्ण अर्थ मे। व्यापक अर्थ मे यह समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ मे संस्कृति को "सामाजिक प्रथा" का पर्याय कहा जाता है। संकीर्ण अर्थ मे संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय मानी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन कार्यों या व्यापारों से हमारा आचार–विचार सजाया–सवारा हुआ माना जाय और हमारी रुचि शिक्षित या परिष्कृत समझी जाय, उन सबका संबंध संस्कृति से है।[1]

भारतीय संस्कृति का अनुयायी विश्व के किसी भाग मे चला जाय, तुरन्त पहचाना जा सकता है क्योंकि उसकी रग–रग में संस्कृति का प्रवाह इतने वेग से प्रवाहित होता रहता है कि अन्य संस्कृतियों उसमे व्यवधान उपस्थित नही कर सकती और अपनी

---

१. कविया करणीदान कृत 'सूर्य प्रकाश' ऐतिहासिक, साहित्यिक एव सांस्कृति अध्ययन–डा० रामकृष्ण दूगड, पृ० स० २६६।

अखंडता एव अजस्रता के कारण वह सरलता से पहचान ली जाती है । इस संस्कृति के विभिन्न रूप हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में विकसित हुए है । अब हमे देखना यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य मे भारतीय सस्कृति का निरूपण कहां तक हुआ है।

(१) पारिवारिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण

मानव-जीवन में परिवार का बड़ा महत्त्व है । परिवार के बिना मानव का विकास सम्भव नही । यह परिवार की भावना सृष्टि के आदि मे दृष्टिगोचर होती है क्योंकि जिस समय सृष्टा ने अपने हृदय मे यह विचार किया कि "एकोऽह् वहुस्यां प्रजायेय" अर्थात् मैं अकेला हूँ और वहुत से उत्पन्न करू । उस समय यह ज्ञात होता है कि वह भी एकाकी जीवन से ऊव उठा था और इसीलिये उसने अपने एकाकी जीवन से ऊबकर परिवार रूप मे रहने की इच्छा से अनेक स्त्री पुरुषो को जन्म दिया । अतएव प्राणियो के विकास के लिये परिवार का होना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है ।

रघुनाथरूपक गीतां रो मे भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि मंछ ने भारतीय परिवार का आदर्श उपस्थित करते हुए राजा दशरथ के सुसंस्कृत परिवार की झाकी प्रस्तुत की है—

इम राज करै अजनंद अयोध्या, नेत वधी निषतेत ।

(२) मानवता प्रेम

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों पर मानवतावाद का बड़ा प्रभाव पडा है । "रघुनाथरूपक गीता रो" के प्रमुख पात्र राम और सीता दोनो ही मानवता के अनन्य पुजारी चित्रित किए गये है, तभी तो श्रीराम भीलनी के जूठे वेर खाते है । उदाहरणार्थ—

> चाख चाख गरवे फल चोखा,
> तर उर भाव अमाप तिकै ।
> उमगे प्रभु भीलणी आंचा,
> अैठा वोर अरोगे आप ।[1]

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ) पृ० स० १४२ ।

भगवान् श्रीरामचन्द्र ने शूद्र समझकर उसकी अवज्ञा नही की और उसके वेर चख लिए। इससे वढकर और मानवता-प्रेम क्या हो सकता है ? इन्ही विचारों को अन्य कवियों ने अपनी रचनाओ मे प्रतिपादित किया है । उदाहरणार्थ—

वैनी मीठो वोलणो
पडोसियां रख प्रेम
हिल मिल सवने हालणो
जनक सुता रे जेम ।[1]

प्रेम सूं प्रीत की साहिवा वधण वधावो जी
फूट को कूट भगावो प्यारा मारूजी
ग्यान को गोटो साहिवा लज्जा की लधी जी
इकता की मोरड़्या मडावो मारा मारूजी ।[2]

(३) समष्टि के लिए व्यष्टि-वलिदान

समष्टि के लिए व्यष्टि-वलिदान की भावना का समर्थन शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे कई स्थानां पर देखने को मिलता है । उदाहरण प्रस्तुत है—

रघुनाथरूपक गीतां रो मे स्पष्ट देखने को मिलता है कि राम समष्टि के लिए ही सम्पूर्ण राजसी सुखोपभोगो को छोड़कर वनवासी होते हैं । श्रीराम की सीता भी सम्पूर्ण विश्व को दानवता के चंगुल से मुक्त कराने के लिए राम के साथ वन जाती है और वहा रावण के द्वारा नाना प्रकार के कष्टो को सहन करती है । यहा लक्ष्मण भी समष्टि के हेतु अपना सर्वस्व वलिदान कर देते हैं और माता-पिता द्वारा वनवास की आज्ञा न होने पर भी राजकीय आनन्दोपभोगो का परित्याग करके चौदह वर्ष तक त्याग तपस्यामय जीवन व्यतीत करते हैं । यही वात दशरथ के जीवन मे भी है, क्योकि वे भी समष्टि के लिए ही अपने प्राण तक न्योछावर कर देते हैं और अपनी वात पर दृढ़ रहते हैं । इतना ही नही, राम के इस वलिदान-भाव को देख कर ही जगल मे निवास करने वाले

१. ह० लि० प्र० (कवि देवीचन्द), पृ० स० १६ ।
२. ह० लि० प्र० (कवि नथमल), पृ० स० ४ ।

हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त, नल–नील आदि भी समाज के कल्याण के लिये सम्पूर्ण जगती को दानवता के घोर अत्याचार से बचाने के लिए तथा भूतल पर सुख और शांति की स्थापना के लिए अपने सुखों का परित्याग करते हैं ।

इसवर सीय सेस चढ़े रथ ऊपर
तहक सारथी खड़े तुरंग
नगर हलक हाते नरनारी
घर धंधो छोड़े घरवारी ।[1]

(४) नैतिकता

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की दृष्टि मे नैतिकता का बड़ा मूल्य है । इस नैतिकता का पालन करने के लिए शिष्टाचार एवं लोक–मर्यादा का पालन करना सर्वथा अपेक्षित है । नीति-कथन है कि गुरु का आदर करना चाहिए, माता–पिता की सेवा करनी चाहिए, पत्नी को पति की सेवा करनी चाहिए, शिष्य को गुरु का आदर करना चाहिए, पुत्र को माता–पिता की आज्ञा मे रहना चाहिए आदि आदि । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनमें नैतिकता का चित्रण देखने को मिलता है ।

गुरु–सेवा

गुरु किरपा पायो गुणां, पारस तणो परसंग
वगत करै नही विनवो, अग्यांनी से अंग ।[2]

पति की आज्ञा में रहना

रैण मिटी परभात रा,
मारबे पति ने करो परणाम
सदा सुष री घड़ी घड़ी
फजर वीत रा दिल में धरो ध्यांन ।[3]

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० ११० ।
२. ह० लि० प्र० कवि रुगनाथ, पृ० स० ४ ।
३. ह० लि० प्र० कवि देवीचन्द, पृ० स० ५८ ।

कवि नथमल के शब्दों में

> मदन करे अव धरम का अधरम मिटाणो है
> लंपट लवारिन चोर को जग सूं हटाणो है ।[1]

(५) आध्यात्मिकता

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की है, जिसमे भौतिकता का विरोध करते हुए मानव को आध्यात्मिकता की ओर आगे बढने की प्रेरणा दी है । करीव करीव सभी कवि आध्यात्मिकता के प्रेमी रहे है। इसी कारण इन कवियो ने धन की तुच्छता के वारे मे, जगत् की नश्वरता के वारे में, एवं ईश्वर की महत्ता के वारे में भिन्न भिन्न प्रकार से अपने विचार प्रतिपादित किए हैं और वताया है कि जो व्यक्ति केवल प्रभु-स्मरण कर लेंगे वे विना किसी परिश्रम के इस भवसागर से पार हो जायेंगे । इतना ही नही, जो व्यक्ति भगवान् के गुण, कर्म और स्वभाव को भी धारण करेंगे वे अपना ही नही वरन् दूसरो का उद्धार करने मे भी सफल होंगे । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे भौतिक आडम्वर, माया-मोह, काम, क्रोध, लोभ, मोह, काम-वासना आदि की उपेक्षा की गई है। सास्कृतिक दृष्टि से भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही मानव के अभ्युदय एव निश्रेयस के लिए आवश्यक समझा गया है और उसी को अपनाने का सकेत शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ मे मिलता है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि अधिकाशत: भक्त कवि थे, इसीलिए उनकी रचनाओ मे आध्यात्मिकता तो स्थान-स्थान पर देखने को मिलती है, तभी तो उन्होने भगवान् की स्तुतियां, पद, गीत, दोहे आदि रचे। कुछ उदाहरण निम्नोक्त है ।

> तुम नाम वया दरसण भगताई रै सांभल करै धरत,
> रसणा श्रवण जोयणा हिरदे सोई धिन वसुधा संत ।[2]

---

१. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० स० २४ ।

२. रघुनाथरूपक गीता रो—कवि मञ्छ, पृ० स० २६०-२६१ ।

हे प्रभु ! वही सत पुरुष पृथ्वी पर धन्य है जो आपका नाम जिह्वा से रटते है, आपकी कथा कानो से सुनते है, आपके दर्शन आखों से करते है और आपकी भक्ति को हृदय मे धारण करते है। फिर–

कृपानिध भामणे तुझ टालण कुगत
झटक जण न्यायते सुगत झेलै
परस कदमा चली जुगत भव भूम पर
माहसो नदी वड़म ग्रंथाण गावै
तो उदक ओयणं आण लागे तना
पद जिका निरवाण पावै ।[1]

अर्थात् हे कृपानिधि ! कुगति टालने वाले ! मैं आपकी बलिहारी हूं। जो आपके सच्चे भक्त है, वे शीघ्र ही सुगति को प्राप्त होते है। आपके चरणो का स्पर्श करके जो शिवजी की युक्ति से पृथ्वी पर चलती है, वह महानदी गंगा इस ससार से मोक्ष को भेज देती है।

हे दया के समुद्र ! आपने अनेको को तार दिया है। कहां तक गणना की जाय। वडे वड़े ग्रंथ गुणगान करते है। आपके चरणों के जल से जिनका शरीर आकर लग जाता है, वे जीव निर्वाण पद प्राप्त करते हैं। भगवान् राम की महिमा गाते हुए कवि मछ लिखते हैं–

जपै समुझ नित जाप, सागर–भव तिरवो सहल
जल तिरिया पाहण सुजड़, पतसिय नाम प्रताप।[2]

अर्थात् जो नित्य जाप करते है उनके लिए ससार–सागर से पार हो जाना सहज है। रामचन्द्र जी के नाम के प्रताप से जड-पाषाण भी जल के ऊपर तिर जाता है (फिर चेतन–जीव का तो क्या कहना)।

इतना ही नही कवि मंछ तो ईश्वर के बारे में यहा तक कहते है कि चाहे वन मे जाकर तपस्या करो, चाहे वद्रीनाथजी के पर्वतो पर चढकर गल जावो और चाहे कितने प्रकार के वेष धारण कर पृथ्वी पर फिरो, किन्तु जब तक रामचन्द्र भगवान् के चरणो मे

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० २६० ।
२. वही, पृ० सं० २।

मन नही लगा, तव तक इस संसार से छुटकारा नही हो सकता। चाहे तीर्थो के ऊपर खूव प्रेम हो, और चाहे मन इच्छित आनद भोगने को मिले हो किन्तु जव तक ईश्वर के चरणो मे मन नही लगा कर देखा, तव तक प्राणी का उद्धार नही हो सकता।

वन वैठो भलां चढो गिरवदरी- धरा भेष के धारो
चित नह लग्यो रामरै चरणां, नहं जव लग निसतारो
प्रीति करै तीरथ रै ऊपर, मोज दिये मनमानी
तक्यो न मनहर पग जिह ताई, पार न उतरे प्रांणी।[1]

इतना ही क्यो, कवि तो यहां तक कहता है कि—

जग मे राम तुहाले जोड़े,
हुवो न कोई फेर हुवे।[2]

कुछ अन्य शाकद्वीपीय व्राह्मण कवियों की आध्यात्मिकता की भावना देखिये—

कवि तेज के शब्दों में

भजो सव विसम्भर किरतार
जाकी माया जगत रचाया सवका पालनहार।[3]
भजन कर शाम नटवर का सुधारा जनम का चावे।[4]

कवि देवीचन्द के शब्दों में

ईशवर कुं कर याद, जीव मुगति चावे तो
वास मीले वैकुंठ रा, गुण हरी रा गावे तो।[5]

कवि मंगलदास के शब्दों में

तेरी अगणित महिमा चरित वेद में वरणी
तूं ही पुष्कर गया प्रियाग तूं ही वेतरणी।[6]

---

१ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० १७–१८।
२. वही, पृ० सं० १६।
३. कवि तेज कृत गायन (कवि तेज), पृ० सं० ३।
४. वही, पृ० स० २२।
५ ह० लि० प्र० (कवि देवीचन्द), पृ० सं० १०४।
६. ह० लि० भजनमाला (कवि मंगलदास), पृ० सं० २४–२५।

कवि हरिनारायण पुरोहित के शब्दों में

तीन त्रीलोकी नाथ तुंही तुंही है चारूंधाम
तुंई ईश तु ही जगदीसा, तु ही है कृष्ण अरू राम।[1]

कवि घुंधलीमल के शब्दों में

राम विना मुगति न गति।[2]

कवि नथमल तो राम के पक्के भक्त जान पडते है। उनका कहना है कि सब कुछ राम ही करता-धरता है। इसमें कोई फर्क नही है। भक्ति और मुक्ति का मार्ग तो वेद बतलाते ही है और इसके अलावा तो कोई अन्य मार्ग है ही नही।

सब करता धरता राम है
जिसमें कुछ फरक नहीं है
भगति मुगति पद वेद बतावे
कोई दूजी सरक नही है।[3]

फिर कवि कहता है कि प्रभु की लीला का कोई पार नहीं पा सकता—

अद्‌भुत लीला परभू तेरी
पार कोई नां पावे
तोरे हाथ डोर पालण की
तूं जगदीश कहावे।[4]

कवि केवलराम के शब्दों में

रैण दिन राम राम रट नामा
अप्ट सिध नवनिध मिलेगी सब ही सुधारै कामा
राम भजन से कई उधर गये गज गनका रे सुदामा
केवलराम राम रट नामा मन थिर कर इक कामा।[5]

---

१ ह० लि० ग्रं० (कवि हरिनारायण), पृ० स० १२, पद सं० ३४।
२. ह० लि० (कवि घुंघलीमल), पृ० स० १८।
३ नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० सं० १२, भचन स० ३०,।
४. वही, पृ० सं० ४, भ०-सं० १०।
५. रामलीला, (कवि केवलराम), पृ० स० ६।

राम राम रटरे मन लाई ।[१]

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने जग की असारता से दूर रहकर परमपिता परमेश्वर के चरणो मे चित लगाकर भवसागर से पार हो जाने की प्रेरणा दी और स्पष्ट किया कि संसार झूठा है, यहां कुछ नही है। मनुष्य केवल लोभ, माया, मद, अह, काम क्रोध आदि के कारण अपना जीवन व्यर्थ ही खो देता है। अतएव हमे ईश्वर का स्मरण करना चाहिए। संसार की असारता के बारे मे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जगिया झूठी जाण जो, विद सो करो
अपनी सोजो आतमा, सपना ज्यूं ससार
सपना ज्यूं ससार, पाणी ज्यूं पतासा
रहै भिन्न रो रूप, रींत है एक तमासा
रैणोके परसराम, तके मत चूके टांणो
कर समरै करतारं, जगत जग झूठा जांणों ।[२]

ओ ससार जार को पिंजरो
ममता मे पच पच हारो ।[३]

सव देख जगत की झूठी दुनियादारी ।[४]

झूठी काया झूठी माया भरम ये जाल फसाता हैं·
झूठा जग ससार समझ ज्यूं सपने मे विलमाता है ।[५]

सामाजिक चित्रण

साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। अतएव साहित्य मे सामाजिक चित्रण होना स्वाभाविक है। कवि एक रूप मे समाज सुधारक भी है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि भी समाज सुधारक थे। इसीलिए उन्होने समाज के वारे मे भी चिन्तन किया और समाज

१. वही, पृ० सं० १३।
२. ह० लि० प्र० (कवि परसराम), कुंडलिया स० २५।
३. ह० लि० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पद सं० ३२।
४. तेज कवि कृत गायन (कवि तेज), पृ० स० ३८।
५. भर्तहरी का ख्याल (कवि तेज), पृ० स० ७७।

को सुधारने का प्रयास किया। कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति काव्य के द्वारा ही कर सकता है, अतएव इन कवियो ने भी काव्य-रूप मे चित्रित कर वताया कि समाज के कौन कौन से अच्छे कार्य हमे करने, चाहिये जिससे कि समाज का भला हो सके। कौन से बुरे व्यसन है जिनसे हमे वचकर चलना चाहिए ताकि समाज का हित हो सके। हमारे आलोच्य कवियो की रचनाओ को देखने से पता चलता है कि इन कवियो ने समाज को सुधारने के लिए कुछ आवश्यक निर्देश भी दिए और यह वतलाने का यथासाध्य प्रयत्न भी किया कि बुरे व्यसनों को त्यागना चाहिए एव अच्छे कार्य करने चाहिए। अच्छे कार्य करने से सामाजिक स्तर ऊंचा उठ सकता है और सामाजिक उन्नति हो सकती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

पर भव का दत दिया भोग रहे
सो न जरा सोचे स्याने
देवेगा इण भव मे तो फिर
जावेगा पर भव म्याने।[1]

फिर

द्रव संचन मिल करो सुरीती फजूल कुरीत मिटावो
देस जात का करो सुधारा जीवन सफल वणावो।[2]

अर्थात् धन का संचय यदि करना है तो मिलकर अच्छी रीति से करो। व्यर्थ की कुरीतियों को मिटा दो। तभी देश का और समाज का सुधार हो सकता है और तभी जीवन सफल हो सकता है।

कवि वेश्यावृत्ति का बिल्कुल विरोधी है, अतएव उसने वेश्याओं के वारे मे कहा है—

तजो पातरिया से प्यार
ठग मुश खावै रंडा मोकलो, कर चिरत अपार।
निजर छिपायां रंडा नाटले सब कीजो रे विचार
पातर नार न जाणियो नृप जाणो मत यार।
मूंजी की पूंजी किण काम की॥

---

१. गाम केलोद की लावणो (कवि तेज), पृ० स० ९।
२. नैन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० ५९।

जव तक पैसा पास हो नृप दुणो रखसी प्यार
पातर पीछे दौडती, नही तो देय निकार ।।[1]

कवि एक स्थान पर कहता है कि धन और माया केवल चार दिनो की है—

धन माया थिर ना रहे नही रैवे परवार
च्यार दिनां को चाले चानणो आगे दीखे धुंधकार ।[2]

संसार झूठा है

सव झूठो रे ससार ।[3]

कवि तेज की भाति कवि देवीचद भी समाज-सुधारक थे । कवि देवीचद की रचनाओ मे सामाजिक चित्रण स्थल-स्थल पर देखने को मिलता है । कवि समाज को सुधारना चाहता है। तभी तो वह कहता है कि पराई स्त्री से प्रेम बढ जाने से वह नारी आपके कलेजे को काट लेगी । पराई स्त्री वहुत ही मृदुभाषी तो होती है किन्तु इसके साथ ही उससे प्रेम करने वाले को कभी कभी अपने प्राणो से भी हाथ धोना पडता है। इससे अच्छे व्यक्ति की समाज मे इज्जत भी चली जाती है—

कहू नेण कटारी कपटी पर नारी कटि काळजो
पर नारी मे प्रीतड़ी स थे पर हरजो पुनवान
ग्यानी श्राव चतुर नर भणीया गुणीया
धरो एक चित्त ध्यान जी ।।१।।
वहुत उमदा मीठी वोले, धन कर जावे तोहि धोखो
पर नारी से करे प्रीतड़ी, जीव जखम रो जोखो
फेल फतूरा होय फजीता, मान घटे जुग मांये
पाप स्थान चौथो है परतक, जको नरक में जाये
नारी पर तक नागणी स है, जण मे भरीय जहर
कस्यां पछे होवे दुरवीस रे, गले हाथ ने पैर

१. जोग भर्तृहरी का ख्याल' (कवि तेज), पृ० स० १७ ।
२ वही, पृ० स० ५५ ।
३ वही, पृ० स० ५४ ।

कहुं मयंक हो गयो कुकड़ो इन्दर चलवा मायो
मैथुन मे धमर हेला, मनमथ गौतम रूप बणायो ।[1]

आगे कवि एक जगह कहता है कि लडकी का पैसा लेने वाला कगाल कसाई कहलाता है, वह व्यक्ति कभी भी सुखी नही हो सकता । इसलिए लडकी का पैसा कभी नही लेना चाहिए ।

कलदार लेवे जो लड़की का, वो कंगाल कसाई कहावत है
बेटी दु:खी गालिया बोले, जड़ा मूल व्या रो जावत है
कहत देवीचंद रया कलि काल में, वे नर नरक सधावत है
कलदार लेवे जो लड़की का, वो कंगाल कसाई कहावत है ।।[2]

कवि समाज को सुधारना चाहता है इसीलिये वह एक स्थान पर कहता है कि नशा करना बहुत बुरी चीज है । उदाहरणार्थ—

पीवो मत जरदो प्यारे,
लगते कफ खासी लारै
हिम्मत कम पूदगल हारे
जी है दोष घणो जरदा में ।[3]

कवि समाज मे रहने वाले व्यक्तियों को निर्देश देते हुए कहता है कि समाज मे रहकर प्रेम रखो और मधुर वचन बोलो । यही अमृत है, इसी से समाज मे आदर मिलता है अन्यथा अपशब्द कहने से सभा भंग हो जाती है—

देशी बोलणा अमरत बोल मुसाफर बोलणा मीठा
इण रसना में वरसे अमरत, इण मह जहर अडोल
मधुर वचन धन सव जग मोवत, तन मन बढतो तेल
आदर दादर मेघ खूसी अव, मेघ पवेयो कोयल
भासण कूट से होत सभा भग, रज पर घोल मचोल
राजी देवीचंद प्रेम की रसना, रोम रटो रग रोज ।[4]

---

१. ह० लि० (कवि देवीचन्द), पृ० स० २५ ।
२ वही, पृ० स० ३१ ।
३. ह० लि० (कवि देवीचन्द), पृ० स० ४४ ।
४. वही, पृ० सं० २१ ।

कवि देवीचंद जी समाज-सुधारक थे, इसीलिए तरह तरह के उपदेशों का उनके काव्य मे समावेश होना अभीप्ट है। समाज की स्त्रियों को भी कवि उपदेश देता है। वह कहता है कि अपने ससुराल में घूंघट रखना, पति को प्रसन्न रखना, पानी भरना, पुण्य करना, एवं प्रभु का स्मरण करना आदि ही पत्नी का धर्म है और उसे ऐसा ही करना चाहिए।

सखीयां सधवा थे सुणो, दिल धारो उपदेस,
सासरीये जाणो सदा, वपरो नवला वेस।
टीकी, काजल, घूंघटो, पति सुखी रख प्रीत,
नथडी कूठो नाक मे, रहो सती ध्रम रीत।
वाणी मीठी वोलणी, पड़ोस्या रख प्रेम,
हिलमिल सबसे हालणो, जनकसुता रे जेम।
उखल घरटी आगणे, मारी चंदरू आखर चार,
तकीया वेलणी प्रात तवो, मारी माजो काठो मेल।
रैण मिटी परभात रा मारवे, पति ने करो परणाम,
सदा सुख री घड़ी वड़ी फजखीतरा, जरा दिल में धरो ध्यान।[1]

कवि समाज की विधवाओ को भी उपदेश देता है। वह कहता है कि कामदेव अहंकार आदि विषय वासनाओ को त्याग कर तुम्हे परमपिता परमेश्वर की भक्ति मे लीन होना चाहिये। जिस प्रकार विना भूख के भोजन अच्छा नही लगता, उसी प्रकार धर्म के पालन विना जीवन ही व्यर्थं है। फिर तो भवसागर से पार होने के लिये भगवद् भजन ही श्रेयस्कर है क्योंकि विधवा होने के पश्चात् यह यौवन जहर के समान है।

सिखावण विधवा सुणो, विनती करमवार,
भावो भगती भावना करो, धरो ध्यान किरतार।
विपयक साय विडारजो, कामदेव अहंकार,
विना कथ सुणजो वधु, ओ संसार असार।
विना भूख भोजन वीरथा, जनम वीरथा विन धरम जांण,

---

१. वही, कवित्त स० ४५।

कंथ बिन सब कारमो, जोवन खारो जहर
मन घर घ्रठ राखो आतमा, गणजो माला गहर ।[1]

इसी प्रकार शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि नथमल ने भी भारतीय आदर्शों का निर्वाह करते हुए कुछ सखियो द्वारा दूसरी सखि के पति को कुछ उपदेशपूर्ण वाते कहलाने की चेप्टा अपने गीतो मे की है। कुछ सखियां एक सखि के पति से कहती है कि आप एक कहना हमारा भी मानना और इन बातों पर विचार कर इन बातों को हृदय में धारण करना । वे वाते निम्नोक्त हैं—

(१) किसी दूसरे का धन हडपने की चेष्टा न करना ।
(२) किसी की झूठी निन्दा न करना ।
(३) अपनी पत्नी के अलावा किसी अन्य स्त्री के प्रति कुछ भी बुरे विचार न रखना ।
(४) जुआ कभी न खेलना आदि ।

कवि का एक गीत प्रस्तुत है—

सखियां समझावे दहिजो जी ओ वना
सही मानजो कहिजो ।।चौक।।
मत नसा लगाजो तन से ।
यह सुणलीजो श्रवणन से जी
सुनकर उर में लाइजो जी ।।१।।
मत थे पर धन ने हरजो
निन्दा झूठी मत करजो जी
यश जग में लेणो चहिजो ।।२।।
पर-नारी चित्त मति चाहजो
हिवड़े हित में एक धारजो
वनड़ी सो प्रेम वढाणो जी ।।३।।
मत जुआ में चित्त दीजो
खेती व्यापार ही रोज करीजो
सुख सपत्ति मिलै सहीजो जी ।।४।।

---

१. ह० लि० (कवि देवीचंद), पृ० सं० ३६ ।

"नथमल" की तुम मान कथन को
मत विरथा लुटाजो धन को
सुभ कारज पर पईसो दईजो ।।५।।[1]

भारतीय सामाजिक आदर्श का निर्वाह करते हुए कवि ने पतिव्रत के धर्म को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। कवि ने तो यहां तक कहा है कि जप, तप, तीर्थ, दान, पुण्य आदि सभी पतिव्रत-धर्म के पीछे हैं। कवि ने तो यहां तक भी कह दिया कि ससार के भव-सागर से पार होने के लिए भी यह श्रेष्ठ है।

धारो धारो जी धारो जी धारो जी
पतिव्रत नारी धरम तुम्हारो जी ।।चौक।।
जप तप तीर्थ दान, पुण्य है पतिव्रत धरम पिछार
उत्तम पतिव्रत धरम धार के भव से उतरो पार ।[2]

इसी तरह शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि रुगनाथ भी समाज को सुधारना चाहता है। कुछ उदाहरण—

पीवे भांग परभात, फेर नित गांजा फूंके
लोपे तन मन लाज मरन सब मन सूं मेले ।[3]

दूजां ने उपदेस, देव रूपी होई देणो
रेणो नही लगार, कथन पण सूरा कहणो ।[4]
भणिया वेद शास्त्र, भेद पंडत होय वाचै पोथी
अकल हिरदे अेक, फेर सब वातां थोथी ।[5]

सारांशतः बात यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि परम-पिता परमेश्वर के भक्त थे। वे परमात्मा को ही सर्वज्ञ, सर्वो-परि एवं सर्वव्यापी तो मानते ही थे, साथ ही वे कवि समाज सुधारक भी थे। इसीलिए इनकी रचनाओं मे भारतीय संस्कृति का पूर्ण निर्वाह हुआ है एवं समाज-सुधार की भावनाओ का चित्रण

---

१. ह० लि० (कवि नथमल), पृ० सं० १६।
२. ह० लि० (कवि नथमल), पृ० सं० ५३।
३. ह० लि० (कवि रुगनाथ), क्र० सं० १४।
४. वही, क्र० स० ८।
५. वही, क्र० सं० १३।

भी अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। हम देखते है कि इन कवियों ने समाज को सुधार कर उसे ऊंचा उठाने का भरपूर प्रयास किया। हमारे आलोच्य कवियों ने यही चेष्टा की है कि समाज के लोग बुरे व्यसन न अपनाये और अच्छी वाते सीख कर उन्नति के मार्ग पर चलें।

संक्षेप मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने भारतीय सस्कृति की विशेषताओं को अपने काव्य में अंकित करने की सुन्दर चेष्टा की है, उसके विभिन्न रूपो को सजीवता के साथ काव्य में चित्रित किया है। साथ ही इनकी कविताओं पर यदि मनन किया जाय तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि इन कवियों ने समाज की विषमता को दूर कर उसे सही रास्ते पर लाने का हार्दिक प्रयास किया। इससे प्रमाणित होता है कि इन कवियों ने भारतीय सस्कृति को विश्व के कोने कोने में फैलाने का माध्यम कविता रूप तो अपनाया ही था साथ ही ये लोग समाज-सुधारक भी थे।

———

अध्याय-८

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन

(क) शिल्प-विधान

प्रवन्ध-योजना

प्रवन्ध का सामान्य अर्थ है "प्रकृष्ट रूप से वंधा हुआ" इस प्रकार प्रवन्ध रचना से तात्पर्य है—एक ऐसी रचना, जिसकी कथा आदि से लेकर अंत तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। उसके धारा-प्रवाह मे सतत गतिशीलता है, उसका एक एक अध्याय सर्ग अथवा अनुच्छेद तथा उसका प्रत्येक प्रसंग ही नही, अपितु प्रत्येक वाक्य अथवा छन्द पूर्वापर क्रम से परस्पर इस प्रकार आवद्ध है कि उनका अपना अलग से कोई अस्तित्व ही नही है वह विभिन्न रहकर भी नितान्त अभिन्न है। भारतीय आचायो में भी प्रवन्ध की महिमा गाई है।

आचार्य कुन्तक के अनुसार महाकाव्य की कीर्ति का मूलाधार प्रवन्ध रचना ही है।[1] राजशेखर भी प्रवन्ध-रचना में समर्थ कवि को ही महाकवि पद से विभूषित करते हैं।[2] अतः प्रवन्ध-रचना का अपना स्वय का विशिष्ट महत्त्व है।

---

१. आचार्य कुन्तक-वक्रोक्ति जीवितम् ४।२६।

२. राजशेखर-काव्यमीमासा, अध्याय ५।

प्रबन्ध का काव्यशास्त्रीय अर्थ

काव्यशास्त्र मे 'प्रबन्ध' एक विशेष अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वहां प्रबन्ध से अर्थ प्रबन्ध-काव्य है एवं तदन्तर्गत समग्र कथा-विधान का नाम प्रबन्ध है।[1] यह समस्त कथा-विधान अथवा प्रबन्ध-कौशल ही प्रबन्ध-काव्य की सफलता का प्रथम अनुबन्ध है।

प्रबन्ध काव्य एवं इतिवृत्त

प्रबन्ध काव्य का मूलाधार इतिवृत्त होता है और उसी को लेकर कवि वस्तु-विन्यास की ओर अग्रसर होता है। इतिवृत्त सामान्यतः दो प्रकार का होता है।[2]—वृत्त (अनुत्पाद्य अथवा ख्यात) एव उत्प्रेक्ष्य (उत्पाद्य अथवा कल्पित)

आधारभूत तत्त्व रहते हुए भी काव्य में इतिवृत्त का स्थान नितान्त ही गौण है क्योकि निसर्गतः काव्य रस-मय होता है, कथा-मय नही। यही कारण है कि कवि प्रस्तुत इतिवृत्त के कुछ प्रसगो को, जो उसके अभीष्ट भाव को रस की स्थिति तक संवहन करने मे समर्थ होते है, चुन लेता है और शेष का निराकरण कर देता है। सिद्ध है कि इतिवृत्त का सागोपाग वर्णन इतिहास का विषय है, काव्य का नही।[3]

कथाजन्य कौतूहल का परिशमन करना ही कर्म की इतिश्री नही है, उसका लक्ष्य इससे कही आगे है। अपने इसी लक्ष्य-पूर्ति-हेतु "अपूर्व वस्तु-निर्माण-क्षमा-प्रज्ञा" प्रतिभा के धनी कवि को "प्रबन्ध-सृष्टि हेतु प्रजापति तुल्य अधिकार प्राप्त है—अपार काव्य संसार मे उसकी इच्छा ही सार्वभौम है।[4] Poet के यूनानी अर्थ रचयिता को ग्रहण करते हुए अरस्तू ने भी कवि को सृष्टा कहा है।

काव्य-प्रयुक्त इतिवृत्त अथवा विषय-वस्तु के चयन, सगठन, संयोजन, पूर्वापर क्रम स्थापन प्रकरण-नियोजन, वस्तु-अन्वयन आदि

---

१. डॉ० नरेन्द्र-भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २७६।

२. डॉ० नरेन्द्र-भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २७६।

३. आनदद्धवन ध्वन्यालोक, पृ० १४।

४. अपारे काव्य-ससारे कविरेव प्रजापति-आनन्दवर्द्धन ध्वन्यालोक, पृ०स० १४।

प्रवन्ध-विधान सम्बन्धी समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म संकायों में कवि की प्रतिभा-शक्ति अवाध रूप से सक्रिय रहती है। उस पर किसी का अकुश है तो मात्र अभीष्टव रस-निष्पत्ति विचार का। इस दृष्टि से वह परंपरा-प्राप्त अथवा ख्यात इतिवृत्त के प्रवाह को रसानुकूल मोड देकर एक नई कथा भी गढ सकता है।

पाश्चात्य आलोचक डिक्सन का भी यही मत है कि कवि इतिहासाश्रित होकर भी उसके वृत्त से बंधा नही है। अपने लक्ष्य और कार्य के अनुरूप ही वह घटनावली का चयन करता है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रवंध की परीक्षा के लिए जायसी ग्रन्थावली के दो विभाग किए हैं-(१) इतिवृत्तात्मक (२) रसात्मक। शुक्लजी के अनुसार प्रवन्धकाव्य मे इतिवृत्त की गति इस ढंग से होनी चाहिए कि मार्ग में जीवन की ऐसी वहुत सी दशाएं पड जाये-जिनमें सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वाभाविकता से कर सकता है।[2]

रसानुकूल परिस्थिति तक श्रोता को पहुंचाने के लिए वीच वीच मे घटनाओ के सामान्य कथन का उल्लेख मात्र को ही शुक्ल जी ने शुद्ध इतिवृत्त कहा है। इस कथन की पृष्ठभूमि मे अव हम-शाकद्वीपीय व्राह्मण कवियो द्वारा रचित प्रवन्ध-काव्यो का विवेचन करते हैं।

वस्तु-वर्णन

शाकद्वीपीय व्राह्मण कवियों द्वारा रचित प्रवन्ध काव्यों में जो वर्णन मुख्यतया देखने को मिलते है, वे निम्नोक्त है –

(१) सेना और हथियार वर्णन
(२) युद्ध वर्णन
(६) प्रकृति-वर्णन
(४) सामाजिक एवं सांस्कृतिक वर्णन
(५) रूप एवं आभूषण वर्णन
(६) अन्य

---

१. डिक्सन-इंगलिश एपिक एण्ड हिस्टोरिकल पोयट्री, पृ० स० १२३।
२ जायसी ग्रथावली-आचार्य रामचद्र शुक्ल भूमिका, पृ० सं० ७०।

सेना और हथियार वर्णन

अयुत एक असवार, पाच हजार पयादा
अरावो अणयार, जोम पड धरियो जादा
तुरको नाको तोत, विलद मनमान विचार
आप बेग असवार, सात होदा सिरदार
इण भात फौज ले चढि असुर, लड़ण रूप आगे लीया
मोरचा पहल आयो मुगल, मार मार कुरतो मीया ।[1]

वल पिंड प्रचड सुखेण वली, भड सेना बीस किरोड भली
ऊ पच्छम ओड गयो अणभगी, घीट बडा वृध धारिया
द्रिढ़ सत भली उतराद दिसा, जुड़ जीपं जग क्रतात जिसा
कप बीस साथ थे कोड अणंकल, वीरतवान वधारिया ।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाकद्वीपीय कवियो द्वारा रचित काव्यो मे सेना एवं हथियारो का वर्णन अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है ।

युद्ध वर्णन

हमारे आलोच्य कवियो के प्रबन्ध काव्यो मे युद्ध वर्णन तो स्थल-स्थल पर देखने को मिलते है । कही तोपयुद्ध के करतब हैं तो कही शस्त्रयुद्ध का कमाल, कही भयंकर मारकाट का चित्रण है तो कही युद्ध के पश्चात् वीभत्स दृश्यो का विस्तृत चित्रण. कही खजर एव कटारी से वख्तर को भेदने का ध्वनि-चित्रण है तो कही तलवारो की झनझनाहट, कही बंदूको की जबरदस्त मार का चित्रण है तो कही युद्ध कौशल से विविध-स्वरूपो का वर्णन । कही तल-वारों द्वारा हाथियो के शक्तिशाली शरीर को काट डालने का चित्रण है तो कही योद्धाओ के शरीर को लकड़ी के पाटो की तरह चीर डालने का । कही कवचधारी सैनिको के कवच को भेद डालने का चित्रण है तो कही अनेकों तलवारों के संगठित प्रहारो को झेलते हुए कुशलता से शत्रुओ का सहार करने का । इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न प्रकार का युद्ध-वर्णन इन कवियो की रचनाओ मे मिलता है । युद्ध वर्णन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

१. अभेगुण ग्रथ-(कवि प्रयाग) छंद सख्या ६२, ह० लि० प्र० से ।
२. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० स० १५८ ।

गजै वाज गैणाग जाग वीरत झुंझारा
आग तोप उछले गिणे नह जिका लिगारा
वीर हाक वापरे धीर जूटा पग धारां
तीर वान तरवार, जवन गिर पड़े हजारां ।[1]

छके जोम सूं जाय जमराण सा छेडिया,
लडे अरि रेडिया खेध लागा ।
भिडे भाराथ अणपार दळ भाँजिया,
वीर भागो नही साखागा ।।
दुझल जिण भुजावल हूत आठूं दिसा
लंघ सामंद कीधी लडाई ।
जीत लीधी जमी कठैथी जेण री
पराजै हुई नह, फतै पाई ।[2]

छुटै सारै वाज सार घड घड पडै धारो धार
आम्हों साम्ही आरीठ, त्रिपुरा रिपां माथे तीढ
पल रिप वहै जलधर पळा, असुरा धरां कीध उपाळ
माभी रगतवीज मसत्त, रिणवट माहि रहीयो रत्त
एकण वूंद हु अवतार, ऊठै लप देत अवतार
वाधी जेम झपती वाव, ऊमया कीयो उपाव
पुगो नही गंग पताळ, पपोयो पलक ले पेगाल
रिडियो नही भोम रगत, पीवे डाच भर भर पत्र
पपीयो रगतवीज सुपेंत, नारी जंग वांधे नेत

जै जैकार जपीये जीह, सुर किनर साचा स्त्र वदीह[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कवियों की रचनाओं में अनेक स्थलो पर युद्धवर्णन विद्यमान है । ये वर्णन अत्यन्त सरस एव गत्यात्मक हैं । वीर रस से सरोवार ये वर्णन अत्यन्त सजीव एवं स्वाभाविक हैं । इन युद्ध-वर्णनो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक,

---

१. अभेगुण ग्रथ (कवि प्रयाग), पृ० स० १८८ ।
२ रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ), पृ० स० ३१ ।
३. माताजी रो छद (कवि बीका), पृ० स० १७ ।

लोकोक्ति आदि अलंकारों की सहायता से प्रसाद–गुण–सम्पन्नता लाकर ओज के साथ प्रसाद गुण का सुन्दर मेल प्रस्तुत किया गया है। युद्ध के सहकारी भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाच, डाकिनी–साकिनी भैरव चुडेल, शिव, चंडी आदि वीभत्स, भयंकर एव अद्‌भुत रस के उत्पादक वन गये है । नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्रों के संचालन से गत्यात्मक चित्र पाठक को वीर रस के उत्साहमय वातावरण मे उपस्थित कर देते है । इन वर्णनो मे कवियो की वहुज्ञता, उर्वर शक्ति एवं वर्णन–चातुर्य का श्रेष्ठ उदाहरण मिलता है ।

प्रकृति वर्णन

वीर रस के अधिकांश ग्रंथो में प्रकृति-वर्णन को निक्षेप करके ही स्थान दिया जाता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि युद्ध वीरता के प्रसंग के वीच प्रकृति की माधवी लीलाओ का अकन सभव नही हो पाना है । इस कारण ऐसे ग्रंथो मे प्रकृति के उपकरण प्राय: उपमान रूप मे ही आते है । फिर शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित ग्रंथों में प्रकृति का वर्णन कही कही देखने को मिल जाता है । यथा—

> दिन हेकम पारध दिसै, चढ आया चन्द्रमड
> अवला दीखी अेकली, षित माहे वन खंड ॥[1]

सामाजिक एवं सांस्कृतिक वर्णन

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं मे तत्कालीन सामाजिक जन–जीवन का वर्णन पर्याप्त मात्रा मे देखने को मिल जाता है । विवाहोत्सव एवं मंगलाचार, वधावा एव स्वागत तोरण कलश. गीत एवं गान संगीत और नृत्य, भोजन एव महफिल, पहलवानी एवं शिकार आदि के अनेक वर्णन इन ग्रथो मे विद्यमान है । यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये वर्णन अत्यन्त ही विस्तृत एवं प्रभावपूर्ण है तथा इनके द्वारा समाज एवं संस्कृति पर अच्छा प्रभाव पडता है ।

---

१. माताजी रो छंद पृ० सं० १४

रूप एवं आभूषण-वर्णन

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित काव्यो मे वीर रस, भक्ति रस, वीभत्स रस आदि विभिन्न रसो के अतिरिक्त शृंगार रस की भी यत्र तत्र छटा अंकित की गई है । एक ओर जहां वीरो और योद्धाओ के तेजस्वी रूप का अकन है, वही दूसरी ओर पोड-सियो एव सुन्दरियो के अनुपम सौदर्य का नख-शिख वर्णन भी विस्तार से वर्णित है । इस रूप-वर्णन मे कही रीतिकालीन एवं परम्परागत उपमाओ को स्थान दिया गया है तो कही कही नवीन उद्भावनाओ का आयोजन भी किया गया है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत किया हैं—

उमग उदारसू जी ते-सव हुआ जान तियार
मदनकुमार सा जी सज अतुल कर सिणगार
सिणगार कर दुति विहस, पूषण जगे भूषण जोत
पप पूर जाणे विवध संपत, अवध कीत उद्योत ।[1]

देवीरूप वर्णन

अभग अवला वली, वेस कीधा वली
केस गूंथे कली, भाग सीस मलहली
भाल चपे भमली, नासिका नृमली
ओपे डसणावली, पान मुख प्रमली ।[2]

शृंगार वर्णन

उठी ! उठी ! गोरि करि सिंगार । लाखणऊ काचवउ नव-सर हार
पहिर नु चोली नवरंगी, वावन चंदन अग सउहाई ।[3]
"हसवाहणि मिग-लोचनि नारि ।।[4]

चरित्र

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ में पात्रो के चरित्र

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० ८१ ।
२. माताजी रो छद (कवि बीका), पृ० सं० १७, ह० लि० प्र० से ।
३. बीसलदेव रासो, पद सं० ६४ ।
४. वही, पद स० १ ।

का विशद वर्णन हुआ है। यह वर्णन अत्यन्त ही सरस एवं प्रभावोत्पादक भी है। एक ओर नारी का चित्रण कही माता के रूप में, कही बहिन के रूप में, कही पत्नी के रूप में उभरकर आया है तो दूसरी ओर पति के रूप मे, वीर के रूप में, एवं मानवीय गुणों से परिपूर्ण रूप मे मनुष्यों का चरित्र भी इन ग्रंथों में स्पष्ट है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

मई घणी । थार मिल्हीय आस ।
महला राजा थारउ कीसउ हो वेसास
तो दूं दासी करि गीणी । सगा सुणीजी मांहि ना गमीमा ।[1]

सीता का चरित्र

सरवथा रहूँ नह कठैई साम । हूं
साम ! हूँ चालसूं आप साथे
पथ कर सूं ग्रहण वंदगी,
प्रेम सूं बले वृत नेम पालूं ।
जाणजे भरोसो छोड़ नह जावस्यो
जावस्यो छोड़ तो देह जालूं ।।[2]

लक्ष्मण का चरित्र

मन एह धारी राम रे, संग चालस्यूं घनश्याम रे
करस्यूं जुं किंकर काम रे, हर ! पूरसो मन हाम रे ।[3]

संबंध निर्वाह

आचार्य शुक्ल के अनुसार प्रबंध काव्य की सबसे बडी कसौटी है संबध-निर्वाह । प्रवन्ध काव्य मे कथा का प्रवाह अखंडित होना चाहिए तथा अधिकारिक एवं प्रासगिक कथाओं का जोड़ अच्छी तरह मिला हुआ चाहिए । प्रासगिक कथाओ का एवं अधिकारिक वस्तु

---

१. वीसलदेव रासो, पद सं० १७ ।
२. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० १०५ ।
३. वही, पृ० सं० १०७ ।

का ऐसा संबंध होना चाहिए कि कथावस्तु के प्रवाह में कही भी विराम न दिखाई पड़े ।[१]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित प्रबन्ध काव्यो में संबध निर्वाह सफल बन पडा है । उदाहरणार्थ–माताजी रो छद मे संभ निसभ का पार्वती से युद्ध की कथा, अभैगुण ग्रंथ मे युद्ध वर्णन, वीसलदेव रासो मे वीसलदेव और राजमति का प्रेम–वर्णन आदि ।

प्रत्येक घटना–प्रधान प्रबंध काव्य का एक कार्य होता है जिसके लिए समस्त घटनाओ का आयोजन होता है । कार्यान्विय के अन्तर्गत अरस्तू के अनुसार आदि मध्य और अन्त तीनों स्पष्ट होने चाहिए । आदि से आरभ होकर कथा–प्रवाह–मध्य मे जाकर कुछ ठहरा सा जान पडता है फिर कार्य की ओर मुड जाता है ।

"अभैगुण" ग्रंथ की कथा मे हम इन तीनों अवस्थाओ को मोटे रूप मे अलग अलग बता सकते हैं । इसी प्रकार बीसलदेव रासो, रघुनाथरूपक गीता रो एव माताजी रो छद मे एक इतिवृत्त रूप देखने को मिलता है ।

अभैगुण ग्रंथ मे सूर्यवश की वंशावली से लेकर राठौडो की जोधपुर राज्य–स्थापना की समस्त कथा आदि मारवाड–राज्य की स्थापना से महाराज अभयसिह जी के ऐश्वर्य वर्णन तक की कथा मध्य और सरविलद खा के विरुद्ध युद्ध करने के निश्चय से अहम-दावाद युद्ध–विजय की घटना एवं महाराजा अभयसिह जी का प्रभुत्व–वर्णन अन्त है ।

ठीक इसी प्रकार रघुनाथरूपक गीतां रो में कवि मछ द्वारा प्रतिपादित मगलाचरण से लेकर राम का जन्म होने से लेकर रावण को मारकर वापिस आयोध्या मे आना एव प्रजा को सुखी बनाने की कथा एकसूत्र मे है, यद्यपि बीच बीच मे कवि मंछ ने कविता के गुण, लक्षण आदि बताने का प्रयास किया है फिर भी सबध-निर्वाह की दृष्टि से यह ग्रंथ काव्य–कसौटी पर खरा खतरा है ।

---

१. जायसी ग्रथावली–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० स० ७४ ।

संबंध–निर्वाह के अन्तर्गत इस बात पर भी विचार करना आवश्यक है कि कवि ने मार्मिक परिस्थितियों के वर्णन और चित्रण के लिए जो आवश्यक विराम प्रस्तुत किए हैं, उनके अतिरिक्त ऐसे अनावश्यक विराम कौन कौन से है जो रसात्मकता मे बाधक हैं और केवल पाडित्य-प्रदर्शन के लिए, केवल जानकारी प्रकट करने के लिए केवल अपनी अभिरुचि के अनुसार असावद्ध प्रसंग छेड़ने के लिए या इसी प्रकार की और बातो के लिए है ।

ऐसे ही कुछ अनावश्यक विराम अभैगुण ग्रंथ मे देखने को मिलते है । उदाहरणार्थ-घोडे व हाथियो के विभिन्न प्रकारों की सूची, विभिन्न प्रकार के वाहनो, व्यजनों एव अस्त्र–शस्त्रो की सूची, वस्त्रो के विभिन्न प्रकारो की सूची, विभिन्न प्रकारो के वस्त्रो की जानकारी का प्रदर्शन आदि । स्पष्ट है कवि डिंगल काव्य मे चली आती हुई इस भद्दी परम्परा का त्याग नही कर सका ।

सवध–निर्वाह के दृष्टिकोण से फिर भी सक्षेप मे यह कहना चाहूँगा कि कथाओ के दृष्टिकोण से शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित प्रबंध काव्य उपयुक्त है ।

वस्तुत: शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित प्रबन्ध काव्य ग्रथो की सख्या गिनी–चुनी है फिर भी विषय–क्षेत्र की व्यापकता, भावनाओ की विविधता एव शैली की बहुरूपता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

मुक्तकत्व

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है "कि मुक्तक मे प्रबन्ध के समान रस की धारा नही रहती, जिसमे कथा–प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है, जिनसे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है । यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है । इसी से यह सभा-समाजो के जिए अधिक उपयुक्त होता है ।[1]

---

१. साहित्यिक निबन्ध–डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० स० ३५६ ।

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने प्रवन्ध और मुक्तक को दोनों की स्वतंत्र सत्ता और स्वतंत्र विधा माना है ।[1] यह वात कुछ उपयुक्त जान पड़ती है । मेरे विचारों से प्रवन्ध और मुक्तक चूंकि दोनों स्वतंत्र विधाए है, अतएव यह कहने मे कदापि संकोच नही करना चाहिए कि दोनों का अपने अपने क्षेत्र में अलग अलग अस्तित्व है क्योकि जहाँ रसानुभूति का प्रश्न है, वहां तो रचना का रूप चाहे प्रवन्ध में हो अथवा मुक्तक में यदि रचना हृदयद्रावक है तो निश्चय ही उससे रस-निष्पत्ति होगी ।

डॉ० सरनामसिंह शर्मा "अरुण" के अनुसार जिन छंदों मे राजस्थान के मुक्तक काव्य का वैभव निहित है, वे हैं दोहा, सोरठ और कुंडलिया ।[2]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने जो मुक्तक-काव्य-सर्जना की है, उनके विषय भी अलग अलग रहे हैं। उनका कोई निश्चित रूप या निश्चित शैली नही है, अत' उसके रूप-भेदों की सख्या अगणित है । इन कवियों द्वारा रचित मुक्तक-साहित्य को हम चार शीर्षकों मे वांट सकते हैं ।

(१) भक्ति एवं वैराग्य संवंधी मुक्तक
(२) वीर रस के मुक्तक
(३) नीति सम्वन्धी मुक्तक
(४) रागाश्रित मुक्तक

भक्ति एवं वैराग्य सम्बन्धी मुक्तक

हमारे आलोच्य कवियों द्वारा जो मुक्तक-साहित्य रचा गया उसमें मुख्यतः गुरु भक्ति, ज्ञान, परिचय, चेतावनी, माया, कुसंगति, विरक्ति, ईश्वर-प्रेम, विरह आदि विपयों का निरूपण हुआ । कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं—

मरुधर देश शहर जोधाणे, पहाड़ पचेटिये घाम ।

---

१. वही, पृ० स० ३५६ ।
२. राजस्थान-साहित्य परम्परा और प्रगति, पृ० सं० ४६, डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' ।

जो जब आवे शरण तिहारी, पूरण कीजे काम ।।
भक्त उभारन, दुष्ट संहारण, धारण कर तरवार ।
भूमि भार उतारण कारण, लियो सगत अवतार ।.[१]

उपरोक्त पंक्तियों मे कवि की अनुभूतियो की तीव्रता के कारण पर्याप्त सरसता आ गई है । इसके अतिरिक्त कवि हरिनारायण पुरोहित सूक्ष्म विषयों का निरूपण भी स्थूल रूपको के माध्यम से करते है, जिससे वे सहज ही अनुभूतिगम्य हो सकते है—

जब दानव फेल करे जग मे,
प्रभु धरे मनुज अवतारा है ।
सुख करे, हरे दु:ख दैत्य डरे,
भूमि का भार उतारा है ।[२]

कवि तेज के शब्दो मे

माया घड़ी पलक मे वीते, काया कनक वृथा मत खोय
पुरुष जनम जग मे दोहलो जीवडा,
सबसे हिलमिल आप सरीखा होय ।[३]

प्रात समे गंगा का दरशण कर मन परशण होई जाई रे
गंगा तो भागीरथ लायो सिर से लहर चलाई रे
सीव भरमा नारद सनकादिक रूसि मुनि करे बडाई रे
गगा घाट घाट मे लाघण, नकल रमा न कराई रे ।[४]
कण कीड़ी कुं देत हमेशा सनजी वीपती देओ टार
नीश्चे चीतकर कथा ऐ सुनो सनीचर की नरनार
जा घर संकट कदे न व्यापे होत हमेसां मगलाचार
गुरु देवों की किरपा ते कथे ख्याल सचे सीठार ।[५]
कहे भूप ईसी वीधी सब शन कुं ध्यावो

---

१. ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित) पृ० स० २ ।
२. वही, पृ० स० १५ ।
३. कवि तेजकृत गायन पृ० स० ३५ ।
४. ह० लि० पोथी (कवि देवीचद), पृ० स० १७ ।
५. शनिश्चर जी की कथा (रामरिख),

सव वीघन करेला दूर ध्यान चीत ल्यावो ।[1]

तेज कवि तो संसार को वतलाना चाहता है कि संसार की माया एक घडी या एक पलक में ही चली जायेगी, इसलिए हे प्राणी अपनी सोने रूपी काया को व्यर्थ मे ही मत गंवाओ । पुरुष जन्म ससार मे वडी मुश्किल से मिलता है अतएव सवसे हिल मिल कर रहो और उन्हे अपने समान ही समझो । शैली की विशेषता के कारण कवि तेज की उपरोक्त पक्तियां काव्यात्मकता से ओत-प्रोत हो गई हैं । माया की नश्वरता का चित्रण कवि ने वहुत ही मनोरजक खीचा है ।

वीर रस के मुक्तक

राजस्थानी कवियो द्वारा डिंगल भापा में वहुत से वीर रसात्मक काव्य रचे गये । यद्यपि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाएं भक्ति रस से अधिक ओत-प्रोत है वीर रस की वहुत ही कम, किंतु फिर भी कुछ अंशो में वीर रस की झलक स्पष्ट देखने को मिल जाती है । उदाहरणार्थ—

मचे दिल्ली रा चकत दिल्ली दिसां धमचक्का मचे
सभाले कायरां धरा सूरां चढे सोह
धवै नाला भ्राडा भडी घडी धूजे धरा
छूटै है वाणा गोली राम चंगिया छछोह ।[2]
देखा जो जग मे मरदो का ही जस है
मरद कहाने योग्य वही है जिसकी आन रहे ।[3]

नीति संवंधी मुक्तक

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित राजस्थानी साहित्य में यद्यपि नीति संवंधी मुक्तक काव्य-ग्रंथ तो देखने को नही मिलते किंतु फिर भी नीति विपयक दोहे, छप्पय, गीत अथवा कुछ पंक्तियां उनकी रचनाओ मे देखने को अवश्य मिल जाती हैं । कुछ उदाहरण निम्नोक्त है—

---

१. वही पृ० स० १० ।
२. ह० लि० (कवि वृंद), पृ० स० ४ ।
३. ह० लि० (कवि नथमल), पृ० स० ५ ।

अब संचन मिल करो सुरीति, फजूल खरच मिटावो
देस जात का करो सुधारा जीवन सफल बणावो ।[1]

देशी बोलणा अमरत बोल मुसाफर बोलणा मीठा
छण रसना में बसे तो इमरत, इण मही जहर अडोल ।[2]

मधुर बचन धन सब जुग जोवत तन मन बढतो तेल
आदर दादर मेघ खुसी सब मेघ पवैयो कोयल ।[3]

कीड़ी कंजर कंतवो, जीव बराबर जांण
अपनो सरीखी आतमा, पेला तंणी पीछांण ।[4]

मीठी राखो मानस से माकर इमरत समान
जहर न भावो जीव से मेल दियो अभिमान
मेल दियो अभिमांन, ध्यांन समरण कर धारो
जग बीतो जाय, राम से है निसतारो ।[5]

रागाश्रिक मुक्तक

रागाश्रित मुक्तक से तात्पर्य है, जो मुक्तक रागों पर आश्रित हो । हमारे आलोच्य कवियो ने भी रोगों पर आश्रित कई मुक्तक-काव्यों की रचना की है । यद्यपि ग्रंथ तो गिने चुने ही है किंतु साथ ही दोहा, छप्पय गीत आदि अनेक रूपों मे इसकी स्पष्ट झलक देखने को मिलती है । कवि हरिनारायण द्वारा रचित अनेक भजन, पद आदि रागों पर ही आश्रित हैं । इसी तरह कवि केवलराम कृत 'रामलीला पूर्णतः करीव करीब रागों पर ही आश्रित है । इसके अतिरिक्त कई कवियों ने भी रागाश्रित दोहे, छप्पय, गीत, स्तुतियो आदि की रचनाएं रागाश्रित ही रची है । कुछ रागाश्रित संबंधी मुक्तक प्रस्तुत है—

---

१. नैन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० सं० ५६ ।
२. ह० लि० (कवि देवीचंद), पृ० सं० २१ ।
३. वही, पृ० सं० २१ ।
४. ह० लि० प्र० (कवि परसराम), कुंडलिया सं० १० ।
५. ह० लि० प्र० (कवि परसराम), कुडलिया स० १२ ।

(राग कालिगडो) पद महादेवजी को
जाणे गंग जटा वीच धारी पूजन कर त्रपुरारी
तन मन जाको ध्यान धरन है मन वंछित फल सारी
भाल चंदर चंदन चरयाये तीन नैन अधिकारी
नीलकंठ मुंडमाल विराजे अरथ गाऊं गियारी
अंग ववूत सेस लपटाने कर ककन त्रसूलारी
डमरू डिमडिम पीताम्वर कंट पादे जरी दुपटा
आक धतुरा अमल अरोगे पीवत भंग मजारी
वाहन वैल कैलास के वासी 'केवल' वाछित्र भारी ।[1]

अलंकार

काव्य में जहां अनुभूति का प्रवल वेग होता है, वहां अलंकारों की खोज नही करनी पडती, उसके लावण्य-सागर को अभिराम वनाने के लिए उसकी चंचल तरगे ही काफी हैं, उसे अन्य गहनों की आवश्यकता नही। किन्तु काव्य मे ऐसे भी स्थल होते हैं, जहा अनुभूति शिथिल रहती है और प्राय: नीरस पदों की शिथिलता प्रगति के रूप मे प्रकट होती है। ऐसे स्थलों मे ही प्राण-संचार करने के लिए अलंकारों का उपयोग उचित है।

इसमे कोई सदेह नही कि अलंकारो को अधिक अपनाने से कविता अलकारो से लदी हुई निर्जीव कामिनी के तुल्य प्रतीत होती है, परन्तु अलंकार जव कथन की प्रणालियां हैं, कहने के ढंग हैं तव फिर इनसे रहित काव्य की रचना में कुछ कमी अवश्य खटकती है। भले ही अलंकार-काव्य के अस्थिर धर्म माने जाते हैं परन्तु इनके विना काव्य में चारुता एवं उत्कृष्टता नही आती। यही कारण है कि काव्य मे रीति, वृति एवं गुण की भांति अलंकारो को भी वड़ा महत्व दिया गया है। छोटे, वडे सभी कवि इनको अपनाकर चले हैं और इनसे काव्य की शोभा-वृद्धि ही हुई है।

अलकारो से काव्य मे उत्कृष्टता आती है, भावाभिव्यक्ति भी अधिक उन्नत एव प्रभावशालिनी हो जाती है और ऐसे

---

१. रामलीला (केवलराम), पृ० सं० ५०-५१।

ही अलंकार रसास्वादन एवं सौन्दर्यानिभूति में अधिक सहायक होते है। साधारणतया कविता मे दो प्रकार के मुख्य अलंकारों का ही सर्वाधिक प्रचलन है। पहले प्रकार के अलंकार शब्दालंकार और दूसरे प्रकार के अलंकार अर्थालंकार कहलाते है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का भाषा पर अधिकार रहा है। वे उसको काव्योचित स्वरूप देने में अत्यंत पटु थे। शब्दों के प्रयोग में इन कवियों ने जिस अद्‌भुत कुशलता का परिचय दिया है, वह उन्हे श्रेष्ठ कवियो में प्रतिष्ठित करती है। अलंकारों का प्रयोग भी इन कवियों ने अत्यंत कुशलता से किया है। जिन-जिन अलंकारों का प्रयोग इन कवियो ने किया, वे कुछ निम्नोक्त है—

वैण सगाई

शब्दालंकारों का प्रयोग इन कवियों ने प्रचुर मात्रा में किया है। डिंगल काव्य-शास्त्र के अनुसार वैण-सगाई तो प्रत्येक चरण में अनिवार्य ही है। डिंगल कवियों ने वैण सगाई का प्रयोग जिस तत्परता एवं कड़ाई से किया है, उसके कारण यह अलंकार काव्यतत्व के रूप में ग्रहीत किया जाने लगा है। हमारे आलोच्य कवियो ने भी वैण सगाई का कट्टरता से पालन किया है। वैण सगाई के सभी प्रकारों के उदाहरण इनके द्वारा रचित ग्रंथों में विद्यमान है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अन्तिम शब्द के आदि में आता है, कभी मध्य में और कभी अन्त मे। इस दृष्टि से वैण सगाई के तीन भेद होते है—

(१) आदिमेल मे चरण के पहले शब्द और अन्तिम शब्द के आदि के वर्णो का मेल दिया जाता है—यथा—

(क) मरद जिकै संसार मे, लखजै जीव विसाल।
रात दिवस रघुनाथ रा, लेवै नाम रसाल॥[1]

(ख) रुगनाथ रूपक जोयो रे नर, सार काडीयो सांज।
कूंसी है कविताई की मिलै, तो पावे मांज॥[2]

---

१. रघुनाथरूपक गीताँ रो, कवि मछ, पृ० स० ३५।
२. बालक पीरथी बोध, कवि लच्छीराम, पृ० सं० १।

(२) मध्य मेल वैण सगाई में चरण के प्रथम शब्द के आदि के अक्षर को अन्तिम शब्द के मध्यम अक्षर का मेल किया जाता है । यथा—

(क) नाम लिया थी मानवां, सरकै कलुष विसाल ।
महु जैसे मेटै तिमिर, सरम परस किरमाल ॥[१]

(ख) वीर हाक वापरै, धीर जूट षगधारां[२]

(ग) कीयौ बोल बाला यूं विलदखा विहाल कीयौ ।[३]

(३) अन्तमेल वैण सगाई मे चरण आदि के और अन्त के अक्षरों को मिलाया जाता है । यथा—

(क) राहै सो भो वीरवर तुरको सिर तरवार ।[४]

(ख) रूगनाथ चरण कुंतारी ।[५]

कुछ उदाहरण ऐसे भी प्रस्तुत हैं जिनमें वैण सगाई चरण के आदि मे और अन्त के अक्षरों के पहिले मिलाई गई है । यथा–

(क) कीवताई जो नर करै सीत मेरा कोसांण ।[६]

(ख) अरध मेल अखरोट इक, चल तुक किण कवि चाल[७]

(ग) जोड़ कहे हरी नाम ने रे जपूं मैं आठं जाम ।[८]

शब्दालंकार

वैण सगाई के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण अलकार, जिसका, प्रयोग हमारे आलोच्य कवियो की रचनाओ मे हुआ है अनुप्रास है। एक वर्ण की अनेक वार आवृत्ति वाला वृत्यानुप्रास तो कई रचनाओं मे देखने को मिलता है । इसी प्रकार अनेक वर्णों की एक वार आवृत्ति

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो कवि मछ, पृ० सं० ३४ ।
२ धमंगुण (कवि प्रयाग), छ० स० १८८ ।
३. वही, छं० स० २७२ ।
४. धमंगुण (कवि प्रयाग), छ० स० २८३ ।
५. वालक पीरथी वोध–कवि लच्छीराम, पृ० सं० ८ ।
६. वही, पृ० स० ६ ।
७. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० ३५ ।
८. ह० लि० (कवि हरिनारायण), पृ० सं० २३ ।

वाला छेकानुप्रास का प्रयोग भी कई रचनाओं मे हुआ है। अनुप्रास के कुछ उदाहरण शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं से प्रस्तुत हैं–

वृत्यानुप्रास

"जननी उदर में जनम लियो जद"[1]

हां रे लाला कवि रोखमराम री वींनती रे
तुम सुनियो हां रे हा रे तुम सुनियो श्रवण मुरार रे
म्हारे उपर कीरपा कर दीजो रे, सतसंगत हां रे हां रे
सत संगत निज सार रे सावरीयो नागर नद को रे।[2]

वडा संभ निसंभ दांणव बजाया,
धणी सकति सुप सैलवन सैल धाया।[3]
रसना रांम रटो रंग रोल।[4]
मीठी राखो मानख से, साकर अमरत समान।[5]

श्रुत्यानुप्रास

राम नांम तूं जप्प, आसरो एक हैं उणारो।[6]
यहां श्रुत्यानुप्रास अलंकार है।

अन्त्यानुप्रास

वयणै सिंभ वषांणीया, वड गात वडाई
सुरस धीरां संकज भड, अस तेज उठाई
हैवर गैवर पायदल ठावी ठकुराई
जेरे चालै निसंभ सिंभ भड वंका भाई।[7]

---

१. ह० लि० (देवीचद), पृ० सं० १४।
२. ह० लि० प्र० (रामरिख), पृ० सं० ८।
३. माताजी रो, छद (कवि वीका), पृ० सं० १७।
४. ह० लि० (देवीचद), पृ० सं० ३२।
५. ह० लि० प्र० (रुगनाथ)' पृ० सं० १५।
६. ह० लि० (कवि परसराम), कु० सं० १२।
७. माताजी रो छद (कवि वीका) पृ० २७।

चरणान्त में ईवर्णों की प्रधानता होने से अन्त्याप्रास अलंकार है।

हटो अमल से दूर खांवता लागै खारो रे
जावे ज्या चढै जीव परपस है व्हारो रे ।[1]

चंड मुंड भैसासुर भंजन मदु कटप लियो भार
धुरप राक्ष को धूड़ मिलायो देव करै जयकार ।[2]

श्लेष

कीड़ी कंजर, कंतवो, जीव बरावर जाण
अपनी सरीखी आतमा, पेला तणी पीछाण ।[3]

उपरोक्त पंक्तियों मे जीव के दो भिन्न अर्थ हैं । एक अर्थ केवल कीड़ी, कंजर कंतवो आदि जीव से है और दूसरा अपनी आत्मा के लिए भी है । अतः श्लेष अलकार है ।

लाटानुप्रास

जरदो सपूत कदे ना खावे ।
पूत कपूत रोज पधरावे ।।[4]

उपरोक्त पक्तियो मे पूत शब्द दो बार आया है । दोनों बार अर्थ एक ही है अतएव लाटानुप्रास है ।

पुनरुक्तवदाभास

कांची काया कुंभ ज्यूं फटके जासी फूट[5]

यमक

वीसहथी आगल वीनती वार वार कीधी वीनती
वचन दो कर जोड़े वीनती, वचन दियौ सांभळ वीनती ।[6]

---

१. ह० लि०, प्र० स० २८ कवि देवीचद ।
२. ह० लि० पृ० सं० ४५ कवि रामरख ।
३. ह० लि० प्र० (कवि परसराम) कु० सं० २० ।
४. ह० लि० प्र० (कवि रामरीख), पृ० सं० ८ ।
५. ह० लि० (कवि परसराम), कु० सं० १४ ।
६. माताजी रो छंद (कवि वीका) ह० लि० प्र० ग्रं० ४४५२ (११) पत्र १८ रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर ।

अर्थालंकार

जहा अर्थ के कारण काव्य में चमत्कार की सृष्टि होती है, वहां अर्थालकार होते है । ये काव्य के चित्र–धर्म कहलाते है । इनके बिना शब्द–सौन्दर्य भी मनोहर नही लगता । इनकी योजना के लिए सभी प्रकार के साहृश्य पर ध्यान रखा जाता है । उपमा, रूपक, व्यतिरेक आदि अर्थालकार होते है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ में भी अर्थालंकार प्रचुर रूप मे विद्यमान हैं । इनके ग्रंथो में एक से एक सुन्दर उप–माये देखने को मिलती हैं, जो परम्परागत न होकर मौलिक हैं । नीचे अर्थालंकारो के कुछ उदाहरण इनकी रचनाओ से प्रस्तुत है ।

रूप साहृश्य

(१) राम वरण जुग–रूप सह वरणा सिरताज ।
रहै मुकटमण रोज, आषर अवरां ऊपरै ॥[1]

(२) वारद विधुत वरण पीत अरू धरण नीलपट ।
तरह मदन रततणी, देख दिल दरप जाय दट ॥[2]

(३) पत आलम्बन प्रिया प्रिया का आळंबन पीव वर
हेक प्राण दुय देह, प्रीत अणरेह परसपर ॥[3]

(४) गुणां करै रीझव गुणी कवसल राजकवार ।
जिकण जिसो फिर जगत में, अवर न कोय उदार ॥[4]
–गुण साहृश्य

(५) विपत बिडारन भगत उवारन सकल सुधारण काम
जोधाणे जूनी मंडी विराजे आलीजा ज्यूं घनश्याम ॥[5]
–गुण साहृश्य

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० २ ।
२. वही, पृ० ३९ ।
३. वही, पृ० ३९ ।
४. वही, पृ० ३६ ।
५. ह० लि० (हरिनारायण) पृ० सं० १७ ।

(६) चेत हाथ तन हीरो आयो,
रंगा रंगे राम के रंग मे ।[१]—रंग सादृश्य

(७) नशा निज नाम का छाया
नशा फिर भग क्या बाकी ।[२]—रंग सादृश्य

(८) जैसे चन्द्र चकोर ज्यूं रे न्यारो ना नारे ।[३]—उपमा

मालोपमा

(९) माने ना मतंग मनडो घूमे मतवारो रे
छिन मे प्रवीरा छिन माया से मलीन मन
छिन मे ही दीन हाथ ओर से पसारो रे
छिन मे वराात भूप छिन मे अनंतरूप
दौड़त है जैसे धूप छायो अधियारो रे[४]

लुप्तोपमा

(१०) वरसा वैरण वन आई ।[५]

रूपक

(११) सगत तणा गुणसार आपा लग आषीस अनंत
पावे ना कोई पार वडे प्रवाडे वीसहथ ।[६]

संदेह

(१२) उमा कह्यो इम ईस नै उपज्यो विभ्रम ऐह
किंकरी ऊपर महर कर, संकर मेट सदेह ।।[७]

उल्लेख

(१३) अचलरूप अवतार जोति जल मे झगमग्गिय
ते प्रतिवंद पसार काष्ट चकमक विच अग्गिय
अभय करन अवतार सुरन हित विर विर तुढ्ढिय
चढ भगतन की वार बुधा अम्वर पह वुढ्ढिय

---

१. ह० लि० प्र० (कवि नथमल), पृ० सं ६ ।
२. वही, पृ० स० ७ ।
३. ह० लि० प्र० (कवि रामरीख), पृ० स० ५ ।
४ नथमल भजनावली, पृ० सं० १४ ।
५. वही, पृ० स० १४ ।
६. माताजी रो छद, पृ० सं० २० (कवि वीका) ।
७. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० ५६ ।

कवि तेज कृष्ण कह कालिका जोति रूप जग जाग जामंनि
कर कोप दुष्ट दलदलन ज्यों, कंस वंस पर दांमनी[1]

रूपक

(१४) मोहन राधा प्यारी, वो तो वरसाने की नारी ।[2]

(१५) प्रथम अग से तीन रूप धर अलग नाम माया इसकी
ब्रह्मा के सावत्री विष्णु लक्ष्मी शिव सग पारवती ।[3]

(१६) ऊठै सुण अंगद वयण, विग्रह कज रघुवीर
ओपे गज घड ऊपरां, कोपे जाण कठीर[4]—उत्प्रेक्षा

(१७) उमग उदारसूजी ते सव हुआ जांन तियार,
मदनकुमार साजी सज सज अतुल कर सिणगार ।
सिणगार कर दुति विहस पूषण जगे भूषण जोत
पष पूर जाणै विवध सपत अवध कीत उदोत ।[5]
ललितोपमा, उत्प्रेक्षा

(१८) चौमासे जाणै गज चढियो
बादल इंद्र वणाय ने ।[6]—उत्प्रेक्षा

(१९) तवै हुकम गदगद व्याकुल तन,
नृभवण सुतन पालजै नेम ।
सुन सिरनांम चले वन साऊ,
जंगल राम वटावूं जेम ।।[7]—उपमा

(२०) हजारूं साठ खोले चसम पल हिकै
कपल मुनि श्राप दे भसम कीधा
सुतण ज्यूं सगर रा ।[8]—उपमा

---

१ आईनांथ अडतालीसी, कवि तेज, पृ० स० ३–४ ।
२ तेज कवि कृत गायन, पृ० स० ११ ।
३. वही, पृ० स० ३० ।
४. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ),
५. वही, पृ० सं० ८१ ।
६. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० ८७ ।
७ वही, पृ० १०१ ।
८. वही, पृ० १३२ ।

(२१) दुनीयां में देखा सार वही कलदार रुपैया चांदी का ।टैर।
यही ईश्वर अवतार ।यही ।कलदार।
हर जांपे जाकर देख लिया, एक करामत कलदारों की ।।
राहा धर्म कर्म नीत नेम यही ।।कलदार।।[1]
अतिशयोक्ति

(२२) सुर नर पार पावै हरी की गती का वश क्या वतावे जो नर मतीका[2]—अतिशयोक्ति

(२३) याद करे कृत आगला नरकां पड़यो गेवार ।[3]–निदर्शना

(२४) राड तोरी जाय पल में भांडपन दिखलायके ।[4]–निदर्शना

(२५) दुखी देख उनकु कैई जन दुकवट को देनरनार ।[5]
— भांतिमान

साराश यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने प्राचीन एवं नवीन सभी प्रकार के अलकारों का प्रयोग किया है परन्तु उनका विशेष झुकाव प्राचीन अलंकारो की ओर ही अधिक रहा है और उसमे भी इन प्राचीन अलंकारों में उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक अलंकारों को ही अधिक अपनाया है ।

छंद–विधान

काव्य में छंद का वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । सम्पूर्ण पद्य–साहित्य का मूलाधार छद ही है । प्राकृत कवियों ने मुक्तक रचना के लिए गाथा छन्द चुना । गोवर्धनाचार्य और संस्कृत के अनेक मुक्तककारो ने आर्या छद को भाव–वाहन का माध्यम बनाया । अमरुक ने 'शार्दुलविक्रीडत' छंद पसन्द किया ।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने कविता और छंद के सम्वन्ध को निम्न पंक्तियो में वहुत अच्छी तरह दर्शाया है—

१. ह० लि० पो० (कवि देवीचंदजी), पृ० स० २० ।
२ नथमल भजनावली (नथमल), पृ० स० ४ ।
३. तेज कवि कृत गायन–कवि तेज, पृ० ३७ ।
४. वही (कवि तेज), पृ० ४४ ।
५. श्री सनीसरजी की कथा (रामरीख), पृ० १७ ।
६. विहारी एक अध्ययन–रामरतन भटनागर, पृ० ४७ ।

'कविता और छन्द में घनिष्ट सम्बन्ध है । कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छद में लयमान होना है । जिस प्रकार नदी के तट अपने बधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते है जिसके विना वह अपनी ही वन्धन-हीनता मे अपना प्रवाह खो वैठती है—उसी प्रकार छंद भी अपने नियन्त्रण से, राग को स्पंदन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दो के रोडो में एक कोमल, सजल कलरभे भर उन्हे सजीव बना देते हैं । वाणी की अनियन्त्रित सांसे तालयुक्त हो जाती है उसके स्वर मे प्राणायाम, शब्दों मे स्फूर्ति आ जाती है राग की असम्वद्ध झंकारे एक वृत्त मे वंध जाती है और उसमे परिपूर्णता आ जाती है ।'[1]

छंद काव्य का शृंगार है । छंद के सुमधुर प्रसाधनो से सज-कर कविता कामिनी अदभुत सौन्दर्य को प्राप्त होती है उसकी गति में एक मनोहारिणी झंकार आती है, वह कान्ता कोमल स्वर से परिपूर्ण होकर कर्ण प्रिय हो जाती है तथा श्रोता के हृदय पर अनायास ही अपना अधिकार कर लेती है । तथा उसमे अत्यधिक भाव-प्रेषणीयता आ जाती है, जिससे उसे भावुकजन शीघ्र ही याद कर लेते हैं ।

अतएव अव छन्दों का विवेचन करते हुए यह देखने की चेष्टा की जाएगी कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने अपने भावो के निरूपण के लिए कैसे कैसे छंदो का प्रयोग किया है और वे भाव-निरूपण मे कहा तक सफल सिद्ध हुए है ।

वरतारो छंद पद्धरी

कवि मंछ के शब्दों में चार और पाच मात्राओं के वाद 'जी' शब्द का प्रयोग करो । इसके बाद १४ मात्रा और अंत मे गुरु लघु रक्खो । इस प्रकार इस गीत मे एक पद की २५ मात्राये जोडकर चार पद वनाओ । उसके वाद सिंहावलोकन करके वैताल छंद के पद रखो । मंछ कवि कहता है कि भाखरी गीत इस प्रकार वनाओ और उसमे रघुनाथ का यश वर्णन करो ।[2]

---

१. रस अलकार पिंगल, पाडेय, पृ० ११६-२० ।

२. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० स० ७० ।

उदाहरण—

मिथिलापुर (जज्ञ-प्रारंभ) गीत

मिथिल महीपतीजी अवनी कीथ जिग आरंभ ।
तेडे सभगती जी लिख फुरमाण वाहु प्रलंभ ।।
कर कर कामती जी खोपे जैंथ हथ जस खंभ ।
नागर नोवती जी घर घर घुरत द्वार असंभ ।।
घर द्वार नौवत घुरत वाजत तीस पट अवरेख ।
वंध पोळ पोळ विसाल तोरण वर्णे चित्र विसेष ।।
व्रत सदन पीत पताक फरकत वरण चहु सुखवेश ।
मघ जनकपुर सुर असुर मानव पड़े संभृत पेख ।।[1]

गीत जात सालूर

वरतारो छंद लीलावती

षोडस कल विषम विहस पद वारह धुरपद कला अठारैं धरैं
मेलैं तुक प्रथम चतुर्थी मोहरैं, वळे दुतीय त्रिय मेल वरैं
कवि दाखे छंद तुकी तो चोकल विमल गीत सालूर वर्णं
धरजै जिन मांहि चिरत धनुधारण भवतारण चहुं वेद भणैं ।[2]

अर्थात् विपम पद में १६ मात्राएं सम पद में १२ मात्राएं और आदि पद की १८ मात्राएं धरनी चाहिए। तुकान्त में पहिले और चौथे पद की और दूसरे और तीसरे पद का तुक मिलाओ। मंछ कवि कहता है कि तुकांत में चौकल रखने से सालूर गीत वनता है। चारों वेद कहते है कि उसमें धनुषधारी और भव से तारने वाले राम के चरित्र रखो।

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० ७० ।
२. वही, पृ० ८० ।

उदाहरण—

परसराम जी का आगम गीत

जाजुल दुजराज करण जुध जाडो,
तस कुठार द्रग तायल । राह वरात ईष अजरायल,
आयर उभो आडो ॥१॥
रातो भूभ विषय विषम बच रोड़े,
जबर इसो कुण जोमड । मो ऊभां संकर चो कोमंड,
ताण भीच किण तोड़े ॥२॥
व्याकुल जान विना जल वाड़ी,
कापत सकल कराळा । उमगे उर दशरथ नृप वाळा,
आया खड़े अगाडी ॥३॥
खिमजै धनु जीरण दिन षूटो,
वोले राम वदीता । सदन उतंग देख दुत सीता,
तृण तोड़ण मिस तूटो ॥४॥
दुगम पिनाक सहल तो दीसे,
विगत हमें सुण वत्री । खडे मैं वसुधा विण खत्री,
कीधी वार इकीसे ॥५॥
सहज भुजांधर वले सिरायो,
कर जुध सेंन निकदण । उर मो देख गाधनृप नदण,
प्रगट रिखी पद पायो ॥६॥
दिल मत धरो भरोसे दूजे,
क्रोध न करो अकाजा । देव दीन सुरभी दुजराजा,
यह रघुवंशी पूजे ॥७॥
मोड़े ताण सरासण महारो,
जो तोमें वल जालम । मुनिवर तेज देखता आलम,
सोख लियों गह सारो ॥८॥
अत असतुत धर परस अधारे,
चले बिपिन तप चाहे । इम थट सहित सुवेश उमाहे,
पुर अवधेश पधारे[1] ॥९॥

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ८९–९० ।

कवित्त

इस छन्द के प्रत्येक चरण में २१ वर्ण होते है और चरणान्त में गुरु तथा यति सोलहवें वर्ण पर होती है । उदाहरणार्थ शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित कुछ कवित्त प्रस्तुत हैं—

मावधियो देसी मरजाद रूश्म रीति अरू,
रिवाज पुराणां माड देश मे मनावे हैं ।।
वोलचाल देश कानून कारवाही सभी,
खानपान देशी शुध परेवसे पावे हैं ।।
कर लगान रयाया लागे आदहुके सव,
तापे संतोष भूप प्रेम से करावे हैं ।
कवी तेज देख्या वहु नरेश रजवाड़ा पण
जुना जैसाण ज़ोड एक ना तुलावे हैं ।।[1]

कलु में सती ज्वाला वलती पती सेवा कर,
प्रेम नेम पतिव्रता राम सीता यास मे ।।
भगतिदान सीयल तप देवीचद पौढे भाव,
मान्यो तत कंथ गोद वैठी हुलास मे ।।
अगले नव भव मे वाम भरतार यही,
खुल्यो ग्यांन ध्यान माला गीता मुख पास में ।।
पीयर ससुराल की पर फूले सात पेढी,
विम्मन भगवान् भेज्यो गये सरगवास मे ।।[2]

इसके अतिरिक्त अन्य कवियो की रचनाओं में भी कवित्त छंद देखने को मिलते है ।

सवैया

जिन वार्णिक छन्दों में २२ से २६ तक वर्णो की संख्या होती है, उन्हे सवैया की कोटि में रखा जा सकता है । सवैया की कोटि मे आये हुए शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित सवैये कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

१. नैन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० सं० ६२–६३ ।
२. ह० लि० प्र० (कवि देवीचद), पृ० स० १२८ ।

सवैया

पध वाहे धर वेध, कंमधा, हलके हर तंणो
वधि मनजे संघ वेध, लडे नरूको मुगल सूं
संघ रूपी जैसंघ रो, प्रोहित हत अणपार
राहै सो भी वीरवर, तुरको सिर तरवार ।।[1]

ग्रेसै है तीरथ तोहूँ माहातंम, न्हाहै ते होत निवेदन वेदन
प्राग कहै जु सुभाग महीपत, गोये ते होत दरद को छेदन
पारस परस ते होत है कंचन, सरस इते अगजीत को नंदन
दरस ही ते माहाराज अभैसंघ, कचन मे हुवे हाथ कवीजन ।[2]

खेलपच्यो जब वाहिर में, जग जाहिर सायरपे निश सारी
खेल निहार कहे सब लोक परतख कुरीत दसो दिस जारी
साच करी रचना कवि तेज कही धनवाद सवे नरनारी
ये जु प्रवन्ध वने सव भाति भने यह जो अब जाति हमारी ।[3]

शोर मच्यो अवनी पर आन, चढयो दलसाज जरासिंधु जोरे
हो छिन मे दल तोर दिहूँ पर, जाय सका नहि साग समोरे
और अनेक उपाय वने न, छिनै वरदान मिल्यो वर तोरे
जो कवि तेरा सुणों अरजी, मरजी करवाह चढो हित मोरे।[4]

कुण्डलियां

इस छंद के छः चरण होते है । प्रारंभ के दो चरण दोहा तथा वाद के चरण रोला के होते हैं। दोहे का चतुर्थ चरण रोला के आरम्भ में रक्खा जाता है । दोहे के प्रथम चरण का सर्वप्रथम शब्द रोला के अन्तिम चरण के अन्त मे प्रायः आता हैं । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य मे प्रयुक्त हुए कुछ कुण्डलिया छंद उदाहरण प्रस्तुत है—

नेछो राखे राम रो, रटजे दिन ने रात
मोडा ती मत भेलजे, वड़े न बीजी वात

१. अभैगुण प्रतिलिपि से, छद स० १७८ ।
२. वही, छंद सं० २८३ ।
३. नैन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० सं० ६१ ।
४. आईनाथ अड़तालीस, पृ० स० ७ (१८) ।

वडे न वीजी वात, धरम सत वीजी धारो
छोड़ो मती संतोष, वड़े मन दया विचारो
रैंणो के परसराम, अणमे नांय अंदेसो
रटजे दिन ने रात, राम रो राखे नैंछो ।[१]

मीठी राखो मानख से, साकर अमरत समान
जहर न भावो जीव से, मेल दियो अभिमांन
मेल दियो अभिमांन ध्यान समरण को धारो
जग ओ वीतो जाय, राम से है नीसतारो
रैंणों के परसराम, दीठी करो अदीठी
साकर अमरत समान, मनख से राखो मीठी ।[२]

आठूं दिस वरतै अदल, राघव वाळे राज
सीख समापे सोहडा, कर मन वंछता काज
काज मन वंछता पूर सगला किया
धवल हरि दुरग धन देस कितरा दिया
कीध अर निकंटक जीत रावण जिसा
जमी पग फील जिम, दवे आठू दिसा ।।[३]

सोरठा

इसमे विपम चरणों में ११ तथा सम चरणों में १३ मात्रा होती हैं। इस प्रकार यह दोहा का उलटा होता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य मे भी सोरठा का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

जलज प्रभुपद जांण, दै सुगंध निरवाण पद ।
मो मन भवर प्रमाण, रात दिवस विलम्यो रहे ।।[४]
प्रभु गुण तणो न पार, पार न को गीता प्रवंध
वधै ग्रंथ विस्तार, कारण इह सूक्ष्म कह्यो ।।[५]

---

१. ह० लि० (कवि परसराम मेगलवा), कु० सं० २६ ।
२ वही, कु० स० १२ ।
३. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० सं० २७६ ।
४. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० सं० २ ।
५ वही, पृ० सं० ४६ ।

इसी तरह अन्य छंदों का प्रयोग भी हमारे आलोच्य कवियों की रचनाओं में मिलता है। उदाहरणार्थ—

छंद नाराच

अनूर जोत की कला अनेक रूप चंड्डियं
दनेश दाह नेरूवांम पंड चंद झंड्डियं
प्रभात मात कोत्सदा, इकेत चित्त घ्यानियं
निशंक त्यो फते अरीन, यूथ मे प्रमानिय ।[1]

छंद चौपाई

श्री जगदम्ब विलम्ब न कीजै, भूपति को वांछत फल दीजे
श्रीपद पंकज रज परसे ते, भव जल कठिन तिरहु जन केते ।[2]

दोहा–छंद

इण अवसर अरदास सुंण, आई त्याग विलम्ब
कुळदेवी यदुवश री, तूं अनाद जगदम्ब ।[3]
नीचे प्रेम प्रतीति ते, विनय करूं सनमान
ताहि के कारज सकल सुभ, सिधि करो हनुमान ।[4]
आकारादि षट् वरणये, जुग जुग अवर सुजाण
इधक और सम न्यून इम, चित्त तीनूं पहिचाण ।[5]
सरत काम ईसर सुमिर, अल्ला ख्वाजा पीर
भद तस दाम हाजन रे, सगल द्वीप रा वीर[6]
साकद्वीपी सेवक सदा, वसे बीकाणे देस
कवि परमानन्द कथ कहे, हर्षो चित्त हमेस ।[7]
जिण उंगे जाणे जगत, अणंत मिटे अंधार

---

१. आईनाथ अड़तालीस (कवि तेज), पृ० स० ८ ।
२. वही, पृ० सं० १३ ।
३. आईनाथ अडतालीसी—कवि तेज, पृ० स० ८ ।
४. ह० लि० (कवि देवीचद), पृ० स० १२० ।
५. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० सं० ३३ ।
६. ह० लि० प्र० (कवि गोपीकृष्ण), फुटकर ।
७. ह० लि० प्र० (कवि परमानन्द), फुटकर ।

सौन सवां मेरा सत्रां, व्हे लेहे व्यापार ।[१]
दूध दही अन्तर दरस, सगती किया सीनान
जल गंगा मे नावियां, धूप दीप कर ध्यान ।[२]

फिर

शुभ अगसर दे सारदा, गवरीनंद गुणेस,
ग्यांनी तो समझे सदा, अग्यांनी उपदेस ।।[३]
सुण सीख्यां प्रसताव सत, जे चालत सुजांण
लोक भलो कई लद भला, सुधरे सेई निदांण ।[४]
दोह घणा दुष दे घणों, कर कौन सके काम
प्रथम भी सवको सुंकरणे, परी जाहि वद पाम ।[५]
कहा पमित ज्ञानी कवी निपुण पुसण की रीत
हरि गावे साई वको रसकनाथ यह रीत ।[६]

छंद छप्पय

रात दिवस इण रीत प्रगट घडियाल पुकारे
मिलियो मिनखा जनम लाख चवरासी लारे
खाली तिको न खोय, जोय वहतों जग जालम
पडिया त्यांरी खवर, मिले नहं कीधी मालम
चेत रे अजूं मनडा चतुर, रट रट श्री सीतारमण
करुणा निधान सूं गहज कर, गमे सहज आवागमण ।[७]

लयात्मक छंद (गीतिकाव्य)

लयात्मक छन्द मे मात्रा अथवा वर्णो के नियमित विधान ओर कवि उतना सचेष्ट नही रहता जितना लय की ओर ।

१ कवि भूरजी (भीनमाल) द्वारा रचित फुटकर काव्य से ।
२. रा० प्रा० वि० प्र० वीकानेर गुटका नं० १२६।५० कवि वीका गांव मोरसी ।
३. कवि रुगनाथ द्वारा रचित फुटकर रचना से ।
४. श्री लदराज द्वारा रचित (कुचेरा) ।
५. श्री विहारी द्वारा रचित (जालोर) ।
६. श्री रसिकनाथ जी द्वारा रचित (वडल) ।
७. रधुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ), पृ० सं० ४३ ।

संगीत की रागनी के आधार पर स्वतन्त्र लय के आधार पर लयात्मक छन्दों की रचना होती है। मात्रा या वर्णों के नियमित विधान की ओर यद्यपि कवि का आग्रह नही करता, तथापि इस प्रकार के छन्दों के प्रवाह की कमी नही रहती। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य में प्रयुक्त हुए लयात्मक छंदो से कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

भजो सब विश्वंभर किरतार।
जाकी माया जगत रचाया सबका पालनहार।
ब्रमादिक सुर नर सब गावत पावत है किणपार।
सनकादिक शिव शेश सहस्र मुख जिभ्या दोन हजार।
ऐकागृह चित योगी मुनीसर, ध्यावत वारम्वार।
वेद ऋचा श्रुती तेज कवि शारद करत उचार।[1]

शारदा समरों मेरी माई।
श्वेतवसन जरकस की साड़ी, पर मोतियन की गोट लगाई।
सांज समे सिणगार सजावे, आभूषण सब रतन जड़ाई।
मुकट मनोहर काने कुण्डल, गज मोतियन की मांग भराई।
मुख निकलंक ससी मन मोहन, भाल तिलक बंदली मनभाई।
नकवूला मुखपान सुगंधित, अधरन पे रंग खिलत ललाई।
माला तालरु वीणा पुस्तक चतुर भजन की हद चतुराई।
गावत विध विध पद विष्णु को, तेज कवि झट लेत रिझाई।[2]

फिर

तोकू देत रही सुन हेला, खो मत प्रभू सुमरण सुभ बेला।
मेरा मेरा करत कुटम धन; सो सब झूठ झमेला।
प्राण पयान होत ही तुमको, जाना पड़त अकेला।
खोटे करम कमाई कर मत, बांध पाप का थेला।
करता है तो सुभ कृत कर ले, चार दिनन को मेला।
खाया नाहिं किया परमारथ, जोड़ किया धन भेला।
चलसी पाप पुण्य दो संग में, संग चलत अकेला।[3]

---

१. कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० ३–४।
२. वही, पृ० स० २–३।
३. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० स० ७, भ० सं० १८।

अरज सुनो गंगश्याम राम मोरी अरज सुनो मोटा श्याम ।
तोरी शरण मे आन पड़्यो हूँ सीग्र सुधारो काम ।
तीन त्रीलोकी नाथ तूंही तुही है चारू धाम ।
तूं ही ईश तूं ही जगदीसा तुंही कृष्ण अरु राम ।
वाय पकड़ मोय पार उतारो, जैसे गज घनश्याम ।
मैं आधीन दीन हरी तेरो चिन्ता मेट तमाम ।[1]

तूं तो रसना नाम सुमर रे। तेरी वीती जाय उमर रे।
माता पिता वन्धव सुत दाता, समझ न तूं हित कर रे।
स्वारथ साथ सगाई सव री, छिन में जाय विछड़ रे।
वचपन सकल खेल खो दीनो, सुध वुध ग्यांन विसर रे।
चेत हाथ तन हीरो पायो, पछतासी खोकर रे।
ओ कारज करना सो करले, काले केस कधर रे।
फिर कारज वन आवत नाहीं, तन होसी जरजर रे।
"नथमल" दिवस समान न सगला, काल खड़ो सिर पर रे।
पल में प्राण पखेरू उड़ेलो, धरा धरी रह धर रे ।।[2]

साराश यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं मे नाना प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। सभी छन्द लय और गति मे पूर्णतया शुद्ध है। फिर भी कही कही वर्णिक वृत्तों में अवश्य दोप आ गया है।

इन छन्दों की प्रमुख विशेषता यह है कि भाव के अनुकूल ही ये प्रयुक्त हुए है। करीव करीव सभी छन्द गेय हैं। इन कवियो के छन्दो मे अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है और प्रायः परम्परागत लक्षणो के अनुसार ही उनका प्रयोग हुआ है।

प्रतीक–विधान

प्रतीक शव्द के अनेक अर्थ हैं। अमरकोश मे अंग प्रतीको अवयवः कहकर अग, प्रतीक और अवयव तीनों को एक साथ वताया गया है। अंग्रेजी शव्द "सिम्वल" इसका समानार्थी है।

---

१. ह० लि० भ० (कवि हरिनारायण पुरोहित) पृ० स० १२, भजन सं० ३४।
२. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० सं० ७, भजन स० १८।

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है "चिन्ह" । संभवतः यह संस्कृत के "प्रतिग्रच" शब्द से व्युत्पन्न हुआ होगा, जिसका अर्थ होगा–प्रति-स्थान अर्थात् एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना । किन्तु संस्कृत साहित्य मे प्रतीक के लिए उपलक्षण शब्द ही व्यवहृत मिलता है ।[1] जब कोई वस्तु–नाम इस रूप मे प्रयुक्त हो कि वह वस्तु उस गुण मे अपने समान अन्य वस्तुओं का ज्ञान करादे तो वह उपलक्षण है ।

जब ईप्सित भाव सरलता से व्यक्त नही होता तो प्रतीकों के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति की जाती है । प्रतीक द्व्यर्थक होते है । बाह्य रूप से तो वे सामान्य अर्थ प्रकट करते है किन्तु आंत-रिक रूप से वे वास्तविक अर्थ (व्यग्य) का बोध कराते हैं ।

यदि हम प्रतीकों के गुणों की ओर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि प्रतीक का सर्वोत्कृष्ट गुण उसकी व्यंजनात्मकता है । अनुभूति, भाव या वस्तु की सम्यक् व्यजना ही प्रतीक का उद्देश्य है ।

काव्यो मे प्रतीको का मुख्य उद्देश्य भावोत्तेजन ही है ।

प्रतीक उपमा या रूपक के सस्करण है ।[2] इन्हे रूपकाति-शयोक्ति भी कहा जा सकता है ।[3] वे पहले रूप मे प्रयुक्त होते थे किन्तु कालान्तर मे रूढ बन गये ।[4] प्रतीक किसी अदृश्य या अव्यक्त सत्ता के दृश्य और व्यक्त रूप है । यही धर्म उपमान और बिम्ब का है ।[5]

---

१. वामन शिवराम आप्टे कृत सस्कृत—हिन्दी कोश मे उपलक्षण के भी अर्थ प्राप्त हैं . उपलक्षणम् (उप+लक्ष+ल्युट) (१) देखना, दृष्टि डालना, अंकित करना, (२) चिन्ह विशिष्ट या भेदरूपक (३) पद या पदवी (४) किसी ऐसी बात का ध्वनित होना, जो वस्तुत. कही न गई हो ।

२. आधुनिक हिन्दी कविता मे अलकार–विधान, डा० जगदीशनारायण 'त्रिपाठी, पृ० सं० ३५ ।

३ वही, पृ० सं० १६६ ।

४. जायसी की बिम्ब योजना—डा० सुधा सक्सेना, पृ० सं० २५६ ।

५. वही, पृ० सं० १०१ ।

डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के अनुसार प्रतीक और उपमान मे अन्तर केवल इतना ही है कि प्रतीक के लिये सादृश्य के आधार की आवश्यकता नही होती केवल उसमे भावोद्बोधन की शक्ति होनी चाहिए, जबकि उपमान मे सादृश्य आधार का रहना आवश्यक है ।[१] सम्भव है जब कवि अपने आपको विस्मृत कर देता है तो एक रहस्यानुभूति से अनुप्राणित होता है ।[२] प्रतीक निर्माण के कारणो का उल्लेख करते हुए डा० रामखेलावनजी ने उसे रूपसाम्य, धर्म-व्यापार साम्य, नाद साम्य, तथा प्रभाव-साम्य इन चार साम्यो का उल्लेख किया है ।[३]

प्रतीको के क्षेत्र मे आलोचको ने भी अलग-अलग मत देकर अपने विचारो की पुष्टि की है ।

एक मत के अनुसार[४] साहित्य मे अधिकांश प्रतीक दृश्य जगत से सम्बन्धित होते है क्योकि इनसे रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण भावाभिव्यक्ति मे सरलता होती है । यही नही, प्रतीकात्मक शब्दों के अपने स्वतंत्र क्षेत्र भी होते हैं । प्रतीक-विधान की क्रिया व्यवहार जगत् की अपेक्षा भाव-जगत् (आध्यात्मिक) मे अधिक दिखाई पडती है ।

प्रतीको के वर्गीकरण के अनेक प्रयास हुए हैं । कोई[५] प्राचीनता या नवीनता के आधार पर परम्परागत (रूढ) तथा नवीन दो वर्ग बतलाते है तो कोई[६] व्यक्तिगत रूढिगत तथा प्राकृतिक, ये तीन प्रकार स्वीकार करते है । प्रयोग के आधार पर[७] प्रतीकों को रूढ

---

१. काव्य मे अभिव्यजनावाद—डा० लक्ष्मीनारायण सुधाशु, पृ० स० ११८ ।

२ काव्यात्मक बिम्ब—अखौरी ब्रजनदन प्रसाद, पृ० स० १०५ ।

३. मध्यकालीन सत साहित्य—डा० रामखेलावन पाडेय, पृ० सं० २६१ ।

४ सन्त साहित्य—डा० प्रेमनारायण शुक्ल प्रथम कानपुर, प्र० १९६५, पृ० सं० ८३ ।

५. आधुनिक हिन्दी कविता मे अलकार-विधान, डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी, पृ० स० १६६ ।

६. जायसी की बिम्ब-योजना डा० सुधा सक्सेना, पृ० लं० १०४ ।

७. वही, पृ० सं० १०३ ।

तथा स्वच्छन्द इन दो वर्गों मे बांटकर रूढ के परम्परागत तथा साम्प्रदायिक दो उपवर्ग और स्वच्छन्द के प्राकृतिक आध्यात्मिक और व्यैयक्तिक तीन उपवर्ग किए गये है ।

वस्तु दृष्टि से शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में जो प्रतीक प्रयुक्त हुए है, वे निम्नोक्त प्रकार हैं।

(१) साधना के प्रतीक
(२) प्रेमपरक तथा रूप–सौन्दर्य की प्रतीक योजना ।
(३) प्रतीकात्मक समासोक्तियो तथा प्रसंग–कथाओं के प्रतोकार्थ ।
(४) कथापात्रों का प्रतीकार्थ ।

स्पष्ट है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने जिस भारतीय चिन्तन पर आश्रित प्रतीको को ग्रहण किया है, उन्हे उन्होंने अधिकतर भारतीय रूप मे ही चित्रित किया है । साथ ही उन्होने इन प्रतीको को भारतीय वातावरण मे ढालने का प्रयास किया है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों द्वारा रचित काव्य में प्रतीक

यहां पर हम शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित काव्य के अन्तर्गत प्रयुक्त हुए प्रतीको का वर्णन करेंगे ।

हम देखते हैं कि कही पर इनकी रचनाओ में प्रतीक प्रस्तुत होकर भी अप्रस्तुत का संकेत करते है, अर्थ मे चमत्कार और कथन मे सक्षिप्तता लाते हैं। यह अर्थ–चमत्कार आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक पक्ष को उभारता है । कही पर प्रतीक समासोक्ति सा तो कही पर अप्रस्तुत प्रशंसा, रूपक अथवा श्लेष का सा चमत्कार लाते हैं । भले ही इनमे रूपक या उपमा सा सादृश्य न मिले किन्तु इनका प्रभाव उनसे कही अधिक होता है । इस दृष्टि से ये "ध्वनि" मे भी सहायक हैं ।

प्रतीको का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । अप्रस्तुत के रूप मे हों, चाहे प्रस्तुत के रूप मे, प्रतीको का चयन विषय तथा काल के अनुसार होना चाहिए । कवि का अनुभव क्षेत्र जितना ही व्यापक होगा, प्रतीक उतना ही विविधता से युक्त होगे । फिर कवि अपने काल से भी प्रभावित होता है। साथ ही वह परम्परागत प्रीतकों का पोषक

भी होता है। काव्य मे जो भी उत्कृष्ट भाव हैं, उनका वह पोषण करता है।

फलतः वह परम्परागत अर्थात् रूढ प्रतीको के साथ साथ नवीन अर्थात् मौलिक प्रतीको की सृष्टि करता है।

हमारे विवेच्य शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं के प्रतीको का वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार से करना युक्तिसंगत होगा–

(१) परम्परागत प्रतीक

(क) सत-साधना सम्वन्धी प्रतीक

(ख) शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की साधना संबंधी प्रतीक

(ग) प्रेम सम्वन्धी प्रतीक

(घ) अन्य।

(२) मौलिक प्रतीक

इनमे से शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की साधना सम्वन्धी प्रतीकों को पुनः छः वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—

(क) विघ्नरूप प्रतीक

(ख) नक्षत्र सम्वन्धी प्रतीक

(ग) व्यक्तिवाची प्रतीक

(घ) स्थानवाची प्रतीक

(ङ) खाद्यपदार्थवाची प्रतीक

(च) अन्य प्रतीक।

इसी प्रकार संत सम्वन्धी प्रतीकों को योग सम्वन्धी, प्राणिवाची, स्थानवाची, खाद्यपदार्थवाची, नक्षत्रवाची तथा अन्य इन वर्गों मे वाटा जा सकता है। प्रेम सम्वन्धी प्रतीको को दो वर्गों मे रखा जा सकता है—प्रेम-प्रतीक तथा प्रेम-भाव प्रतीक।

मौलिक प्रतीको के अन्तर्गत शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे प्राप्त नवीन प्रयोगो का नाम लिया जा सकता है।

ये या तो परम्परागत प्रतीकों के आधार पर विकसित हुए हैं या कवियों की सर्वथा मौलिक उद्भावनाओ के रूप में।

इन वर्गों के प्रतीको का व्यावहारिक विश्लेषण इन्हें पुनः निम्नांकित विधि से विभाजित करके किया जा सकता है । विभिन्न वर्गो के समक्ष विवेच्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणों द्वारा रचित साहित्य मे प्रतीको का प्रयोग निम्न प्रकार से मिलता है ।

(१) पारिवारिक सम्बन्धी प्रतीक[1]—दुलहा, दुलही, पति, कंत, ससुर, सांई, सजना आदि ।

(२) सामाजिक सम्बन्धी प्रतीक[2]—गुरु, चेला ।

(३) व्यवसाय सम्बन्धी प्रतीक[3]—चरपट, चोट, ठाकुर, धूत, भिखारी, रोगी आदि ।

(४) वस्त्र सम्बन्धी प्रतीक[4]—कंथा, चोला आदि ।

(५) खाद्य पदार्थ सम्बन्धी प्रतीक[5]—अमरत, औषध, जरदा, भांग रस ।

(६) दैनिक व्यवहार सामग्री सम्बन्धी प्रतीक[6]—घट, दीयो, भाडा, नग आदि ।

(७) निवासादि सम्बन्धी प्रतीक[7]—नगर, फुलवाडी, मिंदर, शहर, घर आदि ।

(८) नक्षत्रादिवाची प्रतीक[8]—चाद, तारा, सूरज, ब्रह्मांड आदि ।

(९) पशु पक्षी सम्बन्धी प्रतीक[9]—मछली, सरप, हंस आदि ।

(१०) हावभावादि सम्बन्धी प्रतीक[10]—आणन्द, राग, हरस आदि ।

---

१ जोग भर्तृहरी का ख्याल (कवि तेज), पृ० स० २४ व अन्य रचनाओ में ।

२. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० स० २४ व अन्य मे ।

३. ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० १, ५, ७, ८ एवं अन्यत्र भी ।

४. ह० लि० प्र० (कवि मंगलदास), पृ० ३४ व अन्यत्र भी ।

५. ह० लि० प्र० (कवि देवीचद), पृ० स० २४, २८, ३५, ४२ ।

६. वही, पृ० ४, ८. १३, २१ आदि मे ।

७. नथमल भजनावली, पृ० सं० १२, १४, एव अन्य रचनाओ भी ।

८. ह० लि० ग्रं० (कवि हरिनारायण), पृ० सं० ८, १०, १५, २२ ।

९. कवि तेज कृत गायन, पृ० सं० १४, २८ व अन्यत्र ।

१०. कवि मगलदास द्वारा रचित रचनाओं मे—ह० लि० पृ० २४ ।

(११) पौराणिक व्यक्ति एवं स्थान सम्वन्धी प्रतीक[1]—अमरपुर, पुष्कर, मानसरोवर, गोरख, नारद, विष्णु आदि।

(१२) विशिष्ट प्रतीक—इसके अन्तर्गत प्रेम सम्वन्धी, अध्यात्म सम्वन्धी तथा सख्यावाची प्रतीक वर्गीकृत किए जा सकते है।

(क) प्रेम सम्वन्धी प्रतीक[2]—कुछ प्रेमी-युग्मो को आदर्श माना गया है, यथा—चाद-चकोर, सारस-जोड़ी ।

(ख) आध्यात्मिक[3]—ये प्रतीक विशिष्ट मान्यताओं को व्यक्त करने के उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं यथा-अमरतकुंड, जोत, धरम, पथ, माटी, पवन, पाणी, सवद आदि ।

(ग) संख्यावाची[4]—शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की रचनाओ मे पांच, सात तथा नौ, दस की संख्याएं विशेष रूप से प्रयुक्त हुई है।

पाच—दोस्त, चोर ।
सात—दवार, समन्दर, दीया, आभे ।
नौ—दुवार, वाट आदि ।
दस—दुवार, पवरि, वाट, पथ ।

यदि समस्त शाकद्वीपी ब्राह्मण कवियो की रचनाओं के प्रतीक उपर्युक्त वर्गो मे समाहित हो सकते हैं तो इसका अर्थ यह भी हुआ कि विविध काव्यो के प्रतीको मे आशातीत साम्य भी है। यह साम्य एक ओर जहां समान विचारधारा या अप्रस्तुत-विधान का द्योतक है-वही काव्य के विकास मे प्रतीको के योगदान का भी परिचायक है ।

फलतः इन कवियों ने प्रतीकों का चयन पारिवारिक सम्वन्धों, विभिन्न व्यवसायो, वस्त्रो, खाद्यपदार्थो, पशुओ, आभूषणो, नक्षत्रों, पौराणिक स्थानो तथा व्यक्तियों मे से किया है। यही कारण है कि

---

१. कवि हरिनारायण द्वारा रचित ग्रंथ मे—पृ० स० २४, १४, २२, ८ व अन्यत्र ।

२. नैंन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० १५, २७ आदि पर।

३. ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० ५, १८, १४, १५, १६, १७, २२ ।

४. नैंन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० ७, ८, १४, २२ आदि व अन्यत्र।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित काव्य मानवीय काव्य है, जिससे जनसाधारण का तादात्म्य हो सका है ।

बिम्ब–विधान

शाब्दिक दृष्टि से "विम्व" (Image) का अर्थ है–प्रतिभा, आकृति, रूप, चित्र आदि । मनोविज्ञान के अनुसार जव हम इन्द्रियों के माध्यम से स्थूल जगत् की विभिन्न वस्तुओ के सम्पर्क में आते है, तो उनका प्रतिविम्व या चित्र हमारे मन मे अंकित हो जाता है तथा ये प्रतिविम्व ही समय-समय पर हमारी वासना, संस्कार, स्मृति, भावना आदि को जागृत करने का कार्य करते हैं । ये विम्व एक प्रकार से सचित अनुभूतियों के रूप में हमारे अवचेतन मन मे सदा विद्यमान रहते है, पर समय-समय पर स्मृति एवं कल्पना की सहायता से पुनः हमारे चेतन स्तर पर उदित होकर हमे भांति-भांति के वोध प्रदान करते है । कवि या कलाकार इन्ही विम्वों को अपनी रचना मे प्रस्तुत करता है, जिन्हे ग्रहण करते हुए पाठक या श्रोता सामाजिक विषय का वोध प्राप्त करते हैं । दूसरे शव्दों में विम्व ऐन्द्रिय अनुभूति का प्रतिविम्व है, जो कि मन में अंकित हो जाता है ।

साहित्यिक दृष्टि से विम्व की अनेक परिभाषाए दी गई है । सी० डी० लेविस के अनुसार—

"The Poetic Image is the human mind claiming kinship with everything that lives and has lived and making good it's claim In doing so, it also establishes through every metaphor an affinity between external objects."[1]

राविन स्केल्टन के विचारानुसार "विम्व" एक ऐसा शव्द है जो कि ऐन्द्रियानुभूति का भाव जाग्रत करता है ।[२] इसी प्रकार डा० नगेन्द्र के मत से काव्य-विम्व शव्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल मे भाव की प्रेरणा रहती है ।[३]

---

1. The Poetic Image by C. Day Lewis—P—35.
२. साहित्य की शैली, पृ० स० २१३ ।
३. "काव्य-विम्व"—डा० नगेन्द्र कृत ।

विम्व-विधान से हमारा तात्पर्य काव्य मे आये हुए उन शव्द-चित्रो से है, जो भावात्मक होते हैं, जिनका सम्वन्ध मानव के व्यवहारिक जीवन तथा कल्पना के शाश्वत जगत् से होता है। जो कवि की सजीव अनुभूति, वासना एव भावना से परिपूर्ण होते हैं और गत्यात्मकता, सजीवता, सुन्दरता एव रसात्मकता के कारण जीते-जागते, चलते-फिरते, वोलते जान पड़ते हैं।

कविता मे यह विम्व-विधान कितने ही प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। कभी तो सादृश्य या साधर्म्य का सहारा लेकर रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा के द्वारा इसका विधान होता है, कभी मानवीयकरण द्वारा इसका विधान किया जाता है, तो कभी प्रतीकों द्वारा ही इसकी योजना की जाती है। इसी तरह कभी एक शव्द से ही, तो कभी एक वाक्य से इसका विधान किया जाता है। परन्तु इस विम्व-विधान के लिए तीव्र कल्पना एवं गहन अनुभूति का होना अपेक्षित है। कुछ कवि तो एक शव्द द्वारा ही ऐसा सजीव, सुन्दर एवं मार्मिक विम्व प्रस्तुत कर देते हैं कि अनेक शव्दो, अनेक उपमा, रूपको एव अनेक सादृश्यो द्वारा भी वैसा विम्व प्रस्तुत नही किया जा सकता। दूसरे इस विम्व-विधान के विभिन्न स्रोत हैं। कुछ विम्व तो परम्परागत सामग्री के द्वारा निर्मित होते है, तो कुछ अनुभूत पदार्थो एवं घटनाओं के आधार पर अंकित किये जाते हैं। कुछ विम्वों के लिये पारिवारिक जीवन से सामग्री मिलती है, तो कुछ के लिए सामाजिक जीवन आधार वनता है। कुछ विम्वो का निर्माण अपने समीपवर्ती वातावरण से होता है तो कुछ के लिए कवि को अपने रहन-सहन से सामग्री लेनी पड़ती है। कुछ विम्व-विधान के लिए इतिहास से सामग्री ग्रहण किया करते हैं। इस तरह विम्व-विधान के लिए यथेष्ट सामग्री ले सकते हैं। फिर भी कवियो के कुछ विम्व पूर्ण होते है और कुछ अपूर्ण। कुछ अपूर्ण ही रह जाते हैं। इस तरह विम्व-विधान को देखकर एक कवि की प्रतिभा, उसकी कला, उसके जीवन, उसके विचार, उसके भाव आदि का अध्ययन वड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

विम्व का काव्यात्मक मूल्य

जिस प्रकार अलकार, वक्रोक्ति, प्रतीक आदि का लक्ष्य काव्य

में सौन्दर्य या आकर्षण उत्पन्न करना है, उसी प्रकार विम्व-योजना का भी लक्ष्य है । विम्व-योजना मे मूल-वस्तु को ही इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह हमारी कल्पना शक्ति को उत्तेजित करती हुई अनुभूतिगम्य हो सके । जहां विम्व-योजना से इस लक्ष्य की पूर्ति नही होती—न तो वह हमारी कल्पना शक्ति को ही उत्तेजित करती है और न ही भावानुभूति प्रदान करती है, वहां काव्यात्मक दृष्टि से निरर्थक है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य में विम्ब

हमें यह देखना है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने विम्व-विधान कैसा किया है और कहां से उन्होंने सामग्री ली है तथा उन्हे विम्व-विधान मे कहां तक सफलता मिली है ।

सर्वप्रथम हम शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य से उन शब्द-चित्रों को लेते हैं, जो अलंकारों के सहारे अंकित किये गये है और जिनमें कभी कभी तो एक ही शब्द द्वारा पूर्ण विम्व प्रस्तुत कर दिया गया है ।

संपेख अगनग साख सी
रत रोब मारग राषसी
तिहं नाक पांरा विछेद ताड़े
वाण इक रघुवीर ।[1]

रामचन्द्र जी ने अग्नि के पर्वत की शिखा के समान क्रोधयुक्त राक्षसी को मार्ग मे देख कर उसके नाक और हाथ एक ही वाण से काट दिये ।

यहां कवि ने राक्षसी—सूर्पणखां का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमे वतलाया कि वह राक्षसी अग्नि के पर्वत की शिखा के समान है ।

इस विम्व-विधान के लिये कवि ने अपनी चिरपरिचित प्रकृति से सामग्री ली है। उस पर वातावरण का प्रभाव है तथा उसका यह विम्व-विधान अत्यन्त अल्प अक्षरो के द्वारा निर्मित होने पर भी पूर्ण है ।

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मछ), पृ० स० ६७ ।

गणपत के गुण गाऊं सदाई
सिर पर छत्र शीश मुकट माल
गल मोतियन कुंडलन छवी छाई ।[१]

यहां पर कवि ने परम्परा का अनुसरण किया है। यह विम्व-विधान भी अत्यन्त सजीव एव सुन्दर है ।

कही कही पर कवियो ने प्राचीन सस्कृति और सभ्यता के प्रतीको का आश्रय लेकर विम्व-विधान किया है । उदाहरणार्थ—

सीस सरग सात मे परग सात मे पयाले ।
अरणव साते उदर, विरछ रोमाच विचाले ।।
नदी सहस नाडियां प्रगट परवत मसपूरज ।
श्रुत दिस पवन उसास सकल लोयण ससि सूरज ।।
शिवमूं उमंग पूछे सगत, इचरज अत आवत यहै ।
ऊ कहो मोहि प्रभू सत उर रात दिवस किणविध रहे ।[२]

इसमें ईश्वर के विराट स्वरूप का वर्णन है, जिसमे कवि ने पार्वती के आश्चर्य पर परमात्मा के स्वरूप को दर्शाया है ।

कही कही पर कवियो ने सामाजिक जीवन से विम्व-विधान की सामग्री ली है ।

कही भभीक्षण लंकपती कूं सीता मौत नीसांनी है
गमाई लका खाई नही गम हुई दसकंधर हानी है ।[३]

यहा पर कवि ने सीता को मौत की निसानी वता कर शव्द-चित्र अंकित किया है। इसी प्रकार—

वेन भतीज गोद ले वैठी जली होलका जांणी है ।[४]
खावे लाडू हराम का स तने किण विध आवे चैन ।[५]

---

१. ह० लि० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० २ ।
२. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० सं० ४४-४५ ।
३ ह० लि० पु० (कवि देवीचंद जो),पृ० स० १२-१३ ।
४. वही, पृ० १२-१३ ।
५. नैन खशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० ४४ ।

कवि ने एक पात्र से दूसरे को कहलाया है कि हराम के लड्डू खाने वाले को चैन किस प्रकार मिल सकता है । अर्थात् व्यर्थ ही डोलने वाले व्यक्ति आनन्द से कैसे रह सकते हैं ? यहां हराम का लड्डू का विम्ब प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का संकेत देता है । फिर—

मां वेटे को व्याव रचायो भांवे मुलक तमाम ।[1]

यहां पर समाज में होने वाली कुरीतियो का चित्रण प्रस्तुत कर कवि तेज ने अति सुन्दर विम्ब प्रस्तुत किया है । यहां यह विम्ब भावानुभूति से प्रेरित है एवं अपने आप मे पूर्ण भी है ।

कही कही पर इन कवियों ने अपने निकटवर्ती दैनिक जीवन ने भी सामग्री ली है । उदाहरणार्थ कवि देवीचंद ने पराई स्त्री आम आदमी के लिये किस प्रकार दु:खदायी होती है, उसका विम्ब प्रस्तुत किया है । वह अलोकनीय है—

"कपटी पर नारी काटे काळजो ।"[2]

कवि के इस कथन से दैनिक जीवन में सम्वन्वित घटना का का घनिष्ठ परिचय व्यक्त हो रहा है । साथ ही यह भी पता चल रहा है कि कवि अपनी कविता को कितना सर्व-जन सुलभ वनाने का प्रयत्न कर रहा है । इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है-

वोहत उमदा मीठी वोले
धन खावे तोही धोको ।[3]

पर नारी से करे प्रीतड़ी
जीव जखम रो जोखो ।[4]

कई कवियों के कुछ विम्ब-विधानों पर उनकी धार्मिक भावना का अत्यन्त प्रवल प्रभाव दिखाई देता है। इससे उनकी सगुणोपासक भक्ति का पता चलता है । इस प्रकार के विम्ब-विधान के कुछ उदाहरण निम्नोक्त प्रकार से है—

---

१. वही, पृ० स० ३२ ।
२. ह० लि० पोथी (कवि देवीचंद), पृ० सं० ४२।
३ वही, पृ० स० ४१ ।
४. वही, पृ० स० ४१ ।

जलज प्रभु पद जांण, दे सुगन्ध निरवाण पद ।
मो मन भवर प्रमाण, रात दिवस विलम्यो रहे ॥[1]

अर्थात् कवि मंछ कहता है कि रामचन्द्र के चरणो को कमल समझो जो कि मोक्षपद-रूपी सुगन्ध देते हैं । मेरा मनरूपी भवरा रात-दिन उनमे लगा रहे ।

सहाय करो सिचायाय चावंडा वघजो वेल हमारी
मैं हूँ पुत्र परिवार तुम्हारो, तूं है मात हमारी ॥[2]

उगणीसे चौवीसे अम्वा, सुद सातम सनवार
सेवग मंगळ दरस कीयो, जद उपज्यो हरस अपार ।[3]

श्रीमुप उकत मन री वात मन में वाके मुका सुवेण
श्रीमुप उकत सभालजे कवि परमुख कंकेण ।[4]

दरसण कर सुख पावो रे लछमावर को ।[5]

तेज गरीव गुरु के इश्क में,
ज्यो तिकला दरसाई ।[6]

"नथमल" जग वल्लभ वरपा रितु,
विरहिन हित दुखदाई ।
दरसण प्यास लगी अखियन को,
प्रभू ही व्यास मिटाई ।[7]

इतना ही नही, कही कही पर शाकद्वीपीय व्राह्मण कवियो की रचनाओ में एक ही शव्द द्वारा सुन्दर एव सजीव विम्व-विधान देखने को मिलता है, जिसमे कवियों की मौलिकता सर्वथा सराहनीय है । उदाहरणार्थ—

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मछ) पृ० स० २ ।
२. ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० २ ।
३. ह० लि० प्र० (कवि मगलदास), पृ० सं० १४ ।
४ ह० लि० प्र० (कवि लच्छीराम), पृ० सं० २८ ।
५ तेजकवि कृत गायन (कवि तेज), पृ० सं० ४७ ।
६. वही, पृ० सं० २७ ।
७. नथमल भजनावली (कवि नथमल), पृ० स० १४ ।

हूं चावंडा हूं चिरताळी हूं कालिका हूं कंकाळी ।[1]

धर कामची उर धाक, अपछर छव धरे
हवा भाव कर मृदु हेर बोली सुण हरे ।
सीता मुणे हरि मो सग ग्रह दिस अनुसरे,
रीता जाय उप अहिराव सगळा कथ ररे ।[2]

नारी इक वीर उभे नर मे,
तिसडी न लखी सुपनेतर मे ।[3]

उपरोक्त पंक्तियो मे रूपकात्मक विम्व प्रस्तुत हुए है, जिनमें देवी का रूप तो अत्यंत ही प्रभावोत्पादक है ।

सारांश यह है कि हमारे विवेच्य कवियो ने विभिन्न स्रोतों से सामग्री संचित करके सुन्दर एवं सजीव विम्व-विधान प्रस्तुत किया है । यह दूसरी वात है कि कही कही पर अपूर्णता रह गई है और उनका अभिप्रेत भाव पाठको पर स्पष्ट रूप से नही पहुच सका है । फिर भी इन कवियों की रचनाओं मे विम्व-विधान सम्वन्धी विविधता, वहुज्ञता, मौलिकता एव नवीनता सर्वथा सराहनीय है । कला के इस प्रखर एवं प्रकृष्ट रूप को देख कर इन कवियो की जितनी सराहना की जाय थोड़ी है परन्तु जहा कही तुकवन्दी या चमत्कार-प्रियता के कारण कला के सहज रूप में विकृति आ गई है, वहां कवियों की असामर्थ्य एवं असावधानता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । अन्ततोगत्वा इन कवियो द्वारा प्रस्तुत विम्व-विधान अत्यत सजीव एवं मार्मिक है ।

शब्द-योजना

मनुष्य एक सामाजिक-प्राणी है । प्रत्येक मनुष्य के पास विचार और भाव होते है । मनुष्य की सामाजिकता का निर्वाह विचारों अथवा भावों के आदान-प्रदान से ही होता है । इसलिए वह मौखिक अथवा लिखित भाषा के द्वारा उनको एक दूसरे के पास

---

१. माताजी रो छंद (कवि वीका), पृ० सं० १७ ।

२. रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मछ) पृ० स० १२८ ।

३. रघुनाथरूपक गीतां रो-(कवि मछ), पृ० स० १३३ ।

पहुँचाना है । ऐसा करते समय उसकी यह हार्दिक अभिलाषा बनी रहती है कि उसकी अनुभूति, उसका चिन्तन, उसके विचार, उसके भाव इस तरह व्यक्त हो कि पाठक या श्रोता पर उनका अधिक से अधिक प्रभाव पड़े ।

मनुष्य के ये विचार या भाव भाषा के परिधान मे ही पुरस्कृत होते हैं, अतः श्रोता या पाठक पहले शब्द-परिधान की ओर ही आकृष्ट होता है । अतएव जिस कवि में उचित एवं सार्थक शब्दों के प्रयोग की जितनी अधिक क्षमता होती है, उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही उत्कृष्ट होती है, उसकी रचना मे उतनी ही सरसता, सजीवता एवं मार्मिकता रहती है और उसमे प्रेषणीयता का गुण भी उसी के अनुसार विद्यमान रहता है ।

यदि काव्य मे कोई शब्द अपने मे निहित पूर्ण शक्ति के साथ प्रयुक्त नही होता, तो उसके प्रयोग का कोई मूल्य नही है । यही कारण है कि प्रत्येक समर्थ प्रयोक्ता शब्द का सही प्रयोग करता है एवं पूर्ण प्रयास करता है कि उसकी रचना का प्रत्येक श्रोता या पाठक पर प्रभाव पड़े और तभी वह अपनी रचना को सफल समझता है । इसीलिए वह अपने विचारो का प्रकाशन उपयुक्त शब्दों के माध्यम से करता है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे भी शब्द-योजना बडी उत्कृष्ट कोटि की है । सस्कृत की तत्सम शब्दावली से लेकर हिन्दी की मध्यकालीन एव आधुनिक बोलियो मे प्रयुक्त होने वाले, जन-सामान्य मे प्रचलित आंचलिक शब्दों तक का प्रयोग शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे देखने को मिलता है । इसके अतिरिक्त अरबी-फारसी तथा अन्य भाषा के शब्दो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है ।

राजस्थानी साहित्य के सृजनकर्त्ता शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ में यद्यपि डिंगल शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा मे हुआ है, फिर भी हमे यह भी कहना ही पड़ेगा कि डिंगल के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी-फारसी, हिन्दी इत्यादि विभिन्न भाषाओं के शब्दो का प्रयोग भी हमारे विवेच्य कवियो की रचनाओ में हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्दों के समन्वित एवं समानुपातिक प्रयोगों के कारण उनकी रचनाओ में एक जीवन, ताजगी और प्राणवत्ता परिलक्षित होते है, जिससे उनकी गहन अनुभूति और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति का पता चलता है ।

हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओं में शब्द की तीनों शक्तियां अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। इसके अतिरिक्त माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुण का उचित प्रयोग भी देखने को मिलता है । मधुरा, परुषा और प्रौढा वृत्तिया भी यत्र तत्र देखने को मिलती है । कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ में शब्द-चयन सुन्दर और प्रभावोत्पादक वन पडा है ।

इनकी रचनाओं मे अरवी-फारसी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, वंगला आदि विभिन्न भाषाओ के शब्दों का भी समावेश हुआ है, यद्यपि राजस्थानी शब्दों की वहुलता है । जिन जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उनके उदाहरण प्रस्तुत है—

शब्द-भण्डार

राजस्थानी

चरस, पाहण, वरणां, दारुण, दईवांण, गहर, भणें, धरण, हांण, निमाडे, लगार, खीण, दीठां एकण, समै, उथैपे, जाभै, वीदम, वरवाण, जाण, जमारो, सिमरे, महराण, खागां, गमाड़े, अणपार, तणावे, भजण, परतप, पुणै, भीक, समापे, आडियां, घमसांण, नीसांण, दाखूं, अणरेह, चवे, चवरासी, परामुख, वाजिद, मुलक, ठालां, नैण, लोयण, किणारो, वीजा, धावे, अखडैत, दिहाडे, पांण, तिणंवार, भाप, अणछेह, अपाण, भाखौ, दाख्यो, भणवा, वटाचूं, जेम।[1]

सवांण, कवांण, कीयो, तिसड़ा, अभे, वषतेस, हिंदवाणे, भलांणे, थांणें ।[2]

१. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० सं० १ से १०१ तक ।
२. अमैगुण ग्रंथ (कवि प्रयाग), ह० लि० छ० स० २४०, २७२, १७२, २२१, २०४, १८५ आदि मे ।

सकल, नावे, रीणछोड, आणंद, तिगणा, वरणी, उदैभांण, निसांण, सेवग, न्यात, सभा, जोगणी, सुणीजो, खीचड़ी ।[१]

पुतरी, धीग, अदभुदरी, ओपियो, मोड़णो, पधारे, ऊवड़, घमोड, पाडै, महरांण, घोडणो, कोपियो, वरण ।[२]

काडीयो, आपर, कूसी, पीछाण, सांभी, च्यारू', अघीयात, जांण, वापाण, भाकडी, अरठीयो, अगीयारे, सवदे, जेडा ।[३]

जाणै, हिवडे, नेचीया, नौपत, अचवड़ा, महराण, माडल, सिचवाय, चारण, डोरी, अरजी, मरोड़ ।[४]

चलाणी, सुणो, मुमल, चड्या, वखांण, कांमणी, सयावास रे, मदछकिया, परणी, चवडै, जीमंण, नगदा, आसरो, भिड, वणावो, चट्टिय, भभक, वणाय, नगारो कांमण ।[५]

आंकणी, भांग, घालो, छोगो, सकल, नैण, काळजो, डोकरा, जरदो, पालणो, नगणीस, रांणी, छाणू, वालणो, भूडी, करड़ो, खोटो, काणा, कोचरा आदि ।[६]

अडियो, दरसायो, तारणहार, कोरणी, भांवरा ।[७]

नणद, जेठाणियां, सुसरोजी, गहणो, वाजूवंद री लूंव, वनड़ी, समधण, धारीयो आदि ।[८]

---

१. ह० लि० प्र० (कवि मंगलदास) पृ० स० १ से ४० तक।
२. ह० लि० फुटकर पत्र (कवि वृंद), राजस्थानी ।
३. ह० लि० (कवि लच्छीराम), पृ० स० १ से २५ तक ।
४. ह० लि० भ० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० १ से २० तक ।
५ कवि तेज द्वारा रचित—नैन खशम को खेल, आईनाथ अडतालीसी, गायन आदि से ।
६ ह० लि० पोथी (कवि देवीचन्द भीनमाल), पृ० सं० १ से ७० तक।
७. कवि घुघलीमल द्वारा रचित फुटकर साहित्य से ।
८. ह० लि० फु० साहित्य से एव नथमल भजनावली, पृ० सं० १ से २८ (कवि नथमल) ।

रीजवीयो, पीछाण, पछाडियो, उगणीसे, इकावण, उण राख्यो, रैण, रमती, काकरो, किणविध, सिणगार, चादणो आदि ।[१]

करणी करै कूं सारद, मूरधर, जाण, वूषाण, तणै, उतारणा, तडकै, माखण, मतीरा, जांवू, खीचडी आदि ।[२]

मोडा, नैछो, उतरसी, सरता, पतासा, जोणो, पारखी, सैण डूगर म्हारी, पकड़सी मूरखां किणरै, कूड़ी चालणो ।[३]

झैमपति, वीजल, धरूडड, पालज, जनपत, डेडर, रीसीया, धुरडाट आदि ।[४]

वीझोरी, पाणी, ताणी, माछली, ढाकणी, उढण आदि ।[५]

भाणी, मारियो, सगती, रीकव, वीरमा, सीव, परभात, सिणगार, राणीया, भळकै, पळकै, भरदेव, जड़ीया आदि ।[६]

पांण, भांण, वषाणूं, अमीया, परगटीयो, दुनीयांण, रेह-माण, सीमरण, असरण, परथी, वांभणा, पषी, इणसर, आषर, जोगेसर, अरूड, दिणयत, झालर, अधारो, दरसण, सिंवर आदि ।[७]

भटियाणी, सुणावे, आणंद, असवार, मडारो आदि ।[८]

दिखावण वाळो, उवारण, करणीयो, किरोध, निसतारो आदि ।[९]

मेणको, चादणो, सैण, संभळगी, आंतडीयां, फळगी, नैणां आदि ।[१०]

---

१. शनीसरजो की कथा पृ० स० १ से २४ एव हृ० लि० प्र० से (कवि रामरख)
२. रामलीला (प्रकाशित) कवि केवलराम वडलू ग्राम, पृ० १ से ८६ ।
३. परसराम—हृ० लि० कु० १ से ३० तक, पृ० सं० १ से ६० तक ।
४. हृ० लि० (रूगनाथ मौरसी), छद लीलावत से ।
५. गुटका न० १२६।५० ३७६३ रा० प्रा० वि० प्र० बीकानेर से (कवि देपाल) ।
६. कवि भीदाजी, हृ० लि० गु० पृ० स० ५७ से स्थान कुचेरा ।
७. हृ० लि० प्र० कवि भूरजी के फुटकर पत्रो से ।
८. कवि वशीलालजी के फुटकर साहित्य से ।
९. कवि माणकलालजी के फुटकर पत्रो से ।
१०. कवयित्री कानीवाई के फु० सा० से ।

अंग्रेजी–शब्द

इंगलिस, ओफीसर, कंट्रोलर, मुस्लिम, प्रिंस आदि ।[1]

इंगलिस, ओवरकोट, फैशन कोट, बूट, सूट आदि :[2]

आई, रोम, फुल, आक, सिन्स, काइम, दाहू, ओ लार्ड, कमीशन, टाईम, दाई, विल्स आदि ।[3]

अरवी–फारसी–उर्दू आदि के शब्द

अगर, जेर ।[4] अरज, खलक जाम आदि ।[5]

गुजारा, हफ्ते, अंदाज, अर्जी, मर्जी, मुलक, फायदा, मदरसा आदि ।[6]

जिगर, कुरवान, अरमान, दोरो, हरम, साईफत, दिलदार आदि ।[7]

हिसाव, जिन्दगी, फर्क, कारीगरी, गम आदि ।[8]

गुलजार, खयाल, शेर, अव्वल अदि ।[9]

अरमान, अफसोस, आरजू, आहिस्ता, प्यादा, दिल, दावा, दहशत आदि ।[10]

तद्‌भव शब्द

पियारो, तिहारो, ऊवारो, काज, कामण, दरस, पधारो, सहाय, छाजै, भावै, परकासे ।[11]

---

१. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० १ से २५ तक से ।
२ ह० लि० ग्र० (कवि तेज) खराज वावनी से ।
३. ह० लि० ग्र० (कवि देवीचन्द), पृ० सं० १ से ६० तक से ।
४. रघुनाथरूपक गीता रो (कवि मंछ), पृ० स० १ से २५ तक ।
५. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० सं० १ से २५ तक ।
६ कवि तेज द्वारा रचित साहित्य से ।
७ ह० लि० ग्र० कवि देवीचद के साहित्य से ।
८. नथमल भजनावली से ।
६. शनिसरजी की कथा मे ।
१०. अन्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की रचनाओं से ।
११. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण), पृ० स० १ से २५ ।

जोडी, जाणे, मोल, सजनी, सविता, संसार, जीभ, दातार, परतीत, मीत ।[1]

तत्सम शब्द

रसना, कोमल, सुरपति, नल, शिव, हरपति, प्रभु, नीर, मार आदि ।[2]

अर्द्ध-तत्सम शब्द

परभात, सांची, नगरी, पदारथ, जनम आदि ।[3]

पंजाबी शब्द

वधाईयां, वोलइयां, दुःख दैया, गल, तुसो ।[4]

वगाली शब्द—धोरी, माहे, जीया आदि ।[5]

मराठी शब्द—मोडु, मीस, मीआला, तुग ।[6]

गुजराती शब्द—नाछै, कत्ती, थत्ती, ऐम छै, केम छै ।[7]

संस्कृत शब्द—स्वीकारम्, वारम्, मजरम् आदि ।[8]

पूर्वी—खवरीया, पीपरवा, नंजीपखा आदि ।[9]

शैली

किसी मनुष्य में सरलता होती है, किसी में कृत्रिमता। कोई मनसा, वाचा, कर्मणा एकरस होता है तो कोई प्रदर्शन-प्रिय होता है। व्यक्तित्व की ये विशेषताएं जैसी भीतर होती हैं, वैसी ही भाव भंगिमा लेकर वाहर भी प्रकट होती हैं। भावो के व्यक्त होने पर

---

१. नथमल भजनावली, पृ० स० १ से २०।
२. नथमल भजनावली, पृ० सं० १ से २० तक।
३. वही
४. ह० लि० प्र० (कवि देवीचन्द), पृ० स० १ से ६०।
५. वही
६. वही
७. वही
८. वही
९. वही

रचना का जो एक रूप स्थिर होता है, उसी को शैली कहते है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित कृतियों मे हम विभिन्न शैलियों के दर्शन करते है—(१) वर्णनात्मक शैली (२) प्रगीत शैली (३) गीति शैली (४) उपदेशात्मक शैली (५) मुक्तक शैली (६) सम्बोधन शैली (७) प्रबन्धात्मक शैली।

वर्णनात्मक शैली

अभिव्यजना कौशल का एक आवश्यक एवं अनिवार्य तत्त्व शैली भी है। यही वह उपकरण माना गया है जिसके कारण काव्य मे रोचकता आती है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवि प्रयाग द्वारा रचित अभेगुण ग्रंथ मे हमे सर्वत्र वर्णनात्मक शैली के ही दर्शन होते है। इस कारण उसमें प्रवाह, स्वाभाविकता, सजीवता आदि अनेक गुण विद्यमान है। सूची परिगणन, युद्ध वर्णन, हाथी का वर्णन, घोडा वर्णन, फौज वर्णन आदि को चित्रित कर कवि ने वर्णनात्मक शैली का स्पष्ट-परिचय दिया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

युद्ध वर्णन

गजै वाज गैणात्र जाग वीरत भुभारा
आग तोप उछळे, गिणे नह जिका लिगारा
वीर हाक वापरै, घीर जूटा पग धारा
तीर वान ततवार, जवन गिर पड़े हजारा।[1]

घोड़ा वर्णन

चित चंचल गत चंग अग अणभग अप्रवळ
विढ नैया आरे वग, विहंगपत धाव चहुवल।
वाग राग के वस, पाग मिल खेल पिलावे
अंगनरूप अेराक, भूप अभसा मन भावे
करिके पलान तग दुतंग कस आरीसै सारसां।
कमधैस अगै हाजर कीये, सिलह संवुत सपतासू सा।[2]

---

१. अभेगुण छद स० ११८।
२. वही, छद सं० १६०।

हाथी वर्णन

माहुत वस मैमंत, वोल थापल विरदाए
पूजीझाड रूमाल, चरच सिंदूर चढाए
मेघाडवर मंड, किता होदा जंगीघर
सोवत देत वेगड़ी, तिकै किर सकत तणाकर ॥[1]

सेना वर्णन

अयुत एक असवार, पांच हजार पयादा
अरावो अणयार, जोम पंड धरीयो जादा
तुरकोनाको तोत, विलंद मनमानं विचार
आप पेग असवार, सात होदा सिरदार
इण भांत फौज ले चढि असुर लडंण रूप आगे लीयां
मोरचा पहल आयो मुगल, मार मार कुरतो मीया ।[2]

तात्पर्य यह है कि कवि प्रयाग ने शैली के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है तथा उसमें सरलता एव सजीवता के गुण विद्यमान है।

प्रगीत शैली

यद्यपि यह सत्य है कि निराला की भाति सगीत शास्त्र का व्यापक आधार इन कवियों ने नही लिया है तथापि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित गीतो मे शब्दों की लयपूर्ण अभिव्यक्ति असन्दिग्ध रूप से वर्त्तमान रही है। इसी प्रकार कोमल कान्त पद-विन्यास के आयोजन द्वारा भी उन्होने गीतो को सहज आकर्षणमय वना रखा है। उदाहरणार्थ—

मीठी राखो मानख से साकर अमरत समान
जहर न भावो जीव से मेल दियो अभिमान
मेल दियो अभिमान ध्यान समरण कर धारो
जग ओ वीतो जाय, राम से है निसतारो ।[3]
सिवरदेव कासव सुत जग आणदकारी
उदौ करण अंधाहरण किरणाधारी

---

१ वही, छद स० ८० ।
२. अमंगुण, छद स० ६२ (प्रतिलिपि से) ।
३ ह० लि० प्र० (कवि परसराम), पृ० सं० १४ ।

भळ हळ तेज उदैभांण
पढ़त पढ़ता रैय पुरांण
गढ मढ वाजा निसांण
सासतर विध सारी ।सिवर।[१]

गीति–शैली

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाएं अधिकतर पदों, दोहो, सवैयों, गीतो ग्रादि के रूप मे लिखी गई हैं। ये अलंकारो के चक्कर मे नही पड़े कुछ स्वतः ही आ गये हो, वह वात ग्रलग है । गीति शैली के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

देशी वोलणा इमरत वोल मुसाफर वोलणा मीठा
इण रसना मे वरसै तो इमरत, इण मही जहर अडोल
मधुर वचन धन सव जुग मोवत, तन मन वढतो तोल
ग्रादर दादर मेघ खूशी सव, मेघ पवैयो कोयल
भासन कुट से होत सभा भंग, रज पर घोल मचोल
राजी देवीचंद प्रेम की रसना, रांम रटो रंग रोल ।[२]

नाचे मोर निहारे अहिफण ऊपरे
मूपक सीस न धारै घात मजारिया
माहोमाह न मारै वैर वुन्यादरा
ऐसे तेज ग्रकारै राजै रघुपति ।[३]

श्री गंगश्याम प्राण को पियारो, सुख करता दुःख दूर निवारो
मरुधर देस जोधपुर मंडी, गगश्याम को धाम निहारो
चिन्ता दूर चूर कर दानव, सहाय करण प्रभु वेग पधारो
दास हरी कर जोड़ कहै प्रभु, चित्त चरणन मे राख हमारो ।[४]

उपदेशात्मक शैली

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ में उपदेशात्मक शैली

---

१. ह० लि० भजनमाला (कवि मंगलदास), पृ० सं० २८–२९ ।
२ ह० लि प्र० (कवि देवीचंद), पृ० स० २१ ।
३. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० सं० २७३ ।
४. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० सं० १२ ।

के भी दर्शन होते है । उदाहरण प्रस्तुत है—

वीरा ओ थे कुलवान कहाओ आईजो कुल मरजाद निभाईजो
वीरा ओ लाईजो सारा घर के सारु अवसर मती चुकाईजो ।
वीरा ओ अवसर चुक्यो हाथ न आसी, वीनतडी चित लाईजो ।
वीरा ओ सुसराजी रे पांचों कपड़ा, दिवर जेठजी रे लाईजो ।
वीरा ओ सास नणंद जैठाणी म्हारी, दिवराणी के ताईजो ।
वीरा ओ साडी दामन अंगिया लाईजो, सुंदर वीर सिंचाईजो ।
वीरा ओ बेनायां रै पांचों कपड़ा, लाईजो भूल न आईजो ।[1]

कहू नैण कटारी कपटी, पर नारी काटे काळजो
परनारी में प्रीतड़ी स थे, परहर जो पुनवांन
ग्यांन श्राव चतुर नर भणीया गुणीया
धरो एक चित्त ध्यांन जी ।।कहूँ।।१।।

वोहत उमदा मीठी वोले, धन करवावे तोही धोको
परनारी से करे प्रीतडी, जीव जखम रो जोखो
फैल फतूरा होय फजीता, मान घटे जुग मांये
पाप स्थान चौथो है परतक, जको नरक में आवे ।[2]

ए देसी : कोई देखो अजमाय के
संतों की सदा सुखी है ।[3]

मुक्तक-शैली

हमारे आलोच्य कवियों की रचनाओं में मुक्तक शैली के दर्शन स्थान स्थान पर होते है। कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं—

पाछै पेढी पोकदा, मिलती है कठे ई न माघ
ठौर जगह सूनी पड़ी, कूकै उठी उठी काग ।
कूकै उठी उठी काग, चतुर नर समझो चेतो,
भले ज धोवा हाथ, वरै जळ निरमळ व्हैतो ।

---

१. ह० लि० प्र० (कवि नथमल), पृ० स० ३७ ।
२. ह० लि० (कवि देवीचंद), पृ० स० ५५ ।
३. वही (कवि देवीचद), पृ० सं० ४७ ।

रँणो के "परसराम" खटीयो कोइक खासँ
मिलती कठैई न माघ पोकदा पेढी पाछै ।[१]

धरम वात ना धीर, राड़ ही सालो मोड़े
जुलस चीता जाय, वणी वात फिर वग्गड़े
कँवे रुगनाथ हरखे कांसू कोतो लिखे कवूतरी
उण जगँ जीव रँसी अदर, डांग वजी जमदूत री ।[२]

रामजी ने हाथ पकड कर लावे
मात कौसल्या धोय वदन तव मिसरी दूध पिलावै
इत उत चितवत धीरे ही धीरे नाही पावे वजावै
"केवलराम" सखा संग खेलण उठ हाथी धावै ।[३]

सम्वोधन–शैली

सम्वोधन शैली के अन्तर्गत प्रायः कवियों ने अपनी आत्मा-को ही सम्वोधित करते हुए भावाभिव्यक्ति की है और इस आत्म कथन मे यथास्थान पर उद्बोधन शैली का भी समावेश किया गया है। इस कथन से तात्पर्य यह है कि उन्होने अपनी कविताओं में अनेक स्थानो पर उद्बोधन-परक शैली का प्रयोग करते हुए आत्म-जागरण की आवश्यकता को प्रतिपादित किया है।

उदाहरणार्थ—

कीड़ी कंजर कंतवो, जीव वरावर जाण
अपनी सरींखी आतमा, पेला तंणी पीछाण
पेला तणी पीछाण, दु.ख कने नी देणो
जक पत पूछे जाय, राम से डरते रैणो[४]

कवि का तात्पर्य है कि अपनी आत्मा के समान ही कीड़ी, कजर, कतवो आदि जीवो की आत्मा को जानना चाहिए और उन्हें कभी नही सताना चाहिए। हमे सदैव राम अर्थात् परमात्मा से डरते

---

१. ह० लि० प्र० (कवि परसराम), कुडलिया स० २५।
२. ह० लि० प्र० (कवि रुगनाथ), क० स० २८।
३. रामलीला (कवि केवलराम), कवित सं० ६।
४. ह० लि० फुटकर काव्य से (कवि परसराम), पृ० सं० ८।

भी रहना चाहिए। फिर जगत् को सम्बोधित करते हुए कवि बतलाना चाहता है कि अभिमान करते हुए कभी मत चलो—

करड़ा करड़ा मत करो, जप जप पणौ को जाप
साकड़ी सेरी चालणो, हकरो होई हिसाव
हक रो होई हिसाव, रक ने कुण है राजा
मोरां पूठे मौत, लेखवो किणा ने राजा ।[1]

प्रबन्धात्मक-शैली

हमारे आलोच्य कवियों की रचनाओ मे प्रवन्धात्मक शैली भी चित्रित हुई है । इस शैली मे उन्हे चरित्र-सृष्टि कौशल दिखलाने का अवसर भी प्राप्त हुआ है । चरित्र-सृष्टि के परदे में, घटना-प्रवाह के सिलसिले मे कवि जिन भावो और विचारो को व्यक्त करने का प्रयास करते है, उनमे एक अद्भुत सौन्दर्य आ जाता है । इस शैली का अनुसरण करके उन्होने कुछ ऐसे चरित्र हमारे सामने रख दिए हैं, जिनके जीवन से हम अपने जोवन का आदर्श प्राप्त कर सकते हैं । उदाहरणार्थ रघुनाथरूपक गीतां रो में श्रीरामचन्द्र, सीता, कौशल्या, लक्ष्मण, हनुमान आदि चरित्र विचारों के एक पुंज है, जो विविध मानवी व्यापारो के वीच चित्रित होकर भिन्न-भिन्न जटिल समस्याओ का एक हल हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं ।

तात्पर्य यह है कि हमारे आलोच्य कवियों ने नवजागरण की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया है । इससे उनका काव्य मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक वन गया है । उनके काव्य की चित्रोपमता, सरलता, सुवोधता, रसज्ञात्मकता एवं धारावाहिकता अत्यन्त सराहनीय है । इस प्रकार यह स्पष्ट कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य मे विभिन्न शैलियों के प्रवाह में विविध तरगित काव्य-प्रवाह का दर्शन हो जाता है तथा इसमे उनकी नवीनता एवं मौलिकता के दर्शन होते हैं ।

(ख) भाव-विधान

भाव

मानव-हृदय मे अनेक भाव स्थित रहते है । ये भाव हृदय

---

१. वही, पृ० स० १५ ।

में सुप्तावस्था मे पड़े रहते हैं और किसी विशेष कारण से जाग्रत होते हैं। जैसे वीणा के तारों को यदि न छेडा जाय तो वे निस्पंद और शान्त रहते है किन्तु जैसे ही उनको उगलियो से छेड़ा जाता है वैसे ही वे झंकृत हो उठते हैं। उसी प्रकार ये भाव हृदय मे सुप्तावस्था मे पडे रहते हैं और किसी विशेप कारण के घटित हो जाने पर जाग्रत हो जाते हैं। मनुष्य के हृदय मे वहुत सी इच्छाएं उठा करती हैं। ये ही इच्छाएं भाव का रूप धारण करती है।

स्थायीभाव

मानव–हृदय मे वासना रूप में स्थित मनोविकारो को काव्य में "स्थायीभाव" की सज्ञा दी गई है। मानव-हृदय के ये मूल भाव है और इनसे कोई भी सहृदय मानव अछूता नही रहता। ये स्थायी–भाव स्थायी रूप से चित्त मे स्थिर रहे है। इसको कोई भी विरोधी भाव छिपा नही सकते। इसी कारण उन्हे स्थायी भाव कहा जाता है।

आचार्यों ने स्थायी भावो की संख्या नौ मानी है। अनेक आचार्य इस संख्या में घटावढ़ी करते रहे है। फिर भी इस सख्या को अधिकाश आचार्यो ने मान्यता दी है।

ये स्थायी भाव हैं--क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद, रति, हास, शोक, उत्साह। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं में स्थायी–भावो का निरूपण निम्न प्रकार से मिलता है—

रति

आज पेलडी रात छै पिया,
सुगन करे सव गांम।
अपा ई रीत को रायतो म रे,
करा सूवण रो नाम।[1]
दिन दिन प्रीत वदा वसास्मो,
रंग रसिया रे साथ।
महल पधारो सायवा स रे,
आज रसीली रात।[2]

---

१. नैन ग्गशम को खेल पृ० स० ३१।
२. मूंमल मेंमदे का खेल, पृ० स० १७।

संयोग-शृंगार

वारद विद्युत वरण, पीत अरु धरण नीलपट ।
तरह मदन रत तणी, देख दिल दरप जायं तट ।।
पत आलंबन प्रिया, प्रिया आलंबन पीव वर ।
हेक प्राण दुय देह, प्रीत अणरेष परसपर ।।[1]

हास

एम करी अरदास हवै हरि सो मुख महारो
मुलक मुणै महाराज हुसी जो चाह तिहारो ।।
वांदरा तणों वणियो वदन, धर वीणा, दरगह धसे
संपेख रूप सगळी सभा, हुडहुडहुडहुड हसे ।।[2]

शोक

हाय मिरग कुमार हमारो लीनो छीन सवाग ।[3]
दारुण नगर सोक जुत देखे,
दोलत विणज वजार न देखे ।[4]
जाणे हरघट री जो पिण, सोजे आश्रम सारा,
पूछै पाहण रुख पखेरु, धुवे चखां जळधारा ।[5]

उत्साह

मेघाडवर मंड, किता होता जंगी घर
सोवत देत वेगड़ी, तिके फिर सकत तंणोकर ।[6]
राघव उमंग हंस हस रटै, खेलूं खगां खतंग रो
रिम हणे आज पुरंर ली, जुडूं अखाड़ो जग रो ।[7]

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ३६ ।
२ वही, पृ० सं० ४६ ।
३. जोग भर्तृहरी का ख्याल, पृ० सं० ३७ ।
४. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ११२ ।
५ वही, पृ० सं० १३६ ।
६. अमैगुण ग्रंथ छ० स० ८० ।
७. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० ४७ ।

क्रोध

हूँ चावंडा, हूँ चिरताळी हूँ कालिका हूँ कंकाळी
पीरण हीक वुढी पीण हीक वाळी, हूँ चाचर रिरण चूसरण वाळी ।[1]
मे धरती कामां मियाजी खेलावन मे शिकार
जो कोई आवे वार मे जी उनकूं लेवा मांर ।[2]
तूं कहा से लाई जलदी कर
जाहर गनका नार हो ।[3]

उपरोक्त पंक्तियों मे अनिष्ट अथवा अनुचित कार्य करने वाले व्यक्तियो के प्रति तीक्ष्ण भावो मे क्रोध की अभिव्यजना हुई है ।

इसी प्रकार शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की रचनाओ मे भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद आदि भावो की भी अभिव्यक्ति के दर्शन कही कहीं होते हैं ।

विभाव

मानव अपने हृदय मे स्थित काम, क्रोध, भय आदि भावो का अनुभव विशेप कारण से करता है । जो कारण इन भावो को जाग्रत करते है, वे "विभाव" कहलाते हैं । विभाव के दो भेद किए गए हैं—

(१) आलम्वन विभाव
(२) उद्दीपन विभाव

अव हमे देखना यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं मे विभावो का चित्रण कहां तक सफल हुआ है ।

आलम्वन विभाव

जालो चाप पिता परण जावो
हरण जावो जोधा जिग हार

---

१. माताजी गे छंद, पृ० स० ६ ।
२. जोग भर्तृहरी का ख्याल, पृ० स० ३६ ।
३. वही, पृ० स० ४८ ।

चित्त तो राख लिया मृदु चरणां
भाव लियो मृदु राघव भरतार ।[1]

यहां पर सीता के लिए श्रीराम आलम्बन है। सीता ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि चाहे पिता का प्रण टूट जाय, चाहे तमाम योद्धाओं को मार डाला जाय और चाहे यज्ञ भ्रष्ट हो जाय, पर मेरा मन तो रामचन्द्र के कोमल चरणों ने रख लिया है और मैंने तो रामचन्द्र को पति कह लिया है ।

उद्दीपन विभाव

तडफे जीव हमारो नृप तैं कीनो पाप अघोर
वेदरदी निरदई तुम्हारे मचे राज में शोर ।[2]

अनुभाव

स्थायी भावों का अनुभव कराने वाले अनुभाव कहलाते है । भावोद्रेक होने पर आश्रय कुछ क्रियाएं करता है क्योकि भाव जाग्रत होकर सक्रिय हो जाता है । ये क्रियाए ही अनुभाव कहलाती हैं— उदाहरणार्थ-भयानक अन्धकारमय, सुनसान जगल में भीमकाय डाकू को यदि कोई व्यक्ति देखता है तो उसके हृदय में भय का भाव जाग्रत होता है । भय के भाव के जाग्रत होते ही वह कांपने लगता है, उसका मुख सफेद पड़ जाता है और प्राण बचाने के लिए वह वहां से भाग खडा होता । इस उदाहरण मे भयभीत व्यक्ति "आश्रय" है, डाकू "आलम्वन" है, सुनसान निर्जन जंगल "उद्दीपन" कोटि में आयेगा तथा भय के भाव से जाग्रत होने से उत्पन्न चेप्टाएं हाथ पैर कापना मुख का सफेद होना, भाग जाना आदि अनुभाव की कोटि मे आयेगी।

आचार्यों ने अनुभवों के चार भेद माने हैं—

(१) कायिक,
(२) मानसिक,
(३) सात्विक,
(४) आहार्यं ।

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० ७४–७५ ।
२. जोग भर्तृहरी का ख्याल, पृ० स० ३८ ।

हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओ में अनुभावों की अभि-व्यक्ति जिन स्थलों पर हुई है, उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं —

हूँ चावंडा, हूँ चिरताळी, हूँ कालिका हूँ ककाळी
पीण हीक वुढी पीण हीक वाळी
हूँ च चर रिण चूसण वाळी ।[1]

उपरोक्त पक्तियो मे देवी ने राक्षसों के प्रति क्रोध भाव के उदय होने पर यह रूप धारण किया है। अतः उसका कंकाली, चिरताली आदि होने की चेष्टाए कायिक अनुभाव को स्पष्ट करती हैं ।

मानसिक

गुरु को भाव रखे हिवड़े में
सो नित विजय कमावे ।
करे कपट उत्पात सूस वो
नुगरा नीच कहावे ।[2]

संचारी भाव

मानव-हृदय मे रहने वाले कुछ भाव तो ऐसे होते हैं जो सदैव स्थित रहते हैं—इन्हे स्थायीभाव कहा जाता है किन्तु कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जो अल्प समय मे उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं। ये सचारी भाव कहलाते हैं।

सचारो भाव स्थायीभाव को पुष्ट करने के लिए उत्पन्न होते हैं और जल में बुल्बुले की तरह उन्मज्जित एवं निमज्जित दिखाई दिया करते है । सचारी-भावों की संख्या अगिणत मानी जाती है फिर भी आचार्यों ने इनकी सख्या तेंतीस मानी है ।[3] निर्वेद, आवेग, दैन्य, मद, मोह, उग्रता, श्रम आदि इनके नाम हैं । महाकवि देव एक 'छल' नामक चौतीसवां सचारी भाव और मानते है ।[4] इसी तरह

१. माताजी रो छद, पृ० सं० ६ ।
२. जोग भर्तृहरी का ख्याल, पृ० सं० ३ ।
३. साहित्य दर्पण, ३।१४० ।
४. साकेत मे संस्कृति और दर्शन—डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ० १६२ ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चकपकाहट' नामक नये संचारी भाव का नामकरण दिया है ।[१] साधारणतया आचार्यों ने इनको संख्या तेंतीस ही मानी ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं में संचारी भावों का भी निरूपण हुआ है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

विद्या पढ पडत हुवा स मैं पाय रह्या सनमान
कै कै भूपति भेटिया स रे मिल्या वोत द्रवदान[२]

उपरोक्त पंक्तियों मे राजा के हृदय में आदर मिलने के कारण व्यक्ति के हर्ष की चेष्टाएं उत्पन्न हुई है। अतएव सचारी भाव स्पष्ट है ।

उछरग अत त्रिध बेद उत्तम । रचे मंडप रीत ।
सुत चार दशरथ तणा साथे । परणियां कर प्रीत ।[३]

अत्यन्त हर्ष से वेद की रीति के अनुसार उत्तम मंडप वनाया । इसमे दशरथ के चारों पुत्रो ने एक साथ विवाह किया । यहां हर्ष भाव सचारी है । फिर—

आया मृग मार सेस नूं आखे, वंधव । सुणो सवीता
दारुण कुटी विडंगी दीसे, सही गमाई सीता
रे मन मीता रे मन मीता किण विध कीजिए ।[४]

सीता के वियोग मे रामचन्द्र व्याकुल हो गये और चिन्ता के कारण शून्य चित्त हो गये । यही व्याधि नामक संचारी भाव है ।

रघुपत जगतमिण उपसास रालै भामणी
चिहु ओर भाले तन विचाले जो वर
चित्त लाग चाले गात गाले घर संभाले धीर ।[५]

वलवान जगत् के मणि रामचन्द्र ठंडी आहे भरते हुए चारों तरफ बन मे अपनी स्त्री (सीता) को देख रहे है । चित्त लगाकर

---

१. वही, पृ० १६२ ।
२. जोग भर्तृहरी का ख्याल—कवि तेज, पृ० सं० ४१ ।
३. रघुनाथरुपक-गीतां री, पृ० स० ८४ ।
४. रघुनाथरूपक गीतां री, पृ० सं० १३८ ।
५. वही, पृ० स० १४५ ।

और अपने शरीर को गलाते हुए धैर्य के साथ पृथ्वी को देखते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि यहां राम के हृदय मे धैर्य है और यही धैर्य भी संचारी भाव है।

रस–विनिवेश

'रस' शब्द भारतीय सस्कृति और साहित्य के चरम विकास से सम्बन्धित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है, खाद्य–पदार्थो और फलो के क्षेत्र मे रस मधुरतम तरल पदार्थो का द्योतक है। सगीत के क्षेत्र मे कर्णेन्द्रिय द्वारा प्राप्त आनन्द का नाम रस है। चिकित्सा के क्षेत्र मे सर्वोत्कृष्ट प्राणदायिनी औषधियो को 'रस' कहा जाता है। अध्यात्म के क्षेत्र मे स्वयं परमात्मा को ही रस या रस को ही परमात्मा घोषित किया गया है—"रसो वै सः" अर्थात् रस ही परमात्मा है।

इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी काव्य के आस्वादन से प्राप्त आनन्दानुभूति को ही रस की संज्ञा दी गई है। अस्तु, काव्यानन्द ही रस है।

रस का आस्वादन करते समय मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। उसका पृथक् अस्तित्व नही रह जाता, अपितु रस का अनुभव वह मनुष्यमात्र होकर करता है। यही रसास्वाद कराने वाला साधारणीकरण है। आज यही मत अधिकाश आचार्यो को मान्य है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित काव्य को पढने से अथवा श्रवण कहने से काव्यानन्द की लहर हृदय में किस प्रकार उठती है, यही हमे देखना है अथवा यो कहना भी गलत नही होगा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य मे किन किन रसों का प्रयोग हुआ है, यही हमे देखना है। हमारे आलोच्य कवियों की रचनाओ का अध्ययन करने से पता चलता है कि करीव करीव सभी रसो का प्रयोग इन कवियों ने किया है।

शृंगार रस

वारद विद्युत वरण, पीत अरु घरण नीलपट।
तरह मदन रत तणी, देख दिल दरप जाय दट ॥

पत आलवन प्रिया, प्रिया आलंवन पीव वर ।
हेक प्राण दुय देह, प्रीत अणरेह परसपर ।।
नह हुई न होवे है नही, सो छव जोड़ समान की ।
मिल वसो मंछ मन मदिरां, जो श्री रघुवर जानकी ।[1]

उपरोक्त पक्तियों में कवि स्वयं आश्रय है तथा राम और सीता दोनों आलवन हैं। अद्वितीय सौंदर्य उद्दीपन विभाव है। उनकी छवि और दवना अनुभाव है तथा चपलता, आवेग आदि संचारी भाव है, जिनसे परिपुष्ट होकर रति स्थायीभाव सयोग शृंगार के रूप मे परिणत होता है । फिर—

हो अमरत भरिया रे रंगदार तुम्हारे वैन में ।
हो जादु धरिया रे रतनारे थांरे नैन मे ।।
अमरत भरिया वैन मे रस थां मन वस कीनो वोल ।
वातां में पहिचांणिस मने पड़ियो सारो तोल ।।[2]

दोरो जीव करो मत प्यारी,
अपे खेलसां होरी ।
आपस मे रग छड़कसा स रे,
भर गुलाव की भोरी ।[3]

मांझो दिल हरकांय हठीली,
सरम छोड़ दिल खोल ।
एक रोज को कांम नही छै,
करो हमे सांचेल ।[4]

करुण रस

प्रिय व्यक्ति अथवा इष्ट वस्तु के विनष्ट हो जाने से हृदय मे उत्पन्न विषाद का भाव करुण रस की व्यजना करता है। विषाद की अनुभूति वियोग शृंगार मे भी होती है लेकिन वहा करुणात्मक

---

१. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० ३६ ।
२. नैन खशम को खेल, पृ० स० ५० ।
३. वही, पृ० सं० ५१ ।
४. वही, पृ० स० ४६–५०

दु.ख के साथ भविष्य मे मिलने वाले मिलन–सुख की आशा भी विद्यमान रहती है। अत· वहा विपाद संचारी भाव के रूप मे ही रहता है लेकिन करुण रस मे प्रिय वस्तु के या व्यक्ति के नष्ट हो जाने पर ही विपाद की अनुभूति होती है और भविष्य मे उस वस्तु के या उस व्यक्ति के मिलने की कोई संभावना नही रहती 'अतः वहा विपाद–जनित शोक स्थायीभाव रहता है, न कि सचारी'।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं मे भी कही कही करुण–रस की झलक देखने को मिलती है।

घणां घाट लघणां, नदी परवत नद नाळा।
वन है वेटा विकट, पंथ चालणो ऊपाळां॥
कहर भूख काढणी, गिणे दुख किसा गुणीजे।
कहु वात यह कंवर श्रवण, वै भ्रात सुणीजे॥
दतो वराह नाहर दनुज, सो तिण ठा रह सांणता।[1]

उपरोक्त पक्तियो मे प्रियजन वियोगजनित शोक से करुण रस प्रकट होता है।

हास्य रस

विचित्र रूप, वेश, वाणी, आकार, कार्य आदि को देखकर जो हास भाव हृदय मे उत्पन्न होता है, वही हास्य–रस ठीक रहता है वरना सीमा के वाहर विचित्रता अनिष्ट का कारण भी हो सकती हैं और वह करुण की व्यंजक हो सकती है। हमारे आलोच्य कवियो की रचनाओ मे भी हास्य–रस की अभिव्यक्ति कही कही देखने को मिलती है। उदाहरण प्रस्तुत हैं—

नारद कहियो नाथ अचल हूँ तपकर आयो।
सुण ग्रब वच, दे सीख वीच वन नगर वणायो॥
जठै स्वयवर जोय, धीय वीमाहि नीलधुज।
नृप कन्या रो नूर देख, प्रभु कनै गयो दुज॥
एम करी अरदास, हुवै हरि सो मुख महारो।
मुळक मुणे महाराज, हुसी जो चाह तिहारो॥

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ४५–४६।

वांदरा तरगो वगियो वदन, धर वीणा दरगह धसे ।
सपेख रूप सगळी सभा, हडहडहडहड हड हसे ।।[1]

उपरोक्त पंक्तियो में नारद का वदर रूपी मुख देखकर हंसने वाली सभा के व्यक्ति आश्रय है तथा नारद का विचित्र रूप आलंबन। उसकी विचित्र चेष्टाए उद्दीपन है । उसे देखकर हंसना सचारी भाव है । इन सभी से परिपुष्ट होकर हास स्थायीभाव हास्य-रस मे परिणित हो गया है ।

शांत रस

संसार और शरीर की नश्वरता से चित्त मे एक विशेष प्रकार की उदासीनता उत्पन्न होती है और भौतिक वस्तुओं के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है । इसी को निर्वेद कहते हैं। आलम्वन आदि के द्वारा यही पुष्ट होकर रस वनता है । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओं मे शान्त रस जिस प्रकार अभिव्यजित हुआ है, उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

रात दिवस इण रीत, प्रगट घटियाल पुकारै ।
मिलियो मिनखा जनम, लाख चवरासी लारै ।।
खाली तिको न खोय, जोय वहतो जग जालम ।
पडियां त्यांरी खवर, मिलै नंह कीवी मालम ।।
चेत रे अजूं मनड़ा चतुर, रट रट श्री सीतारमण ।
करुणानिधान सूं गहज कर गमै सहज आवागमण ।[2]

काया माया झूठ मोह वस, तूं मानत है साच ।
कोटि जतन कर अन्त विलावै, जैसे सीसी काच ।।
कर कल्याण मनुष तन पायहु, विषियन मे मत राच ।
'नथमल' जनम सफल करणे कूं, हरि पद भगती साच ।।[3]
वालपणो खेलण मे खोयो, वैठि खेल की खोल ।
ना भजियो भगवान भूलियो, कियो गरभ में कौल ।

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० ४८-४९ ।

२. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ) पृ० सं० ६३ ।

३. ह० लि० प्र० कवि नथमल, छ० स० १४७ ।

जोवन में युवती वस होकर, पियो विपय विष घोल ।
ग्रव चित्त चेत चितार हरीपद, जात समै अनमोल ।।[१]

उपरोक्त पंक्तियो मे कवि स्वयं ग्राश्रय है। सांसारिक मनुष्य का जीवन आलम्वन है। विश्व में ग्राकर प्रभु को भूल जाने की मनोवृत्ति उद्दीपन है। मन को चेतन करने हेतु आग्रह करना, समय के प्रति चित्त को चेतने के लिए कहना ग्रादि अनुभाव है। मति, धृति, निर्वेद आदि संचारी भाव हैं। इन सभी से परिपुष्ट होकर जीव को चेतने के लिए कवि का निर्देश देने के स्थायी भाव से शान्त-रस की व्यंजना हो रही है।

फिर कवि हरिनारायण पुरोहित तो सांसारिकता के मोह से दूर ही रहना चाहता है। इस भवसागर से वहमुक्ति चाहता है। कवि की इस आकांक्षा की अभिव्यक्ति इन पंक्तियो मे हुई है—

ओ संसार जार को पीजरो ममता मे पच पच हारो,
भवसागर मे भटकत खोवे मानख खलक जमारो ।[2]

फिर

चित्त चेत परो, शुभ काज करो,
जनम द्वार चौरासी का टरै ।
तज काम किरोध कपट तन सूं,
शुद्ध भाव दया दिल माय धरै ।[3]
सत संगत से लाभ घनेरा ।
ग्रौर जगत का झूठा डेरा ।।[४]
मात पिता वहनड सुत भाई ।
स्वारथ के सव लोक लुगाई ।।[५]
ये मेला जगत का खेला मे ग्राखिर तूं अकेला है ।[६]

---

१. वही, छद स० १४६ ।

२ ह० लि० प्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पृ० स० ११ ।

३. वही, पृ० सं० १६ ।

४ ह० लिसे ग्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), भजन सं० ४४ ।

५ वही, पृ० सं० १६ ।

६ तेजकवि कृत गायन—पृ० स० २२ ।

पोय पल पल में मोती से,
कुकरमों को मिटा प्यारे ।
नाफिकरा होय करके तूं
नौका कठिन भव से तिरावेगा ।[१]
परमारथ तन मन धन कीजे
स्वारथ में चित्त भूल न दीजे
चलता है भवसागर भारी
ले ले अपना जनम सुधारी ।।[२]
विषयक साथ विडार दो कामदेव अहंकार
विना कंथ सुराजो वधु ओ ससार असार ।[३]
तोकूं देत समें उठ हेला, आई प्रभु सुमरण की बेला।
ग्यान विन चौरासी वीती, मानव जनम दुहेला ।।
अव भूल्यां चौरासी चक्कर, के फिर मांय परेला ।
अब तो समझ अरे नर मूरख, जग सब झूठ झमेला[४]
स्वारथ विन कोई काम न आवे झूठे ये ससारिये ।[५]
झूठे सूंदरे जगत के, मनवांछित सव काज ।
रूठा सुन्दर दर फीरे मिले, न तिल भर नाज ।।[६]
औरन कोउ तेरे काम न आवै,
झूठा ये संसार ।
औरन आस काहु ना कर रे,
अव ही चेत गिवार ।[७]
औरन आस कहु ना कर रे,
अजहु न चेत चेत अभिमानी।
धू पैहलाद सदामा सिवरी,

१. वही, पृ० सं० २३।
२. वही, पृ० सं २५।
३. ह० लि० ग्र० (कवि देवीचन्द), पृ० सं० ३६ ।
४. नथमल भजनावली, पृ० सं० ७।
५. रामलीला, कवि केवलराम, पृ० सं० ५४।
६. शनिश्चरजी की कथा, कवि रामरख, पृ० सं० ८ ।
७. रामलीला (कवि केवलराम), पृ० स० २७।

ताकी प्रीत पिछानी ।[1]
हिया विच ध्यांन क्यूं नी धरता
सायब कूं याद क्यूं नी करता
भूलो मत मोह मे माया
काहूँ थिर ना रहै काया
त्रिया सुत ओर विन्याती
सवै हैं स्वारथ कै साथी
स्वारथ कर फंद में डारै
वीपत में होय जावे न्यारे ।[2]
मत जोवन रे मांय मोहिनी माया मांणो ।[3]
जाणो ए जीवडा रटतो क्यूं नी राम
आठ पीर आळूजीय कूडै घर के काम
कूड़े घर के काम, जाए ने धंधो भूठो
अचरज रो अत, आवनै कैसे उठो ।
रैणो के परसराम धन वन कूड़ो धरणो
रटतो क्यूं नी राम, जीवड़ा सै रे जांणो ।[4]

वीर रस

प्रधानतः वीर रस के चार भेद माने गये है—युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर और दानवीर । किन्तु वीर शब्द का जैसा प्रयोग प्रचलित है उसके आधार पर केवल युद्ध वीर मे ही वीर रस का प्रयोग सार्थक माना जाता है ।

रिपूत्कर्ष, धर्म-क्षय और दैन्यनाश के कारण कठिन कार्य करने की तीव्र उत्सुकता का भाव उत्साह कहलाता है और यही वीर रस का स्थायीभाव है । युद्धवीर मे शत्रु तो आलम्वन, उसकी ललकार और चेष्टायें तथा मारू वाजे, शत्रु का उत्कर्ष, सेनादिक उद्दीपन, वाहु-सचालन, स्ववल वर्णन इत्यादि अनुभाव होते हैं, तथा गर्व

---

१. वही, पृ० सं० ५४ ।
२. वही० पृ० स० ५४ ।
३. ह० लि० कवि रुगनाथ, क्र० सं० ३ ।
४. ह० लि० (कवि परसराम), कु० सं० १४ ।

औत्सुक्य, वितर्क आदि संचारी-भाव होते है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में भी वीर-रस की झलक देखने को मिलती है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

गंगागड्दि दुहुओड़ां दल गाजे,
तागड्दि तवल त्राजै रिणातूर ।
रागड्दि राम रावण जुध रोपे
सागड्दि समाम अडे सज सूर ॥[1]
छुटै सारै वाजै सार, घड़ घड पड़े धारो धार
आम्हों साम्ही आरीठ, त्रिपुरां रीपां माथे दीठ
पल रिप वहै, जलधरपाल, असुरां धरा कीथ डपाल
माझी रगत बीज मसत, रिण वट माहि रहीयो रत
एकण वून्द हूं अवतार उठै, लष देत अवतार
वाधी जेम भषती, वात उमीया कीयो उपाव
पुगो नही गग पताल, षपीयो षलष ले षेगालं
रिडियो नही भोम रगत, पीवे डाच भर भर पत्र ।[2]

फिर—

गजै वाज गैणाग जाग वीरत झुझारा
आग तोप उछळै, गिणे नहं जिका लिगांरा
वीर हाक वापरै, धीर जूटा खग धारा ।
तीन वान तरवार जवन गिर पड़े हजारां ॥[3]
वीरै वीर आवध लीधा वपांण वांण नाल गोलासुर
हप नाल हवाइयां छुट हालै पडै प्रसादा सुरै पाहाड पालै
तणै वांण कवांण भैभाण ताडै फरूकै पषांरा असमान फाडै
पीयै भूत सरवत मे मत पूरा, सूतो सिंभरा वागीया सुरसूरा
पलटै उलटै तिसो मद पीजै सिरी मांस वोटी तीयां मांहि सीझै
छिलौ छाकीया करै ओछक छका, डेराहु चढै देहटा मंक डंका
पुरै साज साषेत पुढै पलांण, तुरी आंणीया साहणी तंग ताण

---

१ रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० २१६ ।
२ माताजी रो छंद, पृ० १६ ।
३ अभंगुण ग्रथ (कवि प्रयाग) छं० स० १८८ ।

रळी सिंभ चढ़ीया कळी, विंद राजा वाजै राग सींधु तणा
वेह वाजा ॥[१]

तड़ा तड़ी तढै वगतरा तणी तूटे कड़ी ।
धमां धमी उढै धणं सैलारा धमोड ॥
सड़ा सड़ी जठै तरवारियां थी पडै भीक
रमै खगां महाराजा राजसी राठौड़ ॥[२]
नारायणी कीध निवास, उभीया रही लग आकास
रचीयो महाकाळी रूप, भूरी लहै मन मे भूप ।[३]

रौद्र–रस

अपना अनिष्ट या अपमान होने के कारण हृदय में जो रोष उत्पन्न होता है, उसे क्रोध कहते है । यही इसका स्थायी भाव है और यही परिपक्व होकर रौद्र–रस होता है ।

हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओ मे यद्यपि रौद्र-रस की अभिव्यक्ति वहुत ही कम देखने को मिलती है फिर भी कुछ रचनाओ मे अवश्य देखने को प्राप्त है । उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

आज करूं आराण निकसंता तवल निसाणा ।
वीस भुजा दस वदन विहंड राळूं तज वाणा ॥
परगण अंदप सुपह डहै वध तासु छुडाणू ॥
निरवीज करूं राकस निकर, मेटू फिकर त्रिलोकमिण ।
धारूं वभीख लकां धणी, तो हूँ दशरथराव तण ।[४]

उपरोक्त पंक्तियो में स्थायीभाव रामचन्द्र का क्रोध है। आलम्वन है रावण । संचारी भाव गर्व स्मृति आदि हैं जो परिपुष्ट होकर रौद्र–रस मे परिणत हुए हैं । रौद्र–रस का अन्य उदाहरण प्रस्तुत है–

दिवस केता दिल दराजै गुमर धारीया
आय गाजे रोप ताजे रोपिया ।[५]

---

१. माताजी रो छंद (कवि वीका), पृ० सं० १८।
२ वृन्दजी के फुटकर पत्र से ।
३. माताजी रो छंद (कवि वीका), पृ० सं० २५ ।
४. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० सं० ४७-४८ ।
५. वही, पृ० स० १४६ ।

भयानक–रस

भयप्रद वस्तु–वर्णन, सभीत व्यक्ति की चेष्टा कथन से हृदय मे भय भाव उठता है। यही भय इस रस का स्थायी भाव है। आलम्बन इसके भयकारी वस्तु, शत्रु, हिंसक, जन्तु आदि हैं। भयानक दृश्य, पशु उनके कार्य अथवा उनका उल्लेख आदि उद्दीपन विभाव है। कम्प, स्वेद, स्वर–भंग, मूर्च्छा आदि अनुभाव श्रम, चिन्ता, शंका, जड़ता, त्रास आदि इसमे सचारी भाव होते है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित काव्य मे भयानक रस की व्यंजना कई स्थलो पर हुई है। कुछ उदाहरणार्थ निम्नोक्त है—

> चहूँ चक्क चल चलिय सेस चल चलिय सहस सिर
> कमठ पीठ कलम लिय थहृण दळमळिय सुचर थिर
> दहले दिग्गज दिसा मेर, मरजादा मुक्किय
> अदल वदल जल उदध, चडि सिंध आसन चुक्किय
> भयभीत हुआ चौदह भुवरण, अवै गरभ तिय दिस–पतीय
> रघुनाथ कहो मझ उवर रिण कमर आज किण पर कसिया।[1]
> माथा हाले सेस मह पडे भार अणपार।
> कूच करे आया कठठ, लंगर लीधा लार॥[2]
> चंड दिगपाल दिस विदिस हुय चल,
> विचल तजी मरजाद वड अचल ताथा॥
> चहल तिहु लोक चल सिद्ध आसण चले,
> हरी ताली खुली सुल हाथा॥[3]

अद्भुत–रस

> सीस सरग सातमे परग सातमें पयाले।
> अरणव साते उदर, विरछ रोमाच विचाले॥
> नदी सहस नाड़ियां, प्रगट परवत मसपूरज।
> श्रुत दिस पवन उसास, सकल लोयण ससि सूरज॥
> शिव सूं उमंग पूछे सगत इचरज अत आवत यहैं।

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ४२।
२. वही, पृ० स० १७४।
३. वही, पृ० स० १७४।

ऊ कहो मोहि प्रभु संत उर रात दिवस किण विध रहै ।[1]

उपरोक्त पंक्तियों मे ईश्वर के विराट स्वरूप का वर्णन सुनकर पार्वती शिव से पूछती है कि जिस प्रभु का नस्तक सातवें स्वर्ग मे है, पैर सातवे पाताल मे है, सातो समुद्र जिसके पेट मे है, वीच-वीच मे जो वृक्ष हैं वे उसकी रोमावली है, हजारो जो नदियां हैं-वही उनकी नाड़ियां है, पर्वत उसकी हड्डिया है, दिशाये कान हैं, पवन उसका स्वासोस्वास है. कला-सहित चन्द्रमा और सूरज उसके नेत्र हैं, वह ईश्वर सन्त पुरुषों के हृदय मे रात दिन कैसे निवास करता है । यही विस्मययुक्त वर्णन होने से यहां अद्भुत रस की अभिव्यजना हुई है ।

यहा रामचन्द्र जी आलम्वन, उनके पैर सातवे पाताल मे और मस्तक सातवे स्वर्ग मे आदि उद्दीपन विभाव, पुलकावली, मतिभ्रम, कंप अनुभाव जड़ता भ्राति आदि सचारी भाव हैं । अत: पार्वती का आश्चर्य मे पड़ना स्थायी भाव है इन सभी से अद्भुत रस परिपुष्ट हुआ है ।

वीभत्स रस

रुधिर, अस्थि, मास मज्जा आदि घृणित वस्तुओ के देखने से अथवा श्रवण करने से उत्पन्न हुई घृणा वीभत्स रस की अभिव्यजना करती है । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो की रचनाओ मे भी वीभत्स रस की अभिव्यजना तो हुई है पर वहुत ही कम उदाहरणार्थ—

लीध ओट प्रहलाद, पिता तद कोप प्रगासे
जिणरै हित जगदीस, भांज खभ नरहर भासे
हिरणाकुस नै हणे निडर फाडे उर नख्खे
खळकाया रत खाळ, भरे डाचां पळ भख्खे
आंतडा तास पहरे उवर, दूर कियो दुख दास रो।
राखजे नेक आलम रटै, एक उणी रो आसरो ।[2]

उपरोक्त पक्तियो मे हिरण्यकश्यप को मार डालने का दृश्य आलम्बन

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० ४० ।

२. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० स० ४० ।

मृतकों के अगों आदि को काटना उद्दीपन एवं घृणा स्थायी भाव है। अतएव घृणा स्थायीभाव से एव अन्यान्य अनुभाव आदि से वीभत्स रस बना है। मुख्यत: यहा घृणायुक्त कार्य का स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है और इसी से वीभत्स रस की अभिव्यंजना हुई है।

भक्ति-रस

साहित्य के कई आचार्यो ने भक्ति-रस को स्वतन्त्र रस नही माना है और कई आचार्यों ने भक्ति-रस को स्वतन्त्र रस माना भी है। इस सम्बन्ध में मेरा मत तो यही है कि भक्ति को रस मानने में कोई तात्विक आपत्ति नही होनी चाहिए क्योकि भक्ति में आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, सचारी आदि रस के अग-प्रत्यगो का अन्य रसो की भाति समुचित योग होता है। आश्रय के हृदय मे अपने आराध्य के प्रति उठते भावो का पूर्ण उत्कर्ष भी होता है और उसका वर्णन भी कवि पूर्ण सफलता के साथ करते हैं। कवीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि अनेक प्राचीन तथा भारतेन्दु, गुप्त आदि अनेक नवीन कवियों ने प्रचुर मात्रा मे भक्ति सम्वन्धी काव्य-सृजन किया और उनका महत्त्व किसी भी प्रकार से अन्य रसो से संवधित कविताओ से कम नही है।

मैं तो यहां तक कहना चाहूँगा कि भक्त के लिए भक्ति-रस ही सर्वोत्कृष्ट रस है। प्रत्येक भक्त कवि को जितना आनन्द और सतोप उसी समय तक नही मिलता है, जव तक कि वह भक्ति सवधी रचना न रचे और इस प्रकार ऐसी अवस्था मे भक्ति-रस के महत्त्व को स्वीकारना ही पड़ेगा।

प्रत्येक भक्त के लिए भक्ति-रस तो एक प्राणदायिनी संजीवनी है अन्यथा कोई भी ऐसा रस नही है, जिससे कि भक्त के हृदय को सतोप मिल सके। अतएव भक्ति-रस को स्वतन्त्र रस मानने मे कोई वाधा नही है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित राजस्थानी साहित्य में भक्तिरस

काव्यशास्त्र की दृष्टि से भक्तिरस का स्थायी भाव भगवद् रति है। श्रृंगार के स्थायी भाव रति और भक्ति-रति मे मौलिक भेद यह है कि पहली रति दापत्य विषयक रति है, उसमे शरीर के रूप, सम्वन्ध विशेष की काम स्पृहा होती है और दूसरी इससे

भिन्न भव्य भगवान् के गुण-श्रवण से दतचित्त की धारावाहिनी भगवदाकारा वृत्ति है ।

भक्ति रस के आलम्वन-भगवान् और उनके भक्तगण हैं । रम मिद्धान्त का यह आग्रह है कि आलम्वन मे यथोचित गुणों का अस्तित्व होना चाहिए। अपात्र को आलम्वन मानकर की गई रचना रसानुभूति कराने मे सर्वथा असमर्थ होती है । शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो के आराध्यदेव भी सभी कमनीय गुणो से परिपूर्ण हैं । इन कवियो के आराध्यदेव सर्व-सौदर्य-सम्पन्न और लोकशंकर एव लोक-रंजक भी हैं।

भक्तिरस के आश्रय भक्तगण हैं । हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओ से भक्तिरस के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ठाडो कव की करत हम पुकारा
कन्हैया दे दो चीर हमारा ।।[1]
तोरी भक्ति दे भव दु:ख टारो
नाथ मोरी विगड़ी वेग सुधार ।।[2]
गोवरधन गिरधारी,
तोरी दरसण की वलिहारी ।[3]
जाग जाग नन्दजी रा लाला
भानु उदय होत आया है ।[4]
सव करता धरता राम है, जिसमें कुछ फरक नही है
जीव चराचर जग रे जेते, जलचर, नभचर थलचर तेते
सवकूं खानपान वही देते, विसंभर विशवेश वे
सच्चे लख कोई तरक नही है–
पल मे नदी नाल भर देते, पल मे खाली कर देते
वही अजस जस नर कूं देते, निरभय अगम अथाह
उनके कुछ भी धरक नही है।

---

१. ह० लि० ग्र० कवि हरिनारायण पुरोहित, पद सं० ३१ ।
२ वही, पद स० ३२ ।
३. ह० लि० ग्र० (कवि हरिनारायण पुरोहित), पद स० ३७ ।
४ वही पद स० ३३ ।

देना चाहे देव सभी को, उनके सम न और फवता को
देत प्रकाश वही सविता को, पूंज प्रकाश महान है
भूठी जो ई भरक नही है–
कह 'नथमल' सुर नर यश गावे, प्रभु पद प्रेम पदारथ पावे
भगति भुगति पथ वेद वतावै, भवभय भरम निवारिणी
दूजी कोई सरक नही है ।[1]

यहां पर कवि स्वयं आश्रय है। राम आलम्वन है, विश्व में सर्वत्र रमने का गुण उद्दीपन है। राम द्वारा खानपान का देना, नदी नालों का भरना आदि अनुभाव है, मति वितर्क संचारी। इन सभी से परिपुष्ट ईश्वर–प्रेम नामक स्थायी भाव द्वारा भक्ति रस की अभिव्यंजना हो रही है।

फिर—

निरखूं गंगश्याम नारायण पंडत वेद पढ़े पारायण
गीता भागवत नित गायन मेला जनत होता है।
मोटो तीरथ मंडी मे मन्दिर, सोवन कलश शिखर है
सुन्दर ग्राह त आप छूडाये गजेंदर दानव खाते गतो है।[2]
जोतिसरूप जपूं जाप सुवह शाम को
करुणानिधान जात हो जोधान धाम को
श्री गगश्याम रटूं नित नाम
करे सिद्ध काम धार्यो मन को।[3]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि श्री गंगश्याम के दर्शन कर अति प्रसन्न होता है, अतः कवि स्वयं आश्रय है। गंगश्याम आलम्वन है। गंगश्यामजी के द्वारा मन की इच्छा पूर्ण होना अनुभाव है। इससे गंगश्यामजी को सुवह शाम जपना स्थायी भाव द्वारा भक्ति–रस की व्यंजना हुई है।

भक्ति रस के अन्य उदाहरण—

मन आस फलै सुख साथ मिलै

---

१. नथमल भजनावली, भजन सं० ३०।
२. घनश्याम महिमा, कवि देवीचन्द पृ० सं० ५।
३. वही, पृ० सं० ५।

जग फंद टरे भय भय जन को ।[1]
आंधला देखे आखे, पांगला चले पगां रे
झाके देवीचन्द खुशी दिल रहता है मेरा ।[2]

रघुनाथरूपक गीतां रो में भक्ति रस—

रघुनाथरूपक गीतां रो ग्रंथ के रचियता कवि मंछ श्रीराम के अनन्य भक्त थे। अतएव उनके द्वारा रचित इस ग्रंथ में भक्ति-रस के उदाहरण स्थल-स्थल पर देखने को मिलते है। कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं—

कृपानिध भांमणे तुझ टालण कुगत
झटक जण न्यायते सुगत झेलै
परस कदमां चली जुगत भव भूम पर
माह सो नदी भव मुगत मेले
तारवै अनेकां दया महराण तस
गिणां की वड़म ग्रंथाण गावैं
तो उदक ओपण ग्रांण लागै तनां
पद जिके निरवाण पावै ।।[3]

अर्थात् हे कृपानिधि। कुगति टालने वाले! मैं आपकी बलिहारी हूं। जो आपके सच्चे भक्त हैं, वे शीघ्र ही सुगति को प्राप्त होते हैं। आपके चरणो का स्पर्श करके जो शिवजी की युक्ति से पृथ्वी पर चलती है, वह महानदी गंगा इस संसार से मोक्ष को भेज देती है।

हे दया के समुद्र। आपने अनेकों को तार दिया है। कहां तक गणना की जाय। वड़े वड़े ग्रंथ गुणगान करते हैं। आपकें चरणों के जल से जिनका शरीर आकर लग जाता है, वे जीव निर्वाण पद प्राप्त करते हैं।

खलक तारण तरण खलां खंडण खतम,
रोर जण विहडण सुखद सरसै

---

१. वही० पृ० म० ६ ।
२. वही, पृ० सं० ९ ।
३. रघुनाथरूपक गीतां रो (कवि मंछ), पृ० सं० २६०-२६१ ।

सियावर तूझसो तुही दाखै संको,
दूसरो समो वड़ न को दरसै ।[1]

अर्थात् आप संसार में तरन–तारन है । दुष्टों को मारकर आपने हद कर दी है । आप अपने भक्तो की दरिद्रता को नाश करने वाले हैं और आप सवको सुख देने वाले है । अतः हे सीतापते, सब कोई यही कहते है कि आप जैसे आप ही है । आपके बराबर दूसरा कोई दिखाई नही पड़ता ।

फिर—

गृभ गंजण रिच्छक सरणागत,
संता भव भंजण ससार ।
सद उपमां जितरी सो साजै,
तितरी ही छाजै करतार ।[2]

हे ईश्वर ! आप गर्वनाशक हैं, शरणागतों के रक्षक हैं और सन्त पुरुपों के संसार के दु:खों का नाश करने वाले हैं । संसार में जितनी भी श्रेष्ठ उपमाएं है, वे सव आपको सुशोभित करती है ।

भक्ति–रस में सर्वस्व अर्पण करने का वड़ा महत्त्व है । इस सर्वस्व अर्पण की भावना को प्रायः सभी भक्त कवियों ने अधिक महत्त्वशाली वताया है ।

भक्त कवि सूरदास जी ने भी 'सव तजि तुम सरनागत आयो, निज चरन गहे रे' कहकर भगवान् की शरण में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया । इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी सर्वस्व न्यौछावर करते हुए रात दिन राम शिव के चरणों में पड़ा रहना ही श्रेयस्कर समझा है ।[3]

कवि मंछ ने भी रघुनाथरूपक गीतां रो ग्रंथ में सीता के

---

१. वही, पृ० सं० २५७ ।

२. रघुनाथरूपक गीतां रो, पृ० २५६ ।

३. जानकी–जीवन वलि जैहो
चित कहै, राम सिय पद परिहरि अव न कहूं चलि जैहों । विनयपत्रिका, पद सं० १०४ ।

सर्वस्व अर्पण करने की वात श्री शिवजी के मुख से पार्वती को कह-लाई है।

घरियो पण जनक इसी मन धारे
धनक पिनाक चढाय धरैं ।।
महपत आय सयंवर माहै
वसुदा कुंमरी तिकी वरैं ।।
तात हूंत इधकी परतिग्यां
सांभळ वात कहूं सरसाल
तन मन धार भाल दसरथतण
मैं गळ राळ दई वरमाळ ।।
जालो चाप पिता परणावो
इण जावो जोधा जिगहार ।।
चित तो राख लियो मृदुचरणां
भाप लियो मृदु राघव भरतार ।।[1]

अर्थात् शिवजी पार्वती जी से कहते हैं–सीता यह विचार कर रही है कि पिता ने यह प्रण किया है कि जो राजा स्वयंवर मे आकर पिनाक नामक धनुष को चढावेगा, पृथ्वी की पुत्री सीता उसको वरेगी। किन्तु मेरी प्रतिज्ञा पिता की प्रतिज्ञा से भी अधिक है। मैंने तो दश-रथ पुत्र रामचन्द्र को देखकर तन और मन से उनके गले मे वर–माल डाल दी है। चाहे पिता का प्रण टूट जाय, चाहे तमाम योद्धाओं को मार डाला जाय और चाहे यज्ञ भ्रष्ट हो जाय, पर मेरा मन तो रामचन्द्र के कोमल चरणो मे रख लिया है और मैंने तो राम–चन्द्र को पति कह लिया है। फिर–

सुत ग्रह केकई सरसाय,
वन विध रिषी अंग वणाय।
कीवा वारणे धन काय,
मन हर रहैं चरणां माय।[2]

अर्थात् उस केकई के पुत्र (भरत) ने वन मे जिस तरह ऋषि

---

१. रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० ७४–७५।
२. वही, पृ० १२२।

गण रहते है, उसी प्रकार अपने अंगों को बनाया। तन और धन उसने न्यौछावर कर दिया और मन रामचन्द्र के चरणों मे लगाया।

इस तरह कवि मंछ ने भगवान् के प्रति सर्वस्व अर्पण की भावना को अंकित किया है।

कवि रामरख के काव्य में भक्ति-रस

कवि रामरख जी की रचनाओं से पता चलता है कि ये परमात्मा के प्रिय भक्त थे। रामरख को अपने इष्टदेवो पर पूर्ण विश्वास था एवं श्रद्धा थी। आपने अनेक विषयों पर पद, भजन आदि रचे है, जिससे यह स्पप्ट हो जाता है कि इनकी रचनाओ में भक्ति-रस की अभिव्यजना हुई है। उदाहरण प्रस्तुत है—

मोरे मन वसग्यो सावरो सखी मदनगोपाल प्यारो
नन्दजी रो लाल रे म्हारे मन वस रयो सावरो ।।
गांव सुहावणो रे ऊचो नन्द को द्वार रे
रगमहला मे रम गयो रसियो ओ तो अब रीजवार रे ।।
मैं दध वेचण जावती ठाडी जमना रै तीर
आन अचानक मटकी फोड़ी फटक्यो मेरो चीर ।।म्हारे।।
अगीया मसकी मेरी मावरी रे चोली कीनी तार तार
म्हे जल जमनां जावती रे आयो नन्द जी रो कान
चोर तीर तरवर धर्यो मैं तो रही हूँ अजाण ।।म्हारो।।[1]

यहां पर कवि आश्रय है, श्रीकृष्ण आलम्बन है। ईश्वर का हृदय मे वसने का गुण उद्दीपन है। श्रीकृष्ण के कार्यकलाप अनुभाव और संचारी है। इनसे परिपुष्ट ईश्वर-प्रेम नामक स्थायी भाव से भक्ति रस की अभिव्यंजना हुई है। अन्य उदाहरण—

चितवन छीव मन मे वसी रे।[2]

कवि केवलराम के काव्य में भक्ति-रस

वैसे तो कवि सभी देवों की उपासना करता था किन्तु उनकी रचनाओ से पता चलता है कि वह राम का प्रिय भक्त था। तभी तो

१. ह० लि० प्र० (कवि रामरख), पृ० स० ७।
२. वही, पृ० सं० ६।

कवि ने अधिकतर राम से सम्बोधित पद, भजन आदि रचे और यही कारण है कि उन्होने अपनी पुस्तक का नाम भी रामलीला रक्खा। अब देखना यह है कि उनकी रचनाओ मे भक्ति रस का निरूपण कहां तक हुआ है ? उदाहरण स्वरूप काव्य-अंश प्रस्तुत है—

ध्यान धरो जिया सियावर चरणा ॥
वो ही ब्रह्म, वो ही सदाशिव, ब्रह्मा विष्णु वरणा ।
वो ही अगर रवि ससि वो ही, वो ही पवन पानी सोलरणा
वो ही वेद तीरथ सब वो ही कालन मुक्ति करणा
देवन देव वो ही है पदारथ केवलराम राम गहो सरणा ।[1]

अर्थात् हे मन तूं अपना ध्यान सीता के पति की ओर लगा। वही ब्रह्म है, वही शिव है, वही ब्रह्मा है, विष्णु है, अग्नि देवता, सूर्य, चन्द्रमा, पवन, जल, वेद, तीर्थ आदि सभी कुछ वही है। देवों के देव भी वे ही हैं, मुक्ति प्रदान करने वाले भी वे ही हैं। इसलिए हे मन तूं तो राम की शरण मे ही रह ।

यहा पर कवि स्वय आश्रय है, आलम्बन श्रीराम है । विश्व में सर्वत्र रमने का गुण उद्दीपन है। प्रार्थना करना, मन को रमाना, शरण मे जाना आदि अनुभाव है । हर्ष, मति, निर्वेद आदि सचारी भाव हैं । इन सभी से परिपुष्ट होकर ईश्वर-प्रेम नामक स्थायी भाव द्वारा भक्ति रस अभिव्यजित हुआ है । अन्य उदाहरण—

राम राम रट रे मन लाई ।
विपत विडारण, सब सुख कारण ऐसो कोन त्रभुवन माहो
अधम उधारण, भव जल तारण, सरण गहे ते करत सहाई ।
"केवलराम" राम रट नामा तन, मन, धन कर हुय सरणाई ।[2]
सरसत मात तूं ही गुणधारी, विद्या बुध वधावण हारी
जो ध्यावे त्याही तुम हाजर, सतन कीजो करी रपवारी
"केवल" पर कीरपा कर दीजै, राम भगत विधा हूं भारी ।[3]

---

१. रामलीला पृ० सं० १२ ।
२. वही पृ० सं० १३ ।
३. वही, पृ० सं० १२ ।

मैं तो तेरो सरन लियो है कृष्ण कंवर वृजराज
तुमही कूं गाऊं तुमही कूं ध्याऊं, तुम ही राखो लाज
तेरो ही चाकर तेरो भरोसो, कहो सो करूं मैं काज
"केवल" के तुम अधिक पियारे सिरताजां सिरताज ।[1]
साची तूं सिचियाय सेवग केवल सरण तिहारो ।[2]
भज राम राम रामा
भव जल तारण पार उतारण लेह वो ही को नामा
वाकी आषर कोईयक साची सुधरे सारे कामा
"केवलराम" राम रटन कर रहीये, तन, मन कर अठ जामा ।[3]

कवि मंगलदास के काव्य में भक्ति-रस

रंग हिंडोरो रळियावणो
लछमी रा नाथ रो रग हिंडोरो रळियावणो
सरसत सिवरूं आद रागती, गवरीनन्द गणेस
वरणुं रंग हिंडोरो कीरत वगसो बुद्ध सवेस
वगसो बुद्ध सवेस ढील ना कीजिये
जिणमे आकर उकत अनोखी दीजिये ।[4]

उपरोक्त पक्तियो से स्पष्ट है कि कवि स्वयं आश्रय है और लक्ष्मीनाथ आलम्वन । कवि द्वारा प्रार्थना करना, बुद्धि मांगने का प्रयास करना आदि अनुभाव है । ईश्वर का गुण उद्दीपन एवं हर्ष, निर्वेद औत्सुक्य आदि सचारी भाव से परिपुष्ट होकर परमात्मा-प्रेम नामक स्थायी भाव से भक्ति रस अभिव्यजित हुआ है । अन्य उदाहरण

राम नाम रटत मन गगा
जनम मरण मेटत भवफोसी ।[5]
माणकनाथ सहाई जाके सम्भूनाथ सहाई

---

१. वही, पृ० सं० ८२–८३ ।
२. फुटकर भजन से, भ० स० १५ ।
३. रामलीला, पृ० सं० ३५ ।
४. ह० लि० प्र० (कवि मंगलदास), पृ० स० ४–५ ।
५. वही, पृ० सं० ११ ।

कहा करै कोई वैरी दुसमण, वाळ न वांको थाई ।[1]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो में अधिकतर भक्त ही थे अत-एव उनकी रचनाओ मे भक्तिरस की अजस्रधारा प्रवाहित हुई है। भक्तिरस की अभिव्यक्ति तो स्थल स्थल पर कूट कूट कर भरी पड़ी है। भक्ति रस सबंधी कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं—

नित नमो नरवदा माय
तेरी अगणित महिमा चरित्र वेद मे वरणी,
तूं ही पुष्कर गया प्रियाग, तूं ही वैतरणी,[2]
वलराम भैया सुध तो मोरी।
हरी भोजक विप्र शरण तोरी ।।[3]
कहते चीमनीराम राम नाम से होय निसतारा ।[4]
औ तो वंसी वालो कानो रे
मन मेरा इण मोह लियो ।।
अजी औ तो गोकुल ने मथुरा वीचे
कानो वहुत करै तूफान रे ।।
मैं तो जय पुकारूं राजा कस ने
फेर नही मागे डोर रे ।[5]

निष्कर्ष यह है कि हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओ में विभिन्न भावो एव रसो का सुन्दर एवं चित्तार्षक वर्णन देखने को मिलता है। इन कवियो की रचनाओं मे भाव-दृष्टि वड़ी विशद, विशाल एवं व्यापक है। वे मानव-मनोभावो के कुशल चितेरे है और मानवीय गुणों की सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोवृत्ति से पूर्णतया परिचित हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों ने

---

१. वही, पृ० म० १६।
२. ह० लि० भजनमाला, पृ० स० २४-२५।
३ ह० लि० (हरिनारायण पुरोहित), पृ० सं० १५, पद ४२।
४. कवि चीमनीराम (जालोर), फुटकर रचना से पृ० ६।
५ ह० लि० प्र० फुटकर से।

अपनी अपनी रचनाओं में पर्याप्त कौशल दिखाने की भी चेष्टा की है और वर्ण्य वस्तु की नवीनता के साथ साथ भाव-निरूपण संबंधी मौलिकता एवं मनोवैज्ञानिकता का भी सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है। इसके साथ ही अपने युग की सांस्कृतिक एवं भक्ति की मान्यताओं को अंकित करते हुए इन कवियों ने परम्परागत भावो पर विचार कर विचारों एवं धारणाओं को भी उचित स्थान दिया है।

—=—

अध्याय : ९

उपसंहार

राजस्थानी साहित्य में शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों के साहित्य का स्थान

राजस्थानी अत्यन्त समृद्ध, समर्थ और स्वतन्त्र भाषा है। उसका साहित्य सब प्रकार से सम्पन्न, वैविध्यपूण और विशाल है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भी सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओं में काव्य-सर्जना तो की ही, इसके अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य मे भी काव्य-सर्जना कर उसकी श्रीवृद्धि की।

इस शोध-प्रबन्ध मे जो जो कवि हमारे सामने आए हैं, उनमें अधिकाशतः भक्ति-साहित्य के ही सृजनकार हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक शताब्दी तक के शाकद्वीपीय ब्राह्मणों पर भक्ति का प्रभाव रहा और आज भी है।

इन कवियों द्वारा रचित काव्य के अधिकांश भाग पर भारतीय संस्कृति की छाप है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि इन कवियो की रचनाओं में सभी रसो का अद्भुत सौन्दर्य देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ—भक्ति एवं श्रृंगार के अतिरिक्त वीर-रस से ओतप्रोत काव्य, हास्य एवं व्यंग्य तथा जीवन एव जगत से सम्बन्वित सभी प्रकार के प्रसगो का चित्रण इन कवियो की रचनाओं मे विद्यमान है।

यद्यपि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य में सामाजिक चित्रण, ऐतिहासिक चित्रण, सांस्कृतिक चित्रण, छंद विधान

की परम्परा आदि सभी मिलते है किन्तु उनका मुख्य-वर्ण्य विषय तो भक्ति ही है।

मेरे विचारों से भी भक्ति भवसागर से पार उतरने का एवं मोक्ष प्राप्त करने का एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। वैसे साहित्य मे नौ रस माने गये हैं, जिनमें कई विद्वानों ने शृंगार रस को रसराज माना है किन्तु मेरे विचारो से यदि भक्ति रस को रसराज मान लिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी क्योकि यही आत्मा का सत्यम्, जगत् का शिवम् और कार्यों का सुन्दरम् है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य में भक्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे जितने भी कवि हमारे सामने आए हैं उनमें से अधिकांशतः कवि भक्ति साहित्य के सृजनकार है। प्राचीन-काल से लेकर वर्त्तमान तक के शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भक्ति साहित्य मे अपना अपूर्व योगदान किया है।

राजस्थान मे ही क्यो, भारत के प्रत्येक प्रान्त में शुभ कार्य करने हेतु सर्वप्रथम श्री गणेशजी की पूजा की जाती है और हम यह देखते है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओ में भी श्री गणेशजी से लेकर सभी देवी-देवताओं एवं ईश्वर के विभिन्न अवतारो अथवा रूपो पर पद, दोहे, स्तुतियां, भजन आदि रचे गये है। उदाहरणार्थ—श्री गणेशजी की स्तुति, राम के पद, रामलीला, शनिश्चर की कथा आदि।

कवि मछ द्वारा रचित रघुनाथरूपक गीतां रो, कवि केवलराम द्वारा रचित रामलीला, कवि तेज कृत गायन, नथमल भजनावली आदि पुस्तकें इस बात के प्रबल प्रमाण है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित भक्ति साहित्य की रचनाएं, जो भी उपलब्ध हुई है, उनमे भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है। इनके काव्य मे व्यक्तित्व की कोमलता, अनुभूति की तरलता और अभिव्यक्ति की सरलता मिलती है।

उपरोक्त दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का भक्त-कवियो मे बहुत ऊंचा स्थान है। इनकी रचनाओ में ब्रह्म की उपासना, ससार की क्षण-भगुंरता, मांया की

शक्ति, नाम जप की महिमा, आत्म-ज्ञान की आवश्यकता, गुरु-कृपा का महत्त्व, सात्विक कर्मो की प्रशंसा आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। अपनी अनुभूति को सहज स्वाभाविक भाषा मे अभिव्यक्त करके उन्होने काव्य के सच्चे स्वरूप का उद्‌घाटन किया है। सच्चे कवि को वाणी में अभिव्यक्ति के साधन स्वतः ही प्रस्फुटित हो जाते हैं, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण इन कवियो का साहित्य है।

रचना उदाहरण—

अवधनाथ तोनूं नमो परम मेटण अगत,
धर सगत तिरै ते भगत धारै।
आप पावा पगत वहै इळ ऊपरा,
तिका गगा सकल जगत तारै।[1]
जलज प्रभूपद जाण, सुगंध निरवाण पद।
मो मन भंवर प्रमाण, रात दिवस विलम्यो रहे।[2]

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों द्वारा रचित साहित्य में—सामाजिक चित्रण

साहित्य की महत्ता अपरिमेय है। समाज एवं जातियो का उत्थान पतन, विकास–ह्रास और आरोह-अवरोह साहित्य पर बहुत कुछ अवलम्बित है। साहित्य मानसिक-दुर्बलताओ पर कुठाराघात करके मनुष्यो को क्रियाशील बना देता है। वह अज्ञान को दूर कर ज्ञान का आलोक जगाता है तथा अवनति से बचाकर उन्नति-शील बनाता है। उसकी अद्‌भुत शक्ति, प्रेरक-शक्ति से सामाजिक जीवन मे आशा और विश्वास का नया सचार होता है।

हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओं में भी सामाजिक चित्रण स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। इन कवियो ने भी यह बतलाने का यथासाध्य प्रयास किया है कि कौन कौन से बुरे व्यसनो से हमे बचना चाहिए और कौन कौन से अच्छे कार्य करने चाहिए, जिससे कि समाज का सुधार हो सके, सामाजिक कुण्ठा, प्रतिबद्धता एवं संत्रास से व्यक्ति न उलझ कर अपना स्वयं का भी विकास कर सके

---

१ रघुनाथरूपक गीता रो, पृ० सं० २६०।
२ वही, पृ० स० २।

और समाज को भी ऊंचा उठाने मे अपना योग दे सके। उदाहरणार्थ कवि देवीचन्दजी ने वताया कि पराई-स्त्री से प्रेम करने पर वह नारी आपके कलेजे को काट लेगी। वह मृदुभापी होकर भी आपका जीवन संकट में डाल देगी और हर तरह से समाज मे आपकी इज्जत चली जाएगी तथा आपको नरक भी भोगना पड़ेगा क्योकि यह धर्म के विपरीत है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

कपटी परनारी काटे काळजो ॥
वहुत उमदा मीठी वोले धन खावे तो ही धोखो।
पर-नारी से करे प्रीतडी, जीव जखम रो जोखो ॥
फेल-फतूरा होय फजीता मान घटे जुग मांय जी।
पापस्थांन चोथो है, परतक जको नरक मे जाय जी ॥[1]

इसी प्रकार कवि तेज, कवि रुगनाथ, कवि नथमल, कवि परसराम आदि की रचनाओ मे भी सामाजिक चित्रण देखने को मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

निन्दा मत झूठी करजो जी,
यश जग मे लेणो चहिजो।
पर-नारी चित्त मती चाहजो,
वनड़ी सों प्रेम वढाईजो।
मत जुआ मे चित्त थे दीजो,
नीत वुरी मत लाईजो।
खेती व्योपार ही कीजो जी,
सुख सम्पति मिले सहीजो।
'नथमल' की थे मान कथन कूं,
धन शुभ कारज पर दईजो।[2]
मीठी राखो मानख से, साकर अमरत समान
जहर न भावो जीव से, मेल दियो अभिमान
मेल दियो अभिमान, ध्यान समरण को धारो
जग औ वोतो जाय, राम से है नीसतारो

---

१ ह० लि० पो० (कवि देवीचन्द), पृ० स० ४१।
२ ह० लि० पो० (कवि नथमल), पृ० सं १६।

रैणो के परसराम, दीठी करो अदीठी
साकर अमरत समान, मनख से राखो मीठी ।[1]
पर उपकार पेणो, तटै नी लीजै टाळा
नीत चहीजै नितनेम, मूरख नां फेरी माळा
न्हायो नां गगा नीर, कोई तीरथ नां कीनो
नां लीयो हर नाम, दान सुकरत नां दीनों
कैवे 'रूगनाथ' हरषै कांसू, भली ग्रा जात भूत री
उण जगै जीव रैसी ग्रदर, डाग वजी जमदूत री ।[2]
द्रव संचन मिल करो सुरीती
फजूल कुरीत कूं मिटावो ।
देस जात का करो सुधारा
जीवण सफल वणावो ।[3]

विधवाओं को उपदेश देते हुए कवि नथमल एक जगह मिलते हैं—

सिखामण विधवा सुणो विनती करमवार
भावो भगती भावना करो ध्यान किरतार
विपय कसाय विडारजो कामदेव ग्रहकार
विन कंथ सुण जो वधू ग्रो ससार ग्रसार
विना भूक भोजन वीरथा जन्म वीरथा धरम जांण
कठ विना सव कारमो जोवन सारो जहर
मन थर ग्रढ राख आतमा–गणजो माला गेहर ।[4]
ह्यिा दया खिश जाय ह्यिा से धिया वेच धन खावे
जोड़ विन परणाय जगत मे जीवत नरक भुगतावे ।[5]

तात्पर्य यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं से पता चलता है कि उन्होने समाज को सुधारने का यथासाध्य प्रयास किया एवं ग्रपनी काव्य प्रतिभा से जनसमाज को आन्दोलित किया ।

---

१ ह० लि० कवि परसराम, कु० सं० १२ ।
२ ह० लि० प्र० (कवि रुगनाथ) कवित्त संख्या ४ ।
३ नैनखशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० ५६ ।
४ ह० लि० प्र० (कवि नथमल), पृ० सं० ३६ ।
५ नैनखशम को खेल (कवि तेज), पृ० स० ५८ ।

स्वदेश-प्रेम की भावनाओं का चित्रण

स्वदेश की महिमा अनन्त है। स्वदेश का गौरव विपुल है। किसी ने सच ही कहा है—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है। मातृभूमि के प्रति हृदय मे स्वाभाविक प्रेम होता है।

प्रत्येक देश मे स्वदेश-प्रमियों ने जन्म पाया है। भारतवर्ष का इतिहास स्वदेश—भक्तो की गाथाओ से भरा पडा है। राजस्थान के प्राचीन–खण्डहर, स्मारक और देवल वता रहे है कि इस वीर-भूमि ने अनेक स्वदेश-भक्तो को जन्म देने का श्रेय प्राप्त किया है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने भी देश के प्रति अपनी देश प्रेम की भावनाएं दिखलाई हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

किसान खेती रो लगान दे स्वदेस कूं प्यारा
जमीदार वोहरां का हक सूं, करके निवटारा
सुवस दिल साफ करावोगा
तुम्हारा जव स्वराज होगा।[1]

कवि विदेशो से वस्तुओ को नही मंगवाना चाहता। वह चाहता है कि अपने ही देश मे माल का उत्पादन किया जाय, तभी देश की उन्नति हो सकती है। तभी कवि ने कहा—

मात्र चीज परदेशा की त्यागो इस्तेमाल जी
कारीगरी हिंद मे जिनकी करके रखवाली
कारखाना खुलावोगा, तुमारा जव स्वराज होगा,
हिन्दुस्थान का सिक्का हिन्द की छाप जमावेंगे
कागज और कथीर विदेशी सिक्का जलावेंगे
फायदा हिन्द उठावोगा, तुम्हारा जव स्वराज होगा।

और विदेशी भापा का विरोध भी कवि ने विना किसी हिचकिचाहट के किया है—

पलपल शब्द उचार रहे मुख इंगलिश भाषा के
तुरन्त करो वहिसकार वढ़ावो हिन्दी भाषा के
वनोगा राजकरण जोगा

---

१ स्वराज बावनी, कवि तेज, पृ० स० २।

तुमारा जव स्वराज होगा ।

वास्तव मे सत्य है कि जिस देश में मनुष्य ने जन्म पाया है, जिसके जल-वायु का सेवन करके वह वड़ा हुआ है तथा जिसकी सामाजिक संस्थाओ ने उसे मूर्ख से पंडित वनाया है, उसका ऋण न मानना महान पाप है । जिस मातृभूमि ने हमको वाणी दी, सभ्य वनाया, सम्मानपूर्वक जीवित रहने को आश्रय दिया, उसका हमारे ऊपर अतुल ऋण है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का स्वदेश-प्रेम भी वास्तव में स्तुत्य है ।

वीरता का चित्रण

सच्चे वीर का चरित्र अनुकरणीय होता है । वीर-पूजा से देश का उत्थान होता है । वीरता का आदर्श वहुत ऊंचा है । इस शोध-प्रवन्ध मे आए कवि प्रयाग द्वारा रचित अभैगुण ग्रंथ महाराजा अभयसिंहजी की प्रशंसा मे लिखा हुआ एक ऐतिहासिक प्रवन्ध काव्य है, जिसमें युद्ध के समय वीरता का चित्रण कर कवि ने राजस्थानी वीरो की वीरता का अनुपम चित्रण सफलतापूर्वक किया है । इसमें युद्ध वर्णन, फौज-वर्णन और उस समय के होने वाले युद्ध का जो चित्रण किया है, वह निस्सदेह उत्कृप्ट है ।

इसके अतिरिक्त कवि मछ द्वारा रचित 'रघुनाथरूपक गीतां रो' ग्रंथ मे भी राम-रावण के युद्ध का वर्णन है । उस समय वानरो की सेना का राक्षसो की सेनाओ से भिड़न्त करना, वाणो की वर्षा करना, वानरो द्वारा पेड़ के पेड़ उठाकर फेंक देना, पहाड़ों के वजनी पत्थर उठाकर फेंक देना आदि का चित्रण भी इसका पुप्ट प्रमाण देता है । उदाहरणार्थ—(वीरता)

गजै वाज गैणाग जाग वीरत झुंकारा
आग तोप उछळै गिणै नह जिका लिंगारा
वीर हाक वापरै, धीर जूटा धग धारां
तीरवान तरवार, जवन गिर पड़े हजारां ।[1]

---

1 अभैगुण ग्रथ (कवि प्रयाग), छं० स० १८८ ।

इस प्रकार हम देखते है कि हमारे विवेच्य कवियों में भी वीरता की भावना कूट कूटकर भरी थी।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है, जितना कि सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास प्राचीन है। मानव और प्रकृति के अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव-जीवन का प्रतिविम्ब है, अतः उस का प्रतिविम्बित होना स्वाभाविक है। न जाने हमारे कितने कवियों को अव तक प्रकृति से प्रेरणा मिलती रही है।

प्रकृति हमारे कवियो के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भण्डार भी रही है। यही नही, प्रकृति हमारे लिए कल्पना का अद्भुत लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अटूट श्रृंखला भी रही है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में भी प्रकृति के प्रति प्रेम के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ—

पऴऴ पऴऴ ही पलकै
भऴ वीजऴ वोत भऴकै
खऴऴ ही वहै नदी ने खाळा
खऴऴ पाऴज प्रेम रऴकै।[1]

फिर—

राण दिस हालिया ठांण आराण रूख
कोह असमाण चढ भांण ढंका
गोम नेजा हऴक राग सिंधु गहक
डहक डंडाहडा सीस डंका

(कवि मंछ)

मेघ में मंडरायो किरसा घूम घिर ने आई रे घटा
वीज री विपत्ति वृष्टि आपदा विकास री
गरजै घन घोर सुणि भारत भूमि कांपी है

---

1 ह० लि० प्र० (कवि रुगनाथ) इन्दर रो छद स० ६ से।

भारत री सम्पदा सुं परकरती विनास री
(कवि नथमल)

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों के साहित्य में प्रकृति चित्रण, प्रकृति-सौन्दर्य की मात्रा का प्रसार स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

उपर्युक्त पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि इन कवियों के साहित्य में प्रकृति रानी की सत्ता अखण्ड रूप से बनी हुई है । वह नाना रूपों मे अवतरित होकर मानवीय अनुभूतियो के साथ अभिनय करती रही है । कही वह सौन्दर्य की सहायिका और साधिका के रूप मे दृष्टि-गोचर होती है, तो कहीं वह स्वयं ही सौन्दर्य का आगार बन गई है । यह अवश्य है कि इन कवियों के प्रकृति-चित्रण मे न तो वैविध्य है और न विस्तार । परन्तु जो भी वर्णन चित्रित किया गया है उसमें मानव के तथा मानव मे प्रकृति के रूप-वैभव का दर्शन सर्वत्र उपलब्ध है ।

सांस्कृतिक चित्रण

भारतीय संस्कृति का अनुयायी विश्व के किसी भाग मे चला जाय, तुरन्त पहचाना जा सकता है, क्योंकि उसकी रग-रग में इस संस्कृति का प्रवाह इतने वेग से प्रवाहित रहता है कि अन्य संस्कृतिया उसमे व्यवधान उपस्थित नही कर पाती और अपनी गतिशीलता, तीव्रता, अखण्डता एवं अजस्रता के कारण वह सरलता से पहचान ली जाती है । इस संस्कृति के विभिन्न रूप हैं, जो विभिन्न क्षेत्रो में विकसित हुए हैं ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों के साहित्य में संस्कृति का निरूपण हुआ है । कवि मंछ के 'रघुनाथरूपक गीतां रो' की रामकथा भारतीय संस्कृति की आत्मा है । सामाजिक समानता, सामाजिक एकता, मानवता प्रेम, नैतिकता, आध्यात्मिकता, गुरु की महिमा आदि विभिन्न विषयो पर लिखकर कवियो ने संस्कृति के प्रति न्याय किया है । उदाहरणार्थ विभिन्न विषयो पर विभिन्न कवियों की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

गुरु महिमा

गुरु किरपा पायी गुणां पारस तणो परसंग।
वगत करै नही विनवो, अग्यांनी से अंग ।
(कवि रुगनाथ)

पति की आज्ञा में रहना

रैण मिटी परभात रा मारी ए पति ने करो परणाम
सदा सुष री घड़ी वड़ी, फजर वीत रा दिल में धरो ध्यांन ।
(कवि देवीचन्द)

ईश्वर-महिमा

यह तो सभी भक्त कवियों ने गाई है । भारतीय संस्कृति में ईश्वर की महिमा तो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के सभी कवियों व लेखकों ने गाई है । हमारे आलोच्य कवियों ने भी ईश्वर के प्रति वहुत कुछ लिखा । कुछ उदाहरणार्थं दृष्टव्य है–

प्रभु गुण तणो न पार, पार न को गीता प्रबन्ध
वधै ग्रथ विस्तार, कारण इह सूक्ष्म कह्यो ।।
गृभ गजण रिच्छक सरणागत,
सताभव भंजण संसार ।
सद उपमां जितरी तो साजै,
तितरी ही छाजै करतार ।
तिर्‌यी चहै भवपार तो,
उवर धार हरि येक ।
तिणरे नाम प्रताप थी,
उधरे जीव अनेक ।
नाम हेक नर राम रै,
किता कटै जगजाल ।

मानवता-प्रेम

चाख चाख गरवै फळ चोखा,
तक उर भाव अमाप तिकै ।
उमगे प्रभू भीलणी आंचा
अंठा वोर अरोगे आप ।

(कवि मंछ)

अभिप्राय यह है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में भक्ति सम्बन्धी रचनाएं तो खूब मिलती हैं, साथ ही उनकी रचनाओं में देश-प्रेम, ऐतिहासिकता, वीरता, सास्कृतिक चित्रण आदि सभी देखने को मिलते हैं। अतएव यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि राजस्थानी साहित्य मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियों का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

पैदल यात्राएं भी की । सैकड़ों पत्र लिखे किंतु खेद है कि इतनी अधिक मात्रा में सामग्री उपलब्ध नही हो सकी, जितनी कि मुझे आशा थी ।

उपलब्ध सामग्री से यह तो निश्चित अनुमान लगता है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणो में और भी अनेक कवि हुए है किन्तु खेद है कि कुछ अनपढ और गवार लोगो के कारण सामग्री बाहर नही आ पाती । जो लोग साहित्य का अर्थ नही समझते जिनको साहित्य का प्रयोजन तक ज्ञात नही, ऐसे लोगो के घर कूडे मे, आले मे, ढाटे में पडी सामग्री उनके यही जेल की दीवारो से बाहर आने के लिए कैदी की भांति कराह रही है । किन्तु अज्ञान के अंधकार में जैसे प्रकाश की एक किरण भी नही दीखती, उसी प्रकाश को लोग अनजाने मे बुझने देते हैं, फिर पश्चात्ताप करते है ।

अतएव वर्षो तक परिश्रम किया जाय एवं यदि उनकी कृपा हो जाय तो मेरा दृढ विश्वास है कि और भी कई कवि प्रकाश में आ सकते है ।

अस्तु, जिन कवियो की सामग्री मुझे प्राप्त हो सकी है और जिनकी रचनाओं के बारे मे मुझे जितनी भी सामग्री शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के द्वारा या अन्य बन्धुओ द्वारा देखने को मिली है, उन सबका विवेचन मैंने अपने इस शोध प्रबन्ध मे किया है । इस तरह 'शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का राजस्थानी साहित्य मे योगदान' नामक विषय पर अपने अथक प्रयास से सामग्री जुटाने का प्रयत्न मैंने किया है। साथ ही यह भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की उत्पत्ति कैसे हुई एवं उनका विकास कैसे हुआ ताकि शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की भी विस्तृत जानकारी हो सके ।

जितनी भी उत्तम रचनाएं प्रकाश मे आ सकी है, निश्चय ही उनकी देन राजस्थानी साहित्य मे परम श्लाघनीय मानी जाएगी ।

कुछ और राजस्थानी साहित्य के कवियों की सामग्री ग्रंथ के प्रकाशन की अवधि मे मुझे देखने को मिली है। वे निम्न प्रकार से हैं। (१) दौलतराम सेवग सूरतरामजी - बेटों रौं ब्याव (२) महाराम सेवग कृत - राधाकृष्ण विलास (३) अखैमल भोजक म० — अभैसिंघ रो सिलोको (४) माणक भोजक, भैरव स्तुति (५) हेम सेवग, माता

जी री स्तुति (६) जोधराज सेवग, राजा मान रो सिलोको (७) श्री मगनीराम, फुटकर गीत ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित साहित्य की कतिपय विशेषताओ की चर्चा कर देना भी यहा आवश्यक है ।

प्रथमतः प्राचीन रचनाओ के प्रत्येक चरण की रचनाएं मिलने के कारण भाषा के विकास के अध्ययन की दृष्टि से उनका वहुत महत्त्व है ।

दूसरी विशेषता यह है कि इन कवियों ने प्राचीन पद्य के तरीके अपनाये और प्राचीन पद्य ही रचे।

तीसरी विशेपता है कि इन्होने साहित्य की अनेक विधाओं या संज्ञाओं को अपनाया है ।

चौथी विशेपता है कि इन कवियो ने भक्ति की रचनाओ पर विशेष वल दिया और यही कारण है कि अधिकाश कवियो ने भक्ति सम्वन्धी गीत, दोहे, पद भजन आदि ही अधिक रचे ।

धर्म और नीति विपयक गीत आदि रचित काव्य इनकी छठी विशेषता है ।

सातवी विशेपता है, समाज को सुधारने हेतु काव्य-सर्जना ।

अस्तु, उपरोक्त विशेषताएं इस बात का प्रवल प्रमाण है कि शाकद्वोपीय ब्राह्मण कवियो द्वारा रचित दुर्लभ ग्रथ अथवा स्फुट साहित्य जो भी प्रकाश में आया है, निश्चय ही हमारे लिए अध्ययन की उपलब्धियां है ।

हम यह कह सकते हैं कि विश्व मे सर्वत्र व्याप्त, ईर्ष्या, कुण्ठा, स्पर्द्धा, कलह, कुरूपता, कुविचार, सघर्ष एवं युद्ध तया भय को हटाने का प्रयास शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो ने किया तथा जो भव्य है, उदात्त है तथा सुन्दर है ऐसे शिवसंयुक्त सत्य की अभिव्यक्तिका आविष्कार उन्होने अपनी रचनाओं में किया । सक्षेप मे हम कह सकते है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का अन्य भाषाओ मे तो योग रहा ही है, साथ ही शाकद्वीपीय ब्राह्मण कवियो का राजस्थानी साहित्य मे वहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

अध्याय–११

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की वर्तमान स्थिति

आज भी ब्राह्मणो का वर्ग ऐसा है जो कि वडे गर्व से अपने आपको शाकद्वीपीय ब्राह्मण एव सूर्य का वंशज मानता है। शाकद्वीपीय ब्राह्मण पत्रो के आधार पर आज केवल भारत मे ही नही, अपितु सम्पूर्ण विश्व मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण फैले हुए हैं और सूर्य की पूजा करते हैं। राजस्थान एवं भारत के अन्य भागों मे, जहां भी मैं गया, मैंने स्वयं ने देखा कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण सर्वत्र पाये जाते हैं।

इस जाति में आज भी कई मदिरो मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण ही पूजा के अधिकारी हैं। उदाहरणार्थ जोधपुर के प्रसिद्ध मदिर श्री गगश्याम के मदिर मे, श्री घनश्याम जी के मदिर में, श्री रामेश्वर जी के मदिर मे, श्री मुनायक जी के मंदिर मे, वीकानेर के श्री लक्ष्मीनारायण जी के मंदिर मे, भीनमाल के श्री वाराहश्याम के मदिर मे तथा वम्वई, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास आदि के कई मदिरो मे।

अर्वाचीन काल मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण विद्वानों का वर्चस्व तो रहा ही है किन्तु आज भी कई वर्त्तमान कवि, लेखक, पत्रकार, डाक्टर, इजीनीयर, राजनैतिक नेता, मंत्रवेत्ता, विश्वविद्यालयों में आचार्य, वडे वडे व्यापारी कलाकर हैं एवं राज्य सरकारो मे एवं केन्द्रीय सरकार मे उच्च पदो पर आसीन हैं, जिनसे मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कई दार्शनिक, चिंतक, वैज्ञानिक आदि इस जाति मे आज भी हैं, जिनसे मैं स्वयं मिला हूँ।

आज भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण समाज के द्वारा संचालित कई पत्र भी प्रकाशित होते हैं उदाहरणार्थ वम्वई से दिव्य संदेश, उदय-

पुर से शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु, वाराणसी से ब्रह्मज्योति, मालेगांव (महाराष्ट्र) से सौर चक्र आदि ।

इसके अतिरिक्त भारत मे संगठित रूप मे कई शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की सस्थाए भी कार्य कर रही हैं । उदाहरणार्थ - ऋषि-कुमार सभा, राजस्थान शाकद्वीपीय ब्राह्मण सघ, अन्तराष्ट्रीय शाकद्वीपीय ब्राह्मण भास्कर-संघ, प्रगतिशील शाकद्वीपीय ब्राह्मण सघ, निखिल शाकद्वीपीय ब्राह्मण सघ आदि । सामाजिक सस्थाओं के सगठित रूप तो मोहल्ले तक मे मैंने स्वयं देखे है जो समाज की उन्नति के हेतु विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करते हैं एवं अपनी जाति के अन्तर्गत पुरस्कार वितरण, शिक्षा-प्रसार, कवि सम्मेलन, गोष्ठिया आदि कर विचार विनिमय करते है और मूलभूत समस्याओं का निराकरण करने मे अपना अमूल्य सहयोग देते हैं । उदाहरणार्थ- जोधपुर मे विकास मंडलो के कुछ नाम अवलोकनीय है । वीर मोहल्ला मडी, विकास मंडल चूने की चौकी, विकास मंडल सरदारपुरा, विकास मंडल रातानाड़ा, विकास मडल वोरों की घाटी, विकास मंडल पचेटिया, विकास मंडल सुनारो की घाटी, विकास मडल मोती चौक आदि । यह इस बात का प्रवल प्रमाण है कि सामाजिक कार्यो मे विकास हेतु तथा समाज-सुधार हेतु ये मोहल्ले. विकास मंडल एवं संस्थाएं तथा संगठन आदि विभिन्न प्रकार से कार्य करते है, जो वास्तव मे स्तुत्य है ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मण पत्रों के आधार पर भारत में निवास करने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की संस्था लाखो मे है और विश्व के अन्य भागो मे भी कई शाकद्वीपीय ब्राह्मण पाये जाते हैं ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में वर्तमान कवि

शाकद्वीपीय (मग) ब्राह्मणो मे प्राचीन काल से ही बहुत उच्च कोटि के कवि हुए है । इस वात को साहित्य के कई विद्वानो ने स्वीकारा है और उन कवियो की रचनाएं भी इसका प्रबल प्रमाण हैं । आज भी शाकद्वीपीय ब्राह्मणो मे कई-हिन्दी, सस्कृत, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रसिद्ध कवि हैं, जिनमें से कुछ नामावली इस

प्रकार है—

(१) श्री जानकीवल्लभ शास्त्री (मुजफ्फरपुर)
(२) श्री लाला रुद्रनार्थसिंह पन्नगेस (अयोध्या)
(३) श्री ब्रह्मदेव शास्त्री (दिल्ली)
(४) श्री शंभु सुदर्शन (जोधपुर)
(५) डॉ० दर्शनलाल 'मामा' (जोधपुर)
(६) डॉ० दामोदरदत्त मिश्र (महाराष्ट्र)
(७) श्री मदनमोहन दवेरा (जोधपुर)
(८) डॉ० विश्वनाथ शर्मा (जोधपुर)
(९) श्री आनन्द मधुकर (जोधपुर)
(१०) श्री नन्दकिशोर (जैसलमेर)
(११) श्री पुष्पकात (भीनमाल)
(१२) श्री देशदर्शन (जोधपुर)
(१३) श्री नारायण कमलेश (जोधपुर)
(१४) श्री लक्ष्मीनारायण मथुरीया (जोधपुर)
(१५) श्री तेजराज (राजस्थान)
(१६) श्री रामस्वरुप शास्त्री "अमर" (झांसी) उत्तर प्रदेश
(१७) श्री पन्नालाल पनल (वाड़मेर)
(१८) श्री पशुपतिनाथ प्रफुल्ल (पंजाव)
(१९) श्री माणकचन्द भोजक (वीकानेर)
(२०) श्री चन्द्रदेव पाठक (मध्यप्रदेश)
(२१) श्री भुवनेश्वर व्याकुल (उत्तरप्रदेश)

अभिप्राय यह है कि वर्त्तमान मे तो इतने कवि हैं कि उनकी नामावली भी वहुत वड़ी है परन्तु वहुत ही कम नाम इसमें दे पाया हूँ ।

सहायक एवं संदर्भ ग्रंथ-सूचि

(१) राजस्थानी सवद कोष—सीताराम लालस
(२) राजस्थानी भापा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी
(३) राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुंज—डा० गोवर्द्धन शर्मा
(४) राजस्थानी साहित्य परम्परा और प्रगति—सरनामसिंह शर्मा "अरुण"
(५) राजस्थानी सहित्य और परम्परा—अगरचन्द नाहटा
(६) राजस्थानी का पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
(७) राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
(८) राजस्थानी साहित्य एक परिचय—प्रो० नरोत्तम स्वामी
(९) राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तियां—डा० सत्येन्द्र
(१०) राजस्थानी साहित्य और संस्कृति—मनोहर प्रभाकर
(११) राजस्थानी भापा - डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
(१२) राजस्थानी प्रेमाख्यान—डा० रामगोपाल गोयल
(१३) राजस्थानी गद्य-साहित्य – डा० शिवस्वरूप शर्मा
(१४) राजस्थानी लोकगीत— श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत
(१५) राजस्थानी लोकगीत—डा० पुरुषोत्तम मेनारिया
(१६) राजस्थानी साहित्य का इतिहास—डा० पुरुषोत्तम मेनारिया
(१७) राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियां—डा० नरेन्द्र भानावत
(१८) राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा-डा० राजकुमारी कौल
(१९) राजस्थान के लोकगीत -श्रीमती स्वर्णलता अग्रवाल
(२०) राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि-डा० मदनकुमार जानी
(२१) कविता के नए प्रतिमान—डा० नामवरसिंह
(२२) हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवरसिंह
(२३) मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन-डा० मोतीलाल गुप्त

(२४) मूणजप्रकाश–ऐतिहासिक, साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन–
डा० राजकृष्ण दूगड
(२५) काव्य कुसुम—डा० शक्तिदान कविया
(२६) कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त–डा० सरनामसिंह
"अरुण"
(२७) मारवाड री ख्यात (अप्रकाशित) शोध संस्थान, जोधपुर
(२८) जोधपुर री ख्यात (अप्रकाशित) शोध संस्थान, जोधपुर
(२९) टाड राजस्थान–अनुवादक बलदेवप्रसाद मिश्र
(३०) जोधपुर राज्य का इतिहास—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
(३१) वीर सतसई सं० डा० कन्हैयालाल सहल
(३२) वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस : सौन्दर्य विधान
का तुलनात्मक अध्ययन डा० जगदीश शर्मा
(३३) साहित्यक शिक्षा और संस्कृति—डा० राजेन्द्रप्रसाद
(३४) मारवाड राज्य का इतिहास पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ
(३५) मारवाड राज्य का इतिहास – जगदीशसिंह गहलोत
(३६) मग-परिचय विश्वनाथ शर्मा
(३७) भोजक राग – वृहस्पति पाठक
(३८) महाकवि माघ–जीवन, कला और कृतियां–डा० मनमोहनलाल
जगन्नाथ शर्मा
(३९) रघुनाथरूपक गीतां रो–कवि मंछ, सं० मेहतावचन्द्र खारेड
(४०) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार
वर्मा
(४१) हिन्दी रीति काव्य – भोलानाथ तिवारी
(४२) राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद डा० कन्हैयालाल सहल
(४३) वीसलदेव रास की भूमिका – सं० माताप्रसाद गुप्त एवं
अगरचंद नाहटा
(४४) रामचरित-मानस गोस्वामी तुलसीदास
(४५) विनयपत्रिका – गोस्वामी तुलसीदास
(४६) रामरक्षास्तोत्र – गीता प्रेस गोरखपुर
(४७) साकेत मे काव्य संस्कृति और दर्शन – डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
(४८) भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका – डा नगेन्द्र

(४९) अंधेरा रास्ता—डा० रागेयराघव
(५०) अंधेरे के जुगनू—डा० रागेयराघव
(५१) सूर्यचालीसा—स० चन्द्रिकाप्रसाद पाठक एवं निरंजन शर्मा "अजित"
(५२) हिन्दी काव्यालंकार सूत्र—विश्वेश्वर—सं० डा० नगेन्द्र
(५३) रस अलंकार पिंगल—डा० शंभुनाथ पांडेय
(५४) साहित्य-सहचर—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(५५) रवीन्द्र—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(५६) हिन्दी काव्य और उसका सौन्द्रर्य—ओमप्रकाश
(५७) काव्य मीमासा—राजशेखर
(५८) हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(५९) चन्द्रसखी का काव्य—अमरनाथ
(६०) विहारी एक अध्ययन—रामरतन भटनागर
(६१) महाभारत के सूक्ति रत्न-सग्राहक—इन्द्रचन्द्र शास्त्री
(६२) शककालीन भारत—प्रशान्तकुमार जायसवाल
(६३) सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा
(६४) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
(६५) आधुनिक काव्य-धारा—डा० केशरीनारायण शुक्ल
(६६) सस्कृति संगम—आचार्य क्षितिमोहन सेन
(६७) हिन्दुत्व- रामदास गौड
(६८) हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(६९) सस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह दिनकर
(७०) महाभारत—महर्षि वेद व्यास
(७१) संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण—प्रो० नरोत्तम स्वामी
(७२) नरेन्द्र और उनका काव्य—लक्ष्मीनारायण शर्मा
(७३) काव्य-दर्पण—रामदहिन मिश्र
(७४) वीसलदेव रासो—राजनाथ शर्मा
(७५) इतिहास मे भारतीय परम्पराएं—गुरुदत्त
(७६) विश्व की आदिवासी जन जातियां—शिवतोषदास
(७७) गुप्तजी की काव्य धारा—गिरिजादास शुक्ल "गिरीश"
(७८) हिन्दुस्तान की कहानी—पं० जवाहलाल नेहरू

(७६) सूरसागर—सूरदास
(८०) पुरानी राजस्थानी—अनु० डा० नामवरसिंह
(८१) भारतीय सस्कृति की रूपरेखा डा० गुलाबराय
(८२) आधुनिक हिन्दी काव्य मे छंदयोजना—डा० पुत्तुलाल शुक्ल
(८३) गाधीवाद-सामाजवाद—नवयुग साहित्य सदन, इन्द्रौर
(८४) हिन्दी छद प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री
(८५) साहित्यिक निबन्ध—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
(८६) रस-छंदालकार भाग २—डा० रामशकर शुक्ल "रसाल"
(८७) युगचारण दिनकर—डा० सावित्री सिन्हा
(८८) प्लेटो के काव्य सिद्धान्त—डा० निर्मला जैन
(८९) गुप्तजी की काव्य साधना—डा० उमाकान्त
(९०) आधुनिक कविता का मूल्यांकन—डा० इन्द्रनाथ मदान
(९१) आज का भारतीय साहित्य—सच्चिदानंद वात्स्यायन "अज्ञेय"
(९२) आधुनिक साहित्य—आचार्य नददुलारे वाजपेयी
(९३) विचार और अनुभूति—डा० नगेन्द्र
(९४) आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और शृंगार—डा. रागेय राघव
(९५) राजस्थानी वेलि साहित्य—डा० नरेन्द्र भानावत
(९६) पंवार वश दर्पण डा० दशरथ शर्मा
(९७) राजस्थान के तुर्रा कलगी डा० महेन्द्र भानावत
(९८) सौन्दर्य तत्त्व—अनु० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित
(९९) आधुनिक हिन्दी-काव्य—डा० मोहन अवस्थी
(११०) आधुनिक हिन्दी कविता मे विषय और शैली—डा० रागेयराघव

अंग्रेजी

(१) पोइटरी एण्ड दी पीपल—कोनेय रीचमंड
(२) दी नेचर आफ कल्चर—ए०एल० कोबर
(३) अरली चौहान डाईनेस्टीज—डा० दशरथ शर्मा
(४) मारवाड एण्ड मुगल्स—डा० वी० एस० भार्गव
(५) पोइटरी एण्ड पोइटिक डिक्सनरी—डवल्यू वुड्सवर्थ
(६) पैटर्न आफ कल्चर—रुथ बैन्डाइट
(७) मेन एण्ट हिज वर्क्स—एम० जे० हरस्कोविटस

(८) ग्लोरीज आफ मारवाड़ एण्ड ग्लोरीज आफ राठौड्स पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ

(९) ऐपिग्राफिक इन्डिया

(१०) मेन इन दी प्रीमिटिव वर्ल्ड—ई० ए० होबेल

(११) ए सोशियल स्ट्रक्चर आफ राजस्थान—डा० जी० एन० शर्मा

हस्तलिखित प्रतियो के देखने के स्थान, उन व्यक्तियों के नाम, जिनके पास ह० लि० ग्रंथ देखने को मिले ।

(१) शोध संस्थान, जोधपुर (२) सादुल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर (३) अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, वीकानेर (४) भारतीय विद्या भवन, बीकानेर (५) शाकद्वीपीय ब्राह्मण वधु कार्यालय, उदयपुर (६) राज्य प्राच्य शोधप्रतिष्ठान, बीकानेर (७) कन्हैयालाल शर्मा, अजमेर (८) रेवतीरमन शर्मा, जयपुर (९) श्रीपत, किशनगढ़ (१०) गोविन्दप्रसाद शर्मा, ब्यावर (११) ब्रह्मचारीजी, कुचेरा (१२) भोलाराम शर्मा, कुचेरा (१३) गोपीकिशन चंडक, नागौर (१४) मोतीलाल जी, भीनमाल (१५) पुष्पकांत, भीनमाल (१६) तेजराज जी, भीनमाल (१७) हरीशचद्र जी, लाडनू (१८) जालूराम भवरलाल, सरदारशहर (१९) भैरूलाल जी, अगवरी (२०) देवीचदजी, जालौर (२१) शांतिप्रसादजी, जालौर (२२) सगतमलजी, जैसलमेर (२३) नन्द-किशोरजी, जैसलमेर (२४) भवरलालजी, फतेहपुर (२५) किशनलाल जी (गुट्टड महाराज) बीकानेर (२६) भवानीशकरजी, बीकानेर (२७) अमरचंद जी, मेड़ता (२८) रेवतीप्रसाद जी शर्मा, रतनगढ (२९) मूलचन्द्र जी प्राणेश, बीकानेर (३०) दाऊदयाल जी, बीकानेर (३१) आदित्यनारायण जी पुरोहित, जोधपुर (३२) सूर्यनारायण जी पुरोहित, जोधपुर

वेद और पुराण आदि

(१) ऋग्वेद (२) भविष्य पुराण (३) सांब पुराण (४) स्कन्ध पुराण (५) श्रीमद्‌भागवत् भाषा (६) शिव महापुराण (७) देवी भागवत (८) वायुपुराण (९) पद्मपुराण (१०) कूर्मपुराण (११) मार्कंडेय पुराण (१२) वाराह महापुराण (१३) विष्णु-पुराण (१४) अग्नि-पुराण (१५) ब्रह्ममहापुराण (१६) लिंग महापुराण

(१७) मत्स्य पुराण (१८) गरुड़ पुराण (१९) नारदीय पुराण (२०) वामन महापुराण (२१) ब्रह्मांड पुराण ।

पत्र-पत्रिकाएं

(१) शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु अंक—जोधपुर
(२) शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु अंक—बम्बई
(३) शाकद्वीपीय ब्राह्मण बंधु अंक—उदयपुर
(४) ब्रह्मज्योति—बनारस
(५) दिव्यसंदेश - बम्बई
(६) सौर-चक्र—मालेगाव
(७) सम्मेलन-पत्रिका -प्रयाग
(८) परम्परा, शोध संस्थान - जोधपुर
(९) संस्कृति प्रवाह जोधपुर
(१०) नाकोडा अधिष्ठायक भैरव—वर्ष १, अंक ८ व ५ ।
(११) कल्याण—गीता प्रेस गोरखपुर
(१२) नागरी प्रचारणी पत्रिका—वाराणसी
(१३) मरुवाणी—जयपुर
(१४) प्रेरणा—जोधपुर
(१५) राजस्थान भारती - बीकानेर
(१६) वरदा—बीसाऊ
(१७) ओळमो—रतनगढ
(१८) ललकार—जोधपुर
(१९) मधुमति—उदयपुर
(२०) चेतनप्रहरी—बाडमेर, जोधपुर
(२१) जलमभोम—बीकानेर
(२२) राजस्थान पत्रिका—जयपुर
(२३) जनगण—जोधपुर
(२४) प्रजासेवक—जोधपुर
(२५) बढते चरण—जोधपुर